बी.ए. तृतीय वर्ष

अर्थशास्त्र, प्रथम प्रश्नपत्र

विकास एवं पर्यावरण अर्थशास्त्र

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY – BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr Manish Sharma
   Professor
   IEHE, Bhopal

2. Dr Sharad Tiwari
   Professor
   Govt Hamidia College Bhopal

3. Dr Kalpana Malik
   Associate Professor
   IEHE, Bhopal

Advisory Committee

1. Dr Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

2. Dr H.S.Tripathi
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

3. Dr L.P. Jharia
   Director Student Support
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

4. Dr Manish Sharma
   Professor
   IEHE, Bhopal
   Subject Expert

5. Dr Sharad Tiwari
   Professor
   Govt Hamidia College Bhopal

6. Dr Bindu Mahawar
   Assistant Professor
   Navin College, Bhopal

COURSE WRITERS

Pramila Sharma, Vice Principal, Zeenat Mahal SKV, Jafrabad, Delhi
Units (1.0-1.1, 1.2, 1.4-1.9, 2.0-2.1, 2.2, 2.3-2.4, 2.6, 2.7-2.12, 3.0-3.1, 3.2-3.8, 3.9-3.13, 4.0-4.2, 4.4, 4.5-4.9, 5)
Dr. Rupesh Tyagi, Assistant Professor (Contractual), Department of Economics, CCS University, Meerut
Units (1.3, 2.5, 2.6.1-2.6.2, 4.3)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

विकास एवं पर्यावरण अर्थशास्त्र

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 आर्थिक वृद्धि और विकास – अवधारणा, विकासशील देशों की विशेषताएं, आर्थिक वृद्धि और विकास के तत्व– पूंजी, भौतिक और मानव संसाधन, अनुसंधान और विकास एवं तकनीक।	**इकाई 1** : आर्थिक वृद्धि और विकास **(पृष्ठ 3–24)**
इकाई–2 आर्थिक विकास के सिद्धांत– एडम स्मिथ, कार्ल मार्क्स, शुम्पीटर। आर्थिक विकास की अवस्थाएं। आर्थिक विकास के निवेश मापदंड। पूंजी–उत्पाद अनुपात, पूंजी–श्रम अनुपात। मानव संसाधन विकास	**इकाई 2** : आर्थिक विकास के सिद्धांत **(पृष्ठ 25–80)**
इकाई–3 संतुलित बनाम असंतुलित विकास– रोडान, ए.लुईस, हर्षमैन, लीबिंसटीन, गुन्नार मिर्डल, हैरोड–डोमर।	**इकाई 3** : संतुलित बनाम असंतुलित विकास **(पृष्ठ 81–128)**
इकाई–4 आर्थिक विकास और लिंग समानता। महिला सशक्तीकरण, विकास की तकनीकें– पूंजी प्रधान एवं श्रम प्रधान तकनीकें। मानव विकास सूचकांक।	**इकाई 4** : आर्थिक विकास और लिंग समानता **(पृष्ठ 129–161)**
इकाई–5 पर्यावरण– अर्थव्यवस्था अंतर्संबंध, आवश्यकता और विलासिता के रूप में पर्यावरण, जनसंख्या– पर्यावरण अंतर्संबंध, बाजार विफलता के रूप में पर्यावरणीय वस्तु, सामान्य समस्याएं, धारणीय विकास की अवधारणा, पर्यावरणीय क्षति का आकलन– भूमि, जल, वायु और वन। प्रदूषण में कमी, नियंत्रण और रोकथाम।	**इकाई 5** : पर्यावरण–अर्थव्यवस्था अंतर्संबंध **(पृष्ठ 163–210)**

विषय–सूची

परिचय **1**

इकाई 1 आर्थिक वृद्धि और विकास **3–24**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 आर्थिक वृद्धि और विकास की अवधारणा
1.3 विकासशील देशों की विशेषताएं
1.4 आर्थिक वृद्धि और विकास
  1.4.1 पूंजी
  1.4.2 भौतिक और मानव संसाधन
  1.4.3 अनुसंधान और विकास एवं तकनीक
1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.6 सारांश
1.7 मुख्य शब्दावली
1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 आर्थिक विकास के सिद्धांत **25–80**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 एडम स्मिथ का सिद्धांत
2.3 कार्ल मार्क्स का सिद्धांत
2.4 शुम्पीटर का सिद्धांत
2.5 आर्थिक विकास की अवस्थाएं
2.6 आर्थिक निवेश के मापदंड
  2.6.1 पूंजी – उत्पाद अनुपात
  2.6.2 पूंजी – श्रम अनुपात
2.7 मानव संसाधन विकास
2.8 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.9 सारांश
2.10 मुख्य शब्दावली
2.11 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.12 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 संतुलित बनाम असंतुलित विकास **81–128**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 संतुलित और असंतुलित विकास की अवधारणा
3.3 रोडान सिद्धांत
3.4 ए. लुईस सिद्धांत

3.5 हर्षमैन सिद्धांत
3.6 लीबिंसटीन सिद्धांत
3.7 गुन्नार मिर्डल सिद्धांत
3.8 हैरोड–डोमर मॉडल
3.9 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.10 सारांश
3.11 मुख्य शब्दावली
3.12 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.13 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 आर्थिक विकास और लिंग समानता **129–161**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 आर्थिक विकास और लिंग समानता की अवधारणा
4.2.1 आर्थिक सशक्तीकरण
4.2.2 महिला सशक्तीकरण
4.3 विकास की तकनीकें
4.3.1 पूंजी–प्रधान तकनीक
4.3.2 श्रम–प्रधान तकनीक
4.4 मानव विकास सूचकांक
4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5 पर्यावरण–अर्थव्यवस्था अंतर्संबंध **163–210**

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 पर्यावरण–अर्थव्यवस्था अंतर्संबंध
5.3 आवश्यकता और विलासिता के रूप में पर्यावरण
5.4 जनसंख्या–पर्यावरण अंतर्संबंध
5.5 बाजार विफलता के रूप में पर्यावरणीय वस्तु
5.6 सामान्य समस्याएं
5.7 धारणीय विकास की अवधारणा
5.8 पर्यावरणीय क्षति का आकलन : भूमि, जल, वायु और वन
5.9 प्रदूषण में कमी, नियंत्रण और रोकथाम
5.10 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.11 सारांश
5.12 मुख्य शब्दावली
5.13 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.14 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'विकास और पर्यावरण अर्थशास्त्र' विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित बी.ए. तृतीय वर्ष के पाठ्यक्रम के अनुरूप लिखी गई है। विकास से हमेशा आस–पास का परिवेश प्रभावित होता है और परिवेश विकास को प्रभावित करता है। अर्थव्यवस्था अपने विकास क्रम में सामाजिक परिवेश से प्रभावित होती आई है। आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले कई कारक होते हैं। प्रत्येक देश की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक परिस्थितियां और वहां का पर्यावरण सभी मिलकर अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते हैं और उनका प्रभाव अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी होता है। यहां विकासशील देशों की विकास प्रक्रियाओं का विस्तृत मूल्यांकन किया जा रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक में विकास और पर्यावरण अर्थशास्त्र के विभिन्न पक्षों का सांगोपांग विवेचन किया गया है। प्रत्येक इकाई के प्रारंभ में विषय का विश्लेषण करने से पहले उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है। इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' के माध्यम से विद्यार्थियों की योग्यता को परखने के लिए प्रश्न दिए गए हैं। पाठ्य सामग्री तैयार करते समय विषय में विद्यार्थियों की रुचि जगाने तथा रोचकता लाने का भरपूर प्रयास किया गया है। अध्ययन की सुविधा के लिए संपूर्ण पुस्तक में पांच इकाइयों को समायोजित किया गया है, जिनका विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई में आर्थिक वृद्धि एवं विकास के विभिन्न पहलुओं का विवेचन किया गया है।

दूसरी इकाई में आर्थिक विकास के विभिन्न सिद्धांतों का मूल्यांकन किया गया है।

तीसरी इकाई आर्थिक विकास के संतुलित एवं असंतुलित दृष्टिकोणों को परिभाषित करती हुई संबंधित दृष्टिकोणों पर विभिन्न अर्थशास्त्रियों के मतों की समीक्षा करती है।

चौथी इकाई आर्थिक विकास के परिप्रेक्ष्य में लिंग समानता की आवश्यकता पर केन्द्रित है।

पांचवीं इकाई में पर्यावरण अर्थव्यवस्था के अन्तर्संबंधों को समझाया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में विकास और पर्यावरण अर्थशास्त्र की प्रकृति एवं स्वरूप को सरल भाषा में रुचिकर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक पाठकों की जिज्ञासा को शांत कर, अर्थव्यवस्था में विकास और पर्यावरण की भूमिका को समझने में सहायक सिद्ध होगी।

इकाई 1 आर्थिक वृद्धि और विकास

टिप्पणी

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 आर्थिक वृद्धि और विकास की अवधारणा
1.3 विकासशील देशों की विशेषताएं
1.4 आर्थिक वृद्धि और विकास
1.4.1 पूंजी
1.4.2 भौतिक और मानव संसाधन
1.4.3 अनुसंधान और विकास एवं तकनीक
1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.6 सारांश
1.7 मुख्य शब्दावली
1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

आर्थिक वृद्धि एक क्रमिक प्रक्रिया है। जिस प्रकार शिशु, किशोर एवं युवावस्था से गुजरते हुए वृद्धावस्था में प्रवेश करता है, उसी प्रकार प्रत्येक देश को अपने आर्थिक वृद्धि के उच्चतम शिखर पर पहुंचने के लिए अनेक अवस्थाओं से होकर गुजरना पड़ता है। प्रसिद्ध अमेरिकन अर्थशास्त्री प्रो. रोस्टोव द्वारा प्रतिपादित आर्थिक वृद्धि की अवस्थाओं का विश्लेषण अन्य अर्थशास्त्रियों की तुलना में सबसे अधिक वैज्ञानिक एवं तर्कपूर्ण है। अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में औद्योगीकरण की गति काफी धीमी रहती है, जिसके लिए वहां की पिछड़ी हुई तकनीक, अकुशल श्रम तथा पूंजी की कमी आदि कारक जिम्मेदार हैं। जैसे किसी अर्थव्यवस्था का आर्थिक विकास होता है, उसकी आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, सरंचना में परिवर्तन होते हैं, इन्हीं परिवर्तनों को संरचनात्मक परिवर्तन का नाम दिया जाता है।

आर्थिक नियोजन के लिए आवश्यक है कि सरकार की मौद्रिक और राजकोषीय नीतियों का निर्माण इस तरीके से हो जो अर्थव्यवस्था में मुद्रा और साख की पूर्ति के नियंत्रण में और मौद्रिक स्थिरता को कायम रखने में सहायक हो सके। यद्यपि इस लक्ष्य को प्राप्त करना इतना आसान नहीं है क्योंकि अर्धविकसित देशों में निर्धनता व्यापक पैमाने पर फैली हुई है अभी भी वहां ऐसे लोग निवास करते हैं जो अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते इसलिए निर्धनता के मुख्य संकेतकों को आधार मानकर ही आर्थिक नियोजन के लक्ष्य को पूरा किया जा सकता है। इसलिए आगत निर्गत अवधारणा को एक उपकरण की तरह प्रयोग करके उद्योगों पर पड़ने वाले पारस्परिक अंतर्संबंध और अंतर्निर्माताओं की विस्तृत व्याख्या की गई है।

अर्धविकसित देशों में आर्थिक योजनाओं के कार्यान्वयन के लिए योजना मॉडल की व्याख्या को जानना भी आवश्यक है जो राष्ट्रों को पिछड़ेपन, उपेक्षित क्षेत्रों को

टिप्पणी

क्रियाशील बनाने में सहयोग देते हैं। ये अर्धविकसित देशों के लिए एक औषधि का कार्य करते हैं जो अर्धविकसित राष्ट्रों को, विकसित राष्ट्रों में रूपांतरित करने में सहायक होते हैं। बाजार अर्थव्यवस्थाओं के विकास में सहायक है जिसमें कीमत तंत्र (मांग और पूर्ति की शक्तियां) आधारभूत समस्याओं के समाधान में सहयोग प्रदान करते हैं।

पूंजी निर्माण का आर्थिक विकास में बहुत महत्व होता है और पूंजी निर्माण की गति को किन उपायों द्वारा बढ़ाया जा सकता है, तथा साधनों का आवंटन किसी अर्थव्यवस्था के विकास में कितना महत्वपूर्ण होता है। किसी परियोजना की सफलता के लिए आवश्यक है कि साधन सही तरीके से आवंटित किये जाएं। तकनीकी प्रगति किसी भी अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास के लिए सबसे महत्वपूर्ण घटक है। अल्पविकसित देशों में श्रम की प्रचुरता होती है तथा पूंजी की कमी होती है अतः उचित तकनीक का चुनाव इन देशों के लिए बहुत बड़ी चुनौती होता है। इसलिए इन देशों के आयोजकों को चाहिए कि ऐसी तकनीकी को अपनाया जाए जो आर्थिक विकास के साथ–साथ श्रम शक्ति का उपयोग भी संभव बनाती हो।

इस इकाई में आर्थिक वृद्धि एवं विकास की अवधारणा को समझाते हुए विकासशील देशों की विशेषताओं का अध्ययन किया गया है। साथ ही आर्थिक वृद्धि और विकास के तत्वों जैसे पूंजी, संसाधन आदि की उचित विवेचना की गई है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- आर्थिक वृद्धि और विकास की अवधारणा को समझ पाएंगे;
- विकासशील देशों के विशेष तत्वों से अवगत हो पाएंगे;
- आर्थिक वृद्धि और विकास के तत्वों जैसे पूंजी, भौतिक एवं मानव संसाधन, अनुसंधान और विकास के उपादेय से परिचित हो पाएंगे;
- आर्थिक वृद्धि एवं विकास के परिप्रेक्ष्य में तकनीक के योगदान का विश्लेषण कर पाएंगे;

1.2 आर्थिक वृद्धि और विकास की अवधारणा

आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें दीर्घकाल में किसी अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है। आर्थिक विकास का संबंध अल्पकाल से न होकर दीर्घकाल से होता है क्योंकि आर्थिक विकास विभिन्न घटकों की संचयी प्रक्रिया से प्रभावित होने वाला विकास है। सामान्यतः विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं को विकास के स्तर के आधार पर दो भागों में विभाजित किया जाता है– विकसित अर्थव्यवस्था एवं अल्पविकसित अर्थव्यवस्था। इन अर्थव्यवस्थाओं की अपनी कुछ विशिष्ट विशेषताएं होती हैं, जिनके आधार पर इनका वर्गीकरण किया जा सकता है। अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में बाजार का आकार सीमित होता है, अधिकांश जनसंख्या अशिक्षित तथा कृषि पर आश्रित होती है, वहीं दूसरी ओर विकसित अर्थव्यवस्थाओं में

टिप्पणी

कृषि का प्रतिशत रोजगार प्रजनन तथा राष्ट्रीय आय दोनों में ही बहुत कम होता है, इन देशों में आय का स्तर बहुत नीचा होता है।

आर्थिक संवृद्धि से अभिप्राय "वास्तविक राष्ट्रीय आय और वास्तविक राष्ट्रीय उत्पादन में होने वाली दीर्घकालीन वृद्धि से है।"

आर्थिक संवृद्धि की परिभाषा

1. प्रो. जे.ए. शुम्पीटर का विचार – ''आर्थिक संवृद्धि अधिकांशतः क्रमिक और दीर्घकाल में स्थिर होती है क्योंकि जनसंख्या, बचत जैसे साधनों में वृद्धि के कारण इसकी उत्पत्ति होती है।''
2. मायर एवं बाल्डविन के अनुसार – ''संवृद्धि और विकास एक दूसरे के सदृश हैं। विकास के अंतर्गत उन परिवर्तनों की व्याख्या की जाती है जो अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय में दीर्घकालीन समय में होते हैं। इसमें पूंजी निर्माण, प्राकृतिक साधनों, प्राद्योगिकीय प्रगति, संगठन और कार्यक्षमता में होने वाले परिवर्तन सम्मिलित हैं।''
3. मैडिसन के अनुसार – ''आय के स्तर को उच्चतम बनाना सामान्य रूप से सम्पन्न राष्ट्रों में आर्थिक संवृद्धि कहलाता है जबकि निर्धन राष्ट्रों के लिए आर्थिक विकास है।''

आर्थिक संवृद्धि तब ही प्राप्त हो सकती है जब वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों में वृद्धि हुए बिना वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन बढ़ता है। इस प्रकार की संवृद्धि ही वास्तविक वृद्धि होती है क्योंकि यदि कीमतों में वृद्धि होती है तो लोगों की वास्तविक आय कम हो जाती है जिससे बचत और निवेश पर दुष्प्रभाव पड़ता है इनमें कमी होती है तो उत्पादन स्तर में गिरावट, रोजगार के अवसरों में कमी होती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रति व्यक्ति आय आर्थिक वृद्धि का मुख्य तत्व है इसको निम्न सूत्र द्वारा दर्शाया जा सकता है–

आर्थिक संवृद्धि की माप

चालू वर्ष का

$$\text{संवृद्धि दर} = \frac{\text{सकल घरेलू उत्पाद – आधार वर्ष का सकल घरेलू उत्पाद}}{\text{आधार वर्ष का सकल घरेलू उत्पाद}}$$

आर्थिक संवृद्धि के मुख्य घटक/सूचक

1. पूंजी की पर्याप्तता संचय, भूमि, भौतिक पूंजी, मानव संसाधन, स्वास्थ्य व शिक्षा सुधार, रोजगार कौशल आदि के सभी नये निवेश शामिल करना।
2. जनसंख्या में वृद्धि अंततोगत्वा श्रम बल में वृद्धि।
3. तकनीकी प्रगति ।

आर्थिक विकास की परिभाषा

1. आर्थर लुइस – ''आर्थिक विकास मानवीय प्रयत्नों का फल है।''

टिप्पणी

2. मायर एवं बाल्डविन के अनुसार – आर्थिक विकास ऐसी क्रिया विधि है जिससे दीर्घकाल में किसी राष्ट्र की वास्तविक राष्ट्रीय आय में बढ़ोतरी होती है।''
3. कोलीन क्लार्क के अनुसार – ''आर्थिक विकास आर्थिक कल्याण में वृद्धि को सुगम बनाता है।''
4. ए.जे. यंगसन के अनुसार – ''अर्थव्यवस्था की वास्तविक आय में वृद्धि होना विकास कहलाता है।''

''परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार – GNP में सततीय वार्षिक वृद्धि आर्थिक विकास है।''

आर्थिक विकास = आर्थिक संवृद्धि + आर्थिक और सामाजिक कल्याण

आर्थिक विकास एक विस्तृत अवधारणा है क्योंकि आर्थिक विकास केवल मात्रात्मक परिवर्तन जैसे प्रति व्यक्ति उत्पादन या राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि को ही नहीं बल्कि सामाजिक परिवर्तन जैसे साक्षरता की दर, स्वास्थ्य सुविधाओं में वृद्धि, पर्यावरण संरक्षण आदि को भी शामिल करता है। साइमन कुजनेटस, मायर, बाल्डबिन जैसे प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री राष्ट्रीय आय को आर्थिक विकास का एक आदर्श माप मानते हैं लेकिन लुइस पीटरसन आदि प्रति व्यक्ति आय को आर्थिक विकास का मुख्य तत्व मानते हैं।

आर्थिक विकास एवं आर्थिक संवृद्धि एक प्रकार से आर्थिक प्रगति का सूचक है जो उच्च जीवन स्तर एवं जीवन की गुणवत्ता पर बल देती है यद्यपि आर्थिक संवृद्धि एवं आर्थिक विकास एक दूसरे के पर्यायवाची हैं लेकिन फिर भी कुछ संस्थापित अर्थशास्त्री जैसे प्रो. जोसफ ए. शुम्पीटर, प्रो. हिक्स, प्रो. किडल बर्गर आदि ने आर्थिक संवृद्धि और आर्थिक विकास की दो अलग–अलग अवधारणाओं को परिभाषित किया है।

आर्थिक संवृद्धि और विकास की आवश्यकता

1. आर्थिक गतिविधियों का विश्लेषण सरल व आसान बनाने के लिए आर्थिक संवृद्धि व आर्थिक विकास की आवश्यकता होती है।
2. उत्पादन का उच्चतम स्तर ज्ञात करने के लिए आर्थिक विकास और संवृद्धि की आवश्यकता होती है।
3. तीव्र गति से विकास करने के लिए आवश्यक है।
4. दीर्घकालीन आर्थिक प्रगति को संभव बनाने के लिए सहायक है।
5. विशेष बात यह है कि लोगों की आधारभूत आवश्यकताओं जैसे शिक्षा चिकित्सा, पानी की आपूर्ति, सफाई आदि जैसे क्षेत्रों का विकास करने के लिए अधिक धन की आवश्यकता होती है जो सार्वजनिक क्षेत्रों द्वारा ही संभव है क्योंकि सरकार का उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना नहीं बल्कि सामाजिक कल्याण करना होता है जबकि निजी क्षेत्रों का उद्देश्य लाभ कमाना है इसलिए निजी क्षेत्रों की इनमें कोई रुचि व दिलचस्पी नहीं होती इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सार्वजनिक क्षेत्रों के विस्तार पर सरकार को अधिक ध्यान केन्द्रित करना चाहिए जिससे आर्थिक संवृद्धि और आर्थिक विकास हो सके।

6. आर्थिक गतिविधियों का विश्लेषण करने के लिए भी आर्थिक संवृद्धि और विकास की आवश्यकता होती है।

टिप्पणी

आर्थिक संवृद्धि और विकास की माप/गणना

आर्थिक संवृद्धि और आर्थिक विकास की गणना को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

प्रति व्यक्ति आय = GNP

$$\text{प्रति व्यक्ति आय} = \frac{\text{राष्ट्रीय आय}}{\text{कुल जनसंख्या}}$$

प्रति व्यक्ति आय से तात्पर्य वास्तविक दीर्घकालीन वृद्धि से है। यह निश्चित है कि जब तक प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि नहीं हो पाती, तब तक सामाजिक व आर्थिक कल्याण हो ही नहीं सकता। इसके लिए आवश्यक है कि देश के कुल उत्पादन स्तर को बढ़ाया जाए जिससे रोजगार के अवसरों में बढ़ोतरी होगी अर्थात प्रति व्यक्ति उत्पादन बढ़ेगा। उपभोक्ता जन्य वस्तुओं की मांग में वृद्धि होगी तभी जीवन स्तर ऊंचा किया जा सकता है और स्वतः ही बचत निवेश या पूंजी निर्माण में वृद्धि व विकास होगा। इस प्रकार प्रति व्यक्ति आय आर्थिक विकास का वास्तविक सूचक है क्योंकि कई बार ऐसा भी होता है कि राष्ट्रीय आय में तो वृद्धि हो जाती है लेकिन विकास दिखाई नहीं देता। इसका अर्थ है कि आय का वितरण सही ढंग से नहीं हुआ इसलिए यह आवश्यक है कि अल्पविकसित और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के लिए प्रति व्यक्ति आय में तीव्रता के साथ वृद्धि हो क्योंकि आय का सीधा संबंध लोगों के जीवन स्तर से है। प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होने से क्रय शक्ति में वृद्धि होती है, जिसके परिणामस्वरूप लोगों के जीवन स्तर में वृद्धि से रहन–सहन का स्तर भी बढ़ेगा।

वैसे भी अल्पविकसित देशों की मुख्य समस्या दरिद्रता, भुखमरी, जनसंख्या विस्फोट आय की असमानता या अमीर–गरीब के बीच आर्थिक अंतर में वृद्धि होती है, तो केवल राष्ट्रीय आय में वृद्धि के परिणामस्वरूप देश का आर्थिक विकास करना असंभव है और आय का उचित वितरण संभव ही नहीं है क्योंकि ऐसे राष्ट्रों में सरकारों को अनुत्पादक कार्यों पर भी व्यय करना पड़ता है जिसके कारण आय का बड़ा भाग ऐसी क्रियाओं पर व्यय होता है जहां से सरकार को बदले में कोई आय प्राप्त नहीं होती। यद्यपि इन क्रियाओं पर खर्च करने से सामाजिक कल्याण व विकास होता है और इस कार्य को पूरा करने के लिए विभिन्न संस्थाएं एवं विकसित राष्ट्रों के द्वारा आर्थिक सहायता भी प्रदान की जाती है लेकिन फिर भी तीव्र गति से विकास नहीं हो पाता है।

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि राष्ट्रों के विकास के लिए, आर्थिक समृद्धि के लिए प्रति व्यक्ति आय में निरंतर लम्बे समय तक वृद्धि होनी ही चाहिए। यह वृद्धि जनसंख्या की वृद्धि दर से अधिक होनी चाहिए तभी आर्थिक विकास में वृद्धि होगी अर्थात प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि जनसंख्या के आकार पर निर्भर करती है। यदि आय की तुलना जनसंख्या कम है तो आर्थिक विकास अधिक और यदि आय की तुलना में जनसंख्या अधिक है तो आर्थिक विकास की दर में कमी होगी।

आय व जनसंख्या का संबंध – आय व जनसंख्या का संबंध निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है।

वास्तविक आय > जनसंख्या वृद्धि दर

जब वास्तविक आय जनसंख्या वृद्धि से अधिक होती है तो वह बचत व निवेश को प्रेरित करती है जिससे औद्योगीकरण को बढ़ावा मिलता है साथ ही रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप आर्थिक संवृद्धि और विकास की गति तेज होती है।

वास्तविक आय < जनसंख्या की वृद्धि दर

जनसंख्या वृद्धि दर में अधिकता देश के आर्थिक विकास में बाधक है क्योंकि आय का स्तर कम हो जाने से बचत व निवेश कम होते हैं औद्योगीकरण नहीं हो पाता, जिसके परिणामस्वरूप रोजगार के अवसर न मिलने के कारण बेरोजगारी की स्थिति आ जाती है। जिसके कारण लोगों का जीवन स्तर निम्न हो जाता है जिससे आर्थिक विकास की वृद्धि में रुकावट आती है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. विश्व की अर्थव्यवस्थाओं को सामान्यतः कितने वर्गों में विभाजित किया गया है?

   (क) एक   (ख) दो

   (ग) तीन   (घ) चार

2. "आर्थिक विकास मानवीय प्रयत्नों का फल है।" किसका कथन है?

   (क) शुम्पीटर   (ख) कोलीन क्लार्क

   (ग) आर्थर लुइस   (घ) मैडिसन

1.3 विकासशील देशों की विशेषताएं

अल्पविकास या अल्पविकसित अर्थव्यवस्था को परिभाषित करना काफी कठिन है। नोबल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री सैम्युलसन के अनुसार एक प्रकार से प्रत्येक देश ही अल्पविकसित है, क्योंकि उसने अभी पूर्णता प्राप्त नहीं की है, उसमें आगे उन्नति के अवसर हैं। वास्तव में विश्व के देशों में इतनी भिन्नता पाई जाती है कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्था का एक सामान्य मापदंड तैयार करना कठिन हो जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस तथा पश्चिमी जर्मनी में प्राकृतिक साधन बहुत अधिक पाये जाते हैं, ये अर्थव्यवस्थाएं विकसित अर्थव्यवस्थाएं हैं। परंतु लैटिन अमेरिका और अफ्रीका के देशों में भी प्राकृतिक साधन अधिक मात्रा में पाये जाते हैं फिर भी ये अर्थव्यवस्थाएं अल्पविकसित हैं। कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, ब्रिटेन, फ्रांस, स्विट्जरलैंड कम जनसंख्या वाले देश हैं, ये देश विकसित देश हैं। इसी प्रकार कांगो, ग्याना, सूडान, अर्जेन्टाइना तथा नेपाल भी कम जनसंख्या वाले देश हैं परंतु ये अल्पविकसित हैं। अतः जनसंख्या के आधार पर भी यह कहना कठिन है, कि कोई देश विकसित है या अल्पविकसित। कुछ अर्थशास्त्रियों का विचार यह है कि जिन अर्थव्यवस्थाओं में

टिप्पणी

माध्यमिक आर्थिक क्रियाएं अर्थात उद्योगों तथा आर्थिक क्रियाओं जैसे बीमा, बैंकिंग आदि सेवाओं का अधिक महत्व है, उन अर्थव्यवस्थाओं को विकसित अर्थव्यवस्थाएं कहा जाता है। इसके विपरीत जिन अर्थव्यवस्थाओं में प्राथमिक आर्थिक क्रियाओं अर्थात कृषि, पशुपालन आदि का अधिक महत्व है, उन्हें अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाएं कहा जाता है। अर्थव्यवस्थाओं का यह वर्गीकरण भारत, पाकिस्तान तथा बांग्लादेश के संबंध में तो लागू हो सकता है परंतु डेनमार्क, ऑस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड के संबंध में लागू नहीं होता, ये देश उद्योग प्रधान देश नहीं होते हुए भी विकसित देश है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि विश्व की अर्थव्यवस्थाओं का विकसित तथा अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में वर्गीकरण करना काफी कठिन है परंतु फिर भी अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं की कई ऐसी विशेषताएं हैं, जैसे प्रति व्यक्ति आय का बहुत कम होना, जीवन स्तर नीचा होना, कृषि का पिछड़ापन, उद्योगों का निम्न स्तर पर विकास, बेरोजगारी, अशिक्षा, रूढ़िवादिता आदि, जिनके आधार पर इन अर्थव्यवस्थाओं को विकसित अर्थव्यवस्थाओं से अलग किया जा सकता है।

विकासशील देशों की विशेषताएं

अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में कुछ असमानताओं के होते हुए भी बहुत से ऐसे लक्षण पाये जाते हैं, जो लगभग सभी विकासशील देशों में एक समान होते हैं। प्रो. हार्वे लेबिन्सटाईन ने विकासशील देशों की मुख्य विशेषताओं को चार भागों में बांटा है–

(क) आर्थिक विशेषताएं

(ख) सामाजिक विशेषताएं

(ग) सांस्कृतिक विशेषताएं

(घ) जनसांख्यिकीय विशेषताएं

आर्थिक विशेषताएं

विकासशील देशों की मुख्य आर्थिक विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. **कम प्रति व्यक्ति आय**– अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में प्रति व्यक्ति आय का स्तर नीचा पाया जाता है। प्रो. कुरिहारा के अनुसार ''प्रति व्यक्ति वास्तविक आय का कम होना अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं की मुख्य विशेषता है।'' वर्ल्ड एटलस ने संसार के विभिन्न देशों को प्रति व्यक्ति आय के आधार पर तीन भागों में बांटा है– (a) कम आय वाले देश, जिनकी प्रति व्यक्ति आय 370 डॉलर से कम है। (b) मध्यम आय वाले देश, जिनकी प्रति व्यक्ति आय 3000 डॉलर से 4000 डॉलर है तथा (c) ऊंची आय वाले या विकसित देश जिनकी प्रति व्यक्ति आय 10000 डॉलर या उससे अधिक है।

   भारत की प्रति व्यक्ति आय संसार के लगभग 101 देशों से कम है। संसार की लगभग 77 प्रतिशत जनसंख्या विकासशील देशों में रहती है तथा संसार की केवल 23 प्रतिशत जनसंख्या विकसित देशों में रहती है, जबकि संसार के कुल उत्पादन में विकासशील देशों का भाग केवल 19 प्रतिशत है इसके विपरित विकसित देशों का संसार के कुल उत्पादन में भाग 81 प्रतिशत है।

टिप्पणी

स्विट्जरलैंड जैसे विकसित देश के एक व्यक्ति की प्रतिदिन की औसत आय 580 रुपये के लगभग है जबकि भारत जैसे विकासशील देश में एक व्यक्ति की प्रतिदिन की औसत आय 6 रुपये है। इसका अर्थ यह हुआ कि विकसित देश में व्यक्ति की प्रतिदिन की आय एक विकासशील देश के व्यक्ति की तुलना में 96 गुना अधिक है अतः विकासशील देशों में व्यापक गरीबी पाई जाती है।

2. **निम्न रहन–सहन स्तर**– विकासशील देशों के लोगों का जीवन स्तर बहुत ही नीचा है। विकासशील देशों में प्रति व्यक्ति केवल 2000 कैलोरी प्राप्त करता है, जबकि एक स्वस्थ व्यक्ति को लगभग 2500 कैलोरी मिलनी चाहिए। इसके विपरीत विकसित देशों में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन औसतन 3500 कैलोरी प्राप्त करता है। भारत जैसे विकासशील देश में एक व्यक्ति प्रतिदिन 49 ग्राम प्रोटीन, 30 ग्राम चिकनाई, वसा तथा 8 ग्राम चीनी का उपभोग करता है जबकि अमेरिका में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 107 ग्राम प्रोटीन 169 ग्राम, वसा तथा 39 ग्राम चीनी का उपभोग करता है। एक विकासशील देश में विकसित देशों की तुलना में जीवन स्तर बहुत ही निम्न होता है।
3. **आर्थिक विषमताएं**– विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों में आर्थिक असमानताएं पाई जाती हैं। इन देशों में राष्ट्रीय आय का एक बहुत बड़ा भाग थोड़े से लोगों के हाथ में केंद्रित हो जाता है। परंतु इन देशों के धनी व्यक्ति अपने धन का अधिक भाग पूंजी–निर्माण के स्थान पर शान–शौकत की वस्तुओं पर खर्च कर देते हैं।
4. **गतिहीन अर्थव्यवस्था**– विकासशील अर्थव्यवस्थाएं गतिहीन होती हैं। एक गतिहीन अर्थव्यवस्था होती है, जिसमें लगभग सारी आय का उपभोग कर लिया जाता है, निवेश शून्य होता है तथा पूंजी के स्टॉक में कोई परिवर्तन नहीं होता है इसके फलस्वरूप प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर कम होती जाती है, विकासशील देशों की प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि कम होती जा रही है जबकि विकसित देशों की वृद्धि दर बढ़ती जा रही है। इसका कारण यह है कि विकासशील देशों में जनसंख्या की वृद्धि दर में राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर की तुलना में अधिक वृद्धि हो रही है।
5. **प्राकृतिक साधनों का अपूर्ण विदोहन**– विकासशील देशों में खनिज पदार्थ, वन, जल, भूमि आदि प्राकृतिक साधनों का या तो उपयोग ही नहीं हो पाता या अपूर्ण उपयोग होता है जैसे भारत में जल और बिजली के बहुत अधिक साधन हैं, परंतु उनका उचित उपयोग न होने के कारण देश के आर्थिक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। विकसित देशों में प्राकृतिक साधन विकासशील देशों से अधिक नहीं दिए हैं। आज जो देश विकसित हैं वे कल तक विकासशील थे। वास्तव में विकासशीलता का मुख्य कारण इन साधनों का अपूर्ण उपयोग है।
6. **पूंजी की कमी**– विकासशील देशों में प्रति व्यक्ति पूंजी कम पाई जाती हैं। पूंजी निर्माण की दर भी कम होती है इन देशों में पूंजी–निर्माण की दर 5 प्रतिशत से 10 प्रतिशत होती है जबकि विकसित देशों में यह दर 20 प्रतिशत से 25 प्रतिशत है। पूंजी निर्माण की दर कम होने के फलस्वरूप ये देश अपना आर्थिक विकास नहीं कर पाते।

टिप्पणी

विकासशील देशों में पूंजी की मात्रा भी बहुत कम है, इस संबंध में दो महत्वपूर्ण निर्देशक तत्व इस्पात तथा बिजली है। भारत में इस्पात का प्रति व्यक्ति उत्पादन 1.5 किलोग्राम है, जबकि जापान में 952 तथा यू.एस.ए. में 540 किलोग्राम है। इसी प्रकार भारत में प्रति व्यक्ति बिजली का उत्पादन 150 किलोवाट घंटे हैं, जबकि यू.एस.ए. में 9871 किलोवाट घंटे है। पूंजी कमी के कारण इन देशों के प्राकृतिक साधनों का पूंजी उपयोग नहीं हो पाता।

7. **प्राथमिक क्षेत्र पर निर्भरता**— अधिकांश विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में कृषि महत्वपूर्ण आर्थिक क्रिया है। यह 70 प्रतिशत से अधिक लोगों को रोजगार प्रदान करती है और कुल राष्ट्रीय आय का 50 प्रतिशत से भी अधिक भाग कृषि से प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त विकसित अर्थव्यवस्थाओं जैसे यू.एस.ए. में 4 प्रतिशत व इंग्लैंड में 2 प्रतिशत, जर्मनी में 5 प्रतिशत तथा जापान में 13 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर करती है। यू.एस.ए. के कुल राष्ट्रीय उत्पादन में कृषि उत्पादन का भाग केवल 3 प्रतिशत है, इंग्लैंड में 2 प्रतिशत तथा फ्रांस में 5 प्रतिशत है। विकासशील देशों में कृषि मुख्य उद्योग होते हुए भी पिछड़ा हुआ उद्योग है। कृषि का प्रति हैक्टेयर उत्पादन विकसित देशों की तुलना में बहुत कम होता है। इन देशों में कृषि केवल जीवन निर्वाह का एक साधन मात्र है। कृषि की प्रधानता होने के कारण अल्पविकसित देशों की 70 से 80 प्रतिशत तक जनंसख्या गांवों में रहती है, जबकि आस्ट्रेलिया में गांवों में केवल 14 प्रतिशत, अमेरिका में 26 प्रतिशत तथा जापान में 28 प्रतिशत जनसंख्या रहती है। कुछ विकासशील देशों में खनिज उद्योग या बागान जैसे, रबड़, चाय, कॉफी आदि महत्वपूर्ण आर्थिक क्रियाएं हैं परंतु इन खानों तथा बागानों में विदेशी पूंजी लगती रहती है तथा इनका अधिकतर भाग निर्यात कर दिया जाता है, देश के औद्योगीकरण पर इनका बहुत कम प्रभाव पड़ता है।

8. **विदेशी व्यापार पर निर्भरता**— विकासशील देशों के कुल निर्यात का 9 प्रतिशत भाग प्राथमिक वस्तुओं जैसे कृषि उपज, खनिज पैट्रोल के निर्माता का होता है जबकि ये देश तैयार माल का आयात करते हैं। अधिकतर विकासशील देश केवल एक या दो वस्तुओं के निर्यात पर निर्भर करते हैं, जैसे बंगलादेश की जूट, ब्राजील की कॉफी, मलाया की रबड़, क्यूबा की चीनी, सऊदी अरब का तेल तथा भारत की जूट तथा चाय पर निर्भरता है। कई विकासशील देशों, जैसे तेल उत्पादन करने वाले मध्यपूर्व के देश, पश्चिमी अमेरिका के देश, मलाया ग्याना अफ्रीका आदि देशों की राष्ट्रीय आय का एक बड़ा महत्वपूर्ण भाग निर्यातों से प्राप्त होता है। विदेशी व्यापार पर निर्भर होने के कारण इन अर्थव्यवस्थाओं में विदेशी पूंजी का निवेश काफी मात्रा में पाया जाता है। विदेशों में होने वाले आर्थिक उतार—चढ़ाव के फलस्वरूप इन अर्थव्यवस्थाओं को आर्थिक चक्र का सामना करना पड़ता है। निर्मित वस्तुओं की तुलना में कृषि वस्तुओं का मूल कम होता है, जिसके कारण, व्यापार की शर्तें, विकासशील देशों के प्रतिकूल रहती हैं। विकासशील देशों का संसार के निर्यात में भाग कम होता जा रहा है।

9. **पिछड़ा हुआ औद्योगिक ढांचा**— विकासशील देशों में औद्योगिक ढांचा कमजोर होता है। इन देशों की जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग कृषि में लगा होता

टिप्पणी

है और औद्योगिक क्षेत्र का राष्ट्रीय आय में योगदान बहुत कम होता है। इसका एक मुख्य कारण यह है कि इन देशों में योग्य उद्यमियों की कमी पाई जाती है। इनका सांस्कृतिक वातावरण योग्य उद्यमियों तथा नव प्रर्वतकों के विकास के लिए उपयोगी नहीं होता। इन देशों का औद्योगिक ढांचा भी कमजोर होता है। इन देशों में भारी उद्योग जैसे मशीन उद्योग, इस्पात उद्योग नहीं के बराबर होते हैं? इसके फलस्वरूप औद्योगिक ढांचे के बुनियादी तत्व नहीं के बराबर होते हैं। उद्योगों की उत्पादन तकनीक पुरानी होती है जो थोड़े बहुत उद्योग हैं वे उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। इनमें भी अधिकतर कुटीर तथा छोटे पैमाने के उद्योग होते हैं। ये पुरानी तकनीक से परंपरागत वस्तुएं तैयार करते हैं।

10. **विदेशी ऋणग्रस्तता**– विदेशी ऋणग्रस्तता का मुख्य कारण यह है कि इन देशों की निर्यात क्षमता कम होती है तथा आयात की आवश्यकताएं अपेक्षाकृत अधिक होती हैं। इन देशों की दीर्घकालीन ऋणग्रस्तता को निम्नलिखित सूत्र की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है–

$$B = P + M - E$$

(यहां B = विदेशी ऋण, P = पूंजीगत पदार्थों के लिए शुद्ध विदेशी भुगतान, M = शुद्ध आयात, E = शुद्ध निर्यात)

उपरोक्त सूत्र से ज्ञात होता है, कि आयात के बढ़ने या निर्यात के कम होने के कारण विदेशी ऋण, बढ़ जाता है। इन देशों का यह ऋण बढ़ता जाता है, क्योंकि इन देशों की प्रतियोगी शक्ति कम होती है, इसलिए ये अंतर्राष्ट्रीय बाजार में विकसित देशों के मुकाबले में अपना उत्पादन अधिक नहीं बेच पाते। इसलिए उनके निर्यात नहीं बढ़ पाते परंतु आयात बढ़ जाते हैं।

11. **निर्धनता का दुष्चक्र**– विकासशील अर्थव्यवस्थाएं निर्धनता के दुष्चक्र में फंसी हुई हैं। इन देशों के आर्थिक रूप से पिछड़ेपन का मुख्य कारण पूंजी की कमी माना जाता है। इस चक्र के दो पक्ष हैं– पूर्ति पक्ष तथा मांग पक्ष। पूर्ति पक्ष– पूर्ति पक्ष में निर्धनता के दुष्चक्र का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है– इन देशों में लोगों की वास्तविक आय कम होती है। वास्तविक आय कम होने का मुख्य कारण कम उत्पादकता है, उत्पादकता में पाई जाने वाली कमी का कारण पूंजी की कमी है, पूंजी की कमी मुख्य रूप से बचत की कमी के कारण है, बचत की कमी का मुख्य कारण आय की कमी है, इस प्रकार निर्धनता का दुष्चक्र पूरा हो जाता है–

कम आय – कम बचत – कम पूंजी – कम उत्पादकता – कम आय

मांग पक्ष– निर्धनता के दुष्चक्र का मांग पक्ष यह है कि इन देशों में आय कम होने के कारण लोगों की क्रय शक्ति कम होती है, क्रय शक्ति कम होने के कारण निवेश करने की प्रेरणा कम होती है, निवेश कम होने के कारण पूंजी का निर्माण कम होता है। इसके फलस्वरूप उत्पादकता कम होती है, उत्पादकता कम होने के कारण आय कम होती है, इस प्रकार मांग पक्ष की ओर भी निर्धनता का दुष्चक्र पूरा हो जाता है।

कम आय–कम क्रय शक्ति–निवेश की कम प्रेरणा–पूंजी की कमी–कम उत्पादकता–कम आय। निर्धनता के दुष्चक्र को निम्नलिखित रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

टिप्पणी

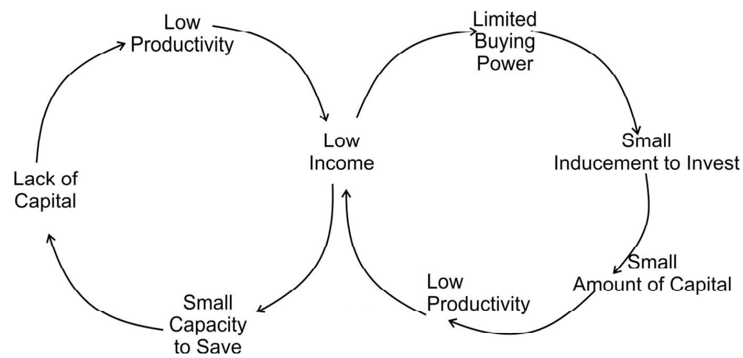

12. **त्रिकोणी अर्थव्यवस्था**– अधिकतर विकासशील अर्थव्यवस्थाएं त्रिकोणी अर्थव्यवस्थाएं होती हैं। इनमें पाये जाने वाले तीन मुख्य क्षेत्र इस प्रकार हैं–(i) जीवन निर्वाह क्षेत्र (ii) बाजार क्षेत्र (iii) विदेशी द्वारा संचालित क्षेत्र। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में अधिकतर ग्रामीण क्षेत्र में जीवन–निर्वाह अर्थव्यवस्था पाई जाती है, यह अर्थव्यवस्था एक पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था है जिसमें लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि है। छिपी हुई बेरोजगारी इस क्षेत्र की मुख्य विशेषता है। यह क्षेत्र ही इन देशों का मुख्य क्षेत्र होता है। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के शहरों में एक संगठित क्षेत्र पाया जाता है, इसमें बड़े पैमाने के उद्योग व लघु उद्योग सम्मिलित हैं, इस क्षेत्र को बाजार क्षेत्र कहा जाता है। इस क्षेत्र में बैंकिंग प्रणाली तथा साख प्रणाली भी विकसित होती है। यह क्षेत्र विकसित अर्थव्यवस्थाओं का एक लघु स्तरीय प्रतिरूप है, परंतु इस क्षेत्र का राष्ट्रीय आय में बहुत कम महत्व है। विकासशील अर्थव्यव्यस्थाओं में विदेशी निवेश भी कई महत्वपूर्ण उद्योगों, खनिज पदार्थों, बागानों तथा निर्यात व्यापार के विकास के लिए उत्तरदायी होता है। यह क्षेत्र भी विकसित होता है परंतु राष्ट्रीय आय में इसका योगदान कम होता है। इस क्षेत्र को विदेशों द्वारा संचालित क्षेत्र कहा जाता है। इसका अधिकतर उत्पादन विदेशों को भेज दिया जाता है।

सामाजिक विशेषताएं

इन देशों की मुख्य सामाजिक तथा राजनैतिक विशेषताएं जो इनके आर्थिक पिछड़ेपन के लिए काफी सीमा तक उत्तरदायी हैं, अग्रलिखित हैं–

1. **दार्शनिक तथा धार्मिक रुकावटें**– विकासशील देशों की संस्कृति अनार्थिक है। इससे अभिप्राय यह है कि लोग अपनी सीमित आय से ही संतुष्ट रहते हैं, वे अधिक आय प्राप्त करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं करते। इन देशों के अधिकतर लोग गांवों में रहते हैं, इन देशों के निवासी भाग्य में अधिक विश्वास करते हैं। ये लोग भौतिक कल्याण की तुलना में आध्यात्मिक कल्याण पर ज्यादा जोर देते हैं। वे इस संसार की अपेक्षा दूसरे संसार के लिए अधिक चिंतित नजर आते हैं। इसके फलस्वरूप वे आर्थिक विकास के लिए कोई प्रयत्न नहीं करते।

2. **सामाजिक स्तर का स्रोत**– विकासशील देशों में अनार्जित आय जैसे, उत्तराधिकार में मिला धन अथवा किराये या लगान के रूप में मिली आय को सामाजिक दृष्टि से उत्तम माना जाता है। लोगों का सामाजिक स्तर उनकी मेहनत से नहीं आंका जाता बल्कि उनकी जायदाद तथा दूसरों को अपने अधीन रखने की योग्यता पर निर्भर करता है, इसके विपरीत विकसित देशों में लोगों का सामाजिक स्तर उनकी व्यावसायिक सफलता और काम करने की योग्यता पर निर्भर करता है। इसलिए विकासशील देशों में लोगों को अधिक परिश्रम करने की अधिक प्रेरणा नहीं मिलती।
3. **राजनैतिक–भ्रष्टाचार**– अधिकतर विकासशील देशों में सरकार अस्थिर होती है। ये देश राजनैतिक दृष्टि से कमजोर होते हैं। इन देशों में कुशल, योग्य, ईमानदार प्रशासनिक सेवाओं का अभाव पाया जाता है। लोग गरीबी के कारण राजनैतिक अधिकारों के प्रति सजग नहीं होते हैं। राजनीतिज्ञों के भ्रष्ट होने के कारण सरकारी नीतियों में बराबर परिवर्तन होता रहता है, जिससे आर्थिक विकास में बाधा पहुंचती है।

सांस्कृतिक विशेषताएं

किसी भी देश की सांस्कृतिक विशेषताएं उस देश को ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व को प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए भारत एक अल्पविकसित देश है। भारतीय संस्कृति ने अपनी खूबियों के द्वारा अन्य देशों को अपनी तरफ आकर्षित किया है। इन्हीं सकारात्मक पहलुओं के साथ अल्पविकसित देशों की संस्कृति में अनेक नकारात्मक पक्ष भी होते हैं जिसके कारण वह देश विकसित नहीं हो पाते।

अल्पविकसित देशों की अधिकांश जनसंख्या अंधविश्वासी, भाग्यवादी तथा पुरातनपंथी होती है क्योंकि इन पर धार्मिक व आध्यात्मिक विचारों का बहुत गहरा प्रभाव होता है। भाग्यवादी होने के कारण ये लोग विकास के लिए प्रयत्न व प्रयास नहीं करते और निर्धनता को ईश्वरीय देन समझते हैं। इस प्रकार के देशों में निर्धनता महासागर की गहराई की भांति अथाह होती है।

मेयर एंड बाल्डविन के मतानुसार, अल्पविकसित देशों की सांस्कृतिक मूल्यावस्था, आर्थिक उपलब्धियों के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है जिसके फलस्वरूप इन देशों के लोग आर्थिक दृष्टि से पिछड़े बने रहते हैं।

अल्पविकसित देशों में लोग अशिक्षित व रूढ़िवादी होने के कारण नव–प्रवर्तनों द्वारा निर्मित विकास के नये मूल्यों को स्वीकार करना पसंद नहीं करते हैं। प्रो. हैनसन ने भारत के संदर्भ में विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि, "भारत में कृषि कार्य अधिकतर रीति–रिवाजों व परंपराओं द्वारा नियंत्रित किये जाते हैं। अधिकांश कृषक कृमि हत्या के विरोधी है क्योंकि जीव हत्या घोर पाप है। वे लोग नये सुधरी किस्म के बीजों को संदेह की दृष्टि से देखते हैं। इनका प्रयोग एक जुआ है उर्वरकों का प्रयोग वास्तव में, एक जोखिम उठाना तथा असफलता के समान है और इस असफलता का दूसरा नाम भुखमरी है।"

रीति–रिवाजों तथा रूढ़िवादिता का दबाव– प्रो. मिर्डल ने अपनी पुस्तक "Asian Drama" में इस बात की चर्चा की है कि अधिकांश विकासशील देशों में पुराने

रीति–रिवाजों तथा अंधविश्वास के कारण गरीबी पाई जाती है। इन देशों के लोग अपने पुराने रीति–रिवाजों तथा रहन–सहन को छोड़ना नहीं चाहते। ग्रामीण क्षेत्रों में तो रूढ़िवादिता तथा पुराने रीति–रिवाजों का बोल–बाला है और इन्हीं रूढ़ियों के कारण ये अर्थव्यवस्थाएं गतिहीन पायी जाती हैं।

जनसांख्यिकीय विशेषताएं

विकासशील देशों में मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रकार की जनसंख्या संबंधी विशेषताएं पाई जाती हैं–

1. **छिपी हुई बेरोजगारी**– विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की मुख्य विशेषता जनसंख्या में पाई जाने वाली आर्थिक बेरोजगारी, अल्पबेरोजगारी तथा छिपी बेरोजगारी है। छिपी बेरोजगारी अधिकतर कृषि क्षेत्र में पाई जाती है। छिपी बेरोजगारी से अभिप्राय यह है कि किसी काम पर आवश्यकता से अधिक लोग लगे हैं, यदि उसमें से कुछ लोगों को हटा दिया जाय तो भी काम पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ेगा। विकासशील देशों में छिपी हुई बेरोजगारी के अतिरिक्त संरचनात्मक बेरोजगारी तथा शिक्षित बेरोजगारी भी पाई जाती है। विकासशील देशों में बेरोजगारी की समस्या दीर्घकालीन समस्या है। विकसित देशों की तरह वह समस्या अल्पकालीन अथवा चक्रीय नहीं है।
2. **जनसंख्या का पिछड़ापन**– अधिकांश विकासशील देशों में जनसंख्या तो अधिक होती है परंतु यह जनसंख्या कार्यकुशलता की दृष्टि से पिछड़ी होती है। अधिकांश जनसंख्या अशिक्षित है, उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं है, इसलिए श्रम की कार्यकुशलता भी कम होती है। विकासशील देशों की जनसंख्या अनुकूल व रूढ़िवादी है। इन देशों की जनसंख्या में गतिशीलता भी कम पाई जाती है। इसका मुख्य कारण यह है कि विकासशील देश अपने मानवीय साधनों में बहुत कम निवेश करते हैं और इसके फलस्वरूप प्राकृतिक साधनों की तरह मानवीय साधनों का भी पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है।
3. **जनसंख्या की ऊंची वृद्धि दर**– अधिकांश विकासशील देशों की एक मुख्य विशेषता जनसंख्या की ऊंची वृद्धि दर है। जनसंख्या अधिक होने के फलस्वरूप देश में उपभोग अधिक होता है, बचत कम होती है इसके फलस्वरूप पूंजी–निर्माण कम होता है, तथा आर्थिक विकास की दर धीमी हो जाती है, निर्धनता रेखा से नीचे रहने वाले व्यक्तियों की संख्या बढ़ जाती है तथा बेरोजगारी में वृद्धि हो जाती है। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में जनसंख्या की वृद्धि दर अधिक होने के फलस्वरूप कुल जनसंख्या में बच्चों–युवकों का प्रतिशत अधिक होता है।

संक्षेप में, विकासशील अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जहां निर्धनता के दुष्चक्र के कारण उपलब्ध साधनों का समुचित प्रयोग न होने से प्रति व्यक्ति आय कम होने के फलस्वरूप लोगों का जीवन स्तर नीचा रहता है। अधिकतर अर्थव्यवस्थाओं ने आर्थिक विकास के लिए आर्थिक नियोजन का मार्ग अपनाया।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

3. निम्न में से किसने अल्पविकसित देशों की सांस्कृतिक मूल्यावस्था को आर्थिक उपलब्धियों के मार्ग में बाधक माना है?
   (क) मेयर एण्ड बाल्डविन (ख) एडम स्मिथ
   (ग) शुम्पीटर (घ) मैडिसन
4. रीति—रिवाजों तथा रुढ़िवादिता को किस अर्थशास्त्री ने आर्थिक विकास में बाधक माना है?
   (क) शुम्पीटर (ख) मैडिसन
   (ग) आर्थर लुइस (घ) मिर्डल

1.4 आर्थिक वृद्धि और विकास

किसी देश की आर्थिक वृद्धि व विकास की निर्भरता निम्न तत्वों पर होती है—

1.4.1 पूंजी

आर्थिक विकास की प्रक्रिया का एक अन्य महत्वपूर्ण कारक भौतिक पूंजी है। भौतिक पूंजी में सभी मानव निर्मित मशीनें, उपकरण आदि शामिल हैं, जो वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में सहायक हैं। भौतिक पूंजी देश की वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन की क्षमता बढ़ाने में उपयोगी है। यह विशेष रूप से कम विकसित देशों के लिए अधिशेष श्रम के कारण महत्वपूर्ण है। काम पूंजी का परिणाम कम पूंजी—श्रम अनुपात होता हैं। इससे उत्पादकता कम होती है। भौतिक पूंजी में किसी भी वृद्धि से पूंजी की उपलब्धता में सुधार होता है। यह श्रम और विशेषज्ञता के विभाजन को बढ़ावा देता है और इसलिए श्रम की उत्पादकता में वृद्धि होती है, जिससे बाजार का विस्तार और विकास होता है।

भौतिक पूंजी की उपलब्धता से कृषि क्षेत्र की उत्पादकता में सुधार करने में भी मदद मिल सकती है। पुरानी तकनीक के उपयोग के कारण अविकसित देशों में कृषि क्षेत्र की उत्पादकता कम है। बेहतर पूंजी उपकरण कृषि उत्पादकता में सुधार करने में मदद करते हैं। इसके अलावा, भौतिक पूंजी पूंजी के उत्पादन को बढ़ावा देती है जिससे अर्थव्यवस्था में औद्योगिक वस्तुओं के खपत के पक्ष में बदलाव होता है, जिससे लोगों के जीवन स्तर में सुधार होता है जो देश को आगे बढ़ने में मदद करता है।

भौतिक पूंजी का निर्माण भी किसी देश में तकनीकी प्रगति का एक इंजन है। तकनीक में किसी भी सुधार से सामग्री और सेवाओं के उत्पादन की क्षमता में सुधार होता है। यह तकनीक में प्रगति को प्रभावित करने वाले पैमाने के अर्थशास्त्र के परिणामस्वरूप हो सकता है।

1.4.2 भौतिक और मानव संसाधन

टिप्पणी

आर्थिक कारक

- **प्राकृतिक संसाधन** : आर्थिक विकास के लिए प्राकृतिक संसाधन बहुत महत्वपूर्ण हैं। पूरी दुनिया में व्यावहारिक रूप से हर वस्तु के लिए इनका उपयोग किया जाता है। प्राकृतिक संसाधन से संपन्न देश तेजी से विकसित होने की स्थिति में होता है।
- **पूंजी संचय** : पूंजी किसी भी उत्पादित वस्तु को संदर्भित करती है जो आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण कार्य करने के लिए किसी व्यक्ति की शक्ति को बढ़ा सकती है। यह उत्पादन कार्य में एक निवेश है। पूंजी संचय से श्रम की कार्यक्षमता बढ़ती है। यह नई तकनीक की शुरुआत को बढ़ावा देती है।
- **संगठन** : आर्थिक विकास संगठन (EDO) आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह विशिष्ट संस्थाओं के रूप में और कुछ मामलों में स्थानीय सरकारों के विभागों के रूप में कार्य करते हैं। ये नए आर्थिक अवसरों की तलाश करते हैं और अपने मौजूदा व्यापार धन को बरकरार रखते हैं। ऐसे कई संगठन हैं जो आर्थिक विकासक के साथ साझेदारी में काम करते हैं, हालांकि उनका प्राथमिक कार्य आर्थिक विकास नहीं है, जैसे कि समाचार मीडिया, जनोपयोगी सेवा, विद्यालय, स्वास्थ्य देखभाल प्रदाता, धर्म–आधारित संगठन और कॉलेज, विश्वविद्यालयों, और अन्य शिक्षा या अनुसंधान संस्थान।
- **तकनीकी प्रगति** : तकनीक शारीरिक श्रम में कमी और उद्योगों की उत्पादकता में वृद्धि में मदद करती है। इससे अधिशेष लाभ और श्रम होता है।

  उत्पादन का उपयोग निर्यात और राष्ट्रीय उपयोग के लिए किया जाता है। तकनीक और आर्थिक विकास के बीच संबंध अच्छी तरह से स्थापित है। एक लंबे समय तक आर्थिक विकास तकनीकी परिवर्तन पर निर्भर करता है। अर्थशास्त्रियों का मत है कि नई तकनीकों के निर्माण पर खर्च किए गए संसाधनों के स्तर में निरंतर वृद्धि से आर्थिक विकास में निरंतर वृद्धि होती है।
- **संरचनात्मक परिवर्तन** : आर्थिक विकास के लिए संरचनात्मक परिवर्तनों की आवश्यकता होती है। विकसित देशों में उत्पादकता वृद्धि काफी हद तक तकनीकी नवाचार पर निर्भर करती है। हालांकि विकासशील देशों में, विकास और विकास तकनीक उत्पादन के ढांचे को बदल कर अधिक उच्च स्तर की उत्पादकता प्राप्त करने बारे में अधिक हैं न कि तकनीक में बदलाव लाने के बारे में है। इस तरह के संरचनात्मक परिवर्तन को काफी हद तक इस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है–
  - o मौजूदा तकनीकों को अपनाना और अनुकूलन। उदाहरण के लिए, कम रखरखाव के साथ उपकरणों को अपनाने और बेहतर सिंचाई सुविधाओं से किसानों को सहायता मिलेगी।
  - o वस्तुओं और सेवाओं के विनिर्माण से आयात को प्रतिस्थापित करना और दुनिया के बाजारों में प्रवेश करना। उदाहरण के लिए, मेक इन इंडिया पर जोर भारत को ताइवान की तरह ही एक आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था बनाने का

प्रयास है, ताइवान अपने विनिर्माण और इलेक्ट्रॉनिक्स उद्योग के लिए प्रसिद्ध है।

o भौतिक और मानव पूंजी का तेजी से संचय सुनिश्चित करना। मानव पूंजी का संचय सीधे आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने में मदद करता है। यह श्रम दक्षता और विशेषज्ञता को बढ़ाता है।

टिप्पणी

गैर–आर्थिक कारक

• **सामाजिक कारक – मूल्य और संस्थाएं** : प्रगति के प्रति सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण आर्थिक विकास और तरक्की को प्रभावित करते हैं। यह पता चला है कि आम तौर पर उपलब्धि, व्यक्तिगत लाभ और धन और चीजों के संचय के मूल्य वाले समाज आर्थिक विकास के बड़े स्तर का एहसास करते हैं। वैकल्पिक रूप से, वैयक्तिक और समूह की उपलब्धि को हतोत्साहित करने वाले समाज एक धीमी गति से विकास करते हैं।

• **मानव संसाधन विकास** : आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से मानव संसाधन महत्वपूर्ण हैं। आर्थिक विकास के लिए लोग महत्वपूर्ण हैं :

o उन्हें उत्पादन के एक साधन के रूप में उपयोग किया जाता है और अन्य कारकों के साथ संयोजन में काम करने के लिए उत्पादन के कारकों के रूप में हैं।

o वे उपभोक्ता हैं और आर्थिक विकास का उद्देश्य उनके आर्थिक कल्याण को अधिकतम करना है

इस प्रकार, आप कह सकते हैं कि लोग आर्थिक विकास को प्राप्त करने के साधन हैं और उसका उद्देश्य भी है। इसलिए देश की जनसंख्या का स्वरूप और आकार, किसी देश के आर्थिक विकास के निर्धारण में एक महत्वपूर्ण कारक है।

• **राजनीतिक और प्रशासनिक कारक** : राजनीतिक और प्रशासनिक परिस्थितियां विकास के अन्य महत्वपूर्ण कारक हैं। आर्थिक विकास के लिए शांति और स्थिर नीतियां अपरिहार्य हैं। यदि किसी देश के लोग अपनी सरकार की नीतियों के खिलाफ हैं, तो देश में व्यापार और वाणिज्य गतिविधियों पर खतरा होगा। यदि किसी देश में सरकार के बार–बार परिवर्तन होते हैं, तो इसका अर्थ नीतियों और प्राथमिकताओं में बदलाव होगा, जिससे अर्थव्यवस्था में अनिश्चित स्थिति पैदा हो सकती है। देश में राजनीतिक अस्थिरता की स्थिति विदेशी निवेश को आकर्षित नहीं कर सकती है। हम अगली इकाई में मानव संसाधन विकास के बारे में अधिक चर्चा करेंगे।

(I) प्राकृतिक संसाधन/भौतिक संसाधन

प्राकृतिक संसाधन वह संसाधन हैं जो प्रकृति द्वारा प्रदान किए गए हैं। इसमें भूमि पर और पानी में उपलब्ध सभी संसाधन शामिल हैं। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, प्राकृतिक संसाधन वह हैं जो प्राकृतिक वातावरण में मानव द्वारा पाए जाते हैं जिनका उपयोग किसी न किसी प्रकार से मानव के लाभ के लिए किया जा सकता है। इसमें पौधों और जानवरों के पोषण के लिए मिट्टी, पृथ्वी पर रहने वाले जीवों के लिए पानी, खनिज और ऊर्जा की स्रोत चट्टानें जैसे कि जीवाश्म ईंधन, कोयला, आदि। कई अन्य उत्पादों के

अलावा, हवा और धूप भी प्राकृतिक संसाधन हैं और पृथ्वी पर जीवन की बुनियादी आवश्यकता भी है।

जब 1960 के दशक में विकास के आधुनिक सिद्धांत विकसित किए जा रहे थे, उनमे प्राकृतिक संसाधन की बात नहीं थी। 1960 के दशक के उत्तरार्ध में पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों की भूमिका को महत्वपूर्ण माना गया था। इस युग के प्राकृतिक और पर्यावरण अर्थशास्त्रियों ने पर्यावरण और आर्थिक दुनिया के पारस्परिक प्रभाव पर काम किया। 1970 के दशक में, आर्थिक नीति–निर्माताओं ने पर्यावरणीय कारकों को महत्व देना शुरू कर दिया क्योंकि वे समझते थे कि पर्यावरण नीति के घटकों को नजरअंदाज करने पर व्यापक आर्थिक नीतियां अप्रभावी हो जाएंगी। 1980 के दशक में आर्थिक रूप से स्थायी विकास के बारे में अभूतपूर्व जागरूकता देखी गई। सतत आर्थिक विकास स्पष्ट रूप से अक्षय और गैर–नवीकरणीय प्राकृतिक संसाधनों की गुणवत्ता, स्तर और प्रबंधन और पर्यावरण की स्थिति पर निर्भर करता है।

पर्यावरण की स्थिति पुनः प्रदूषण की वृद्धि और पर्यावरण द्वारा प्रदूषण के प्राकृतिक आत्मसात पर निर्भर है। प्राकृतिक संसाधनों को आर्थिक ढांचे के भीतर आवंटित किया जाता है और अंततः कृषि, घरेलू उत्पादन, विनिर्माण और वाणिज्यिक सेवाओं ,में अंतिम उत्पादित उत्पादन होता है। सामग्री का उत्पादन, आम तौर पर (i) निकाले गए प्राकृतिक पदार्थों के प्रवाह; (ii) पूंजी और श्रम का प्रवाह; (iii) पर्यावरणीय प्रणालियों द्वारा प्रदत्त पर्यावरणीय सेवाएं पर निर्भर करता है।

जलवायु परिस्थितियां और जल निकाय जैसे उत्पादक निवेश कृषि के लिए अनुकूल (या नहीं) रहे हैं।

विशेष रूप से आर्थिक विकास के प्रारंभिक चरणों में प्राकृतिक संसाधन महत्वपूर्ण हैं। कम विकसित देशों में, कृषि क्षेत्र निर्यात के लिए अधिशेष उत्पन्न करने का प्रमुख स्रोत है ताकि देश की औद्योगिक वृद्धि के लिए पूंजी और तकनीक का आयात किया जा सके। इससे पूंजी निर्माण में मदद मिलेगी जिससे औद्योगिक विकास शुरू होगा। इससे कृषि क्षेत्र से अधिशेष श्रम को स्थानांतरित करने में मदद मिलती है। इसलिए आर्थिक विकास की प्रक्रिया कम विकसित देशों में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों द्वारा शुरू की जाती है।

औद्योगिक विकास को दो तरीकों से प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता द्वारा बढ़ावा दिया जाता है। सबसे पहले, प्रारंभिक चरण में कई उद्योगों के लिए कच्चा माल इन प्राकृतिक संसाधनों से आता है। ये उत्पाद अर्थव्यवस्था में आगे की औद्योगिक गतिविधियों को प्रोत्साहित कर सकते हैं। दूसरे, इन प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित अंतिम वस्तुओं के उत्पादन से औद्योगिक वस्तुओं के लिए घरेलू बाजार को बढ़ावा मिल सकता है। इसलिए, बाजार और बाजार सम्बंधित गतिविधियों को प्रोत्साहित किया जाता है जिससे अर्थव्यवस्था में आगे की आर्थिक गतिविधियां हो सकती हैं।

संक्षेप में, आर्थिक विकास की अर्थव्यवस्था की प्रक्रिया में प्राकृतिक संसाधन महत्वपूर्ण हैं। लेकिन यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि ये संसाधन प्रकृति में सीमित हैं और इसलिए यह समझना महत्वपूर्ण है कि इनका कुशलता से उपयोग मानव के लाभ के लिए किया जाना चाहिए।

1.4.3 अनुसंधान और विकास एवं तकनीक

आर्थिक विकास और उत्पादकता बढ़ाने के लिए, देश अकसर अनुसंधान और विकास (आर एंड डी) में निवेश करते हैं। यह विज्ञान और तकनीक के लिए देश के समर्पण का संकेत है। अनुसंधान और विकास व्यय प्रति कार्यकर्ता उत्पादन में वृद्धि से कुल कारक उत्पादकता (टीएफपी) को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

तकनीक और आर्थिक विकास के बीच संबंध को अर्थशास्त्र के साहित्य में बड़े पैमाने पर स्वीकार किया गया है। कई सिद्धांतों ने आर्थिक विकास की प्रक्रिया में एक परिवर्तन अभिकर्ता के रूप में तकनीक को स्वीकार किया। रोमर, हेल्पमैन, ग्रॉसमैन, सोलो, आदि जैसे अर्थशास्त्री सुझाव देते हैं कि तकनीकी परिवर्तन से आर्थिक विकास होता है। उत्पादन की प्रक्रिया में तकनीक एक महत्वपूर्ण कारक है, जिसके परिणामस्वरूप पूरा कार्य एक बेहतर तरीके से होता है। तकनीक अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में उत्पादन की सुविधा प्रदान करती है और पूंजी और श्रम की बचत करती है। तकनीक संसाधनों के आर्थिक वस्तुओं के रूपांतरण के लिए उपयोग किए जाने वाला ज्ञान है। तकनीकी प्रगति का अर्थ है, आविष्कारों के रूप में वैज्ञानिक ज्ञान की उपलब्धता में वृद्धि, जिसका उपयोग वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के लिए किया जा सकता है।

आर्थिक विकास की प्रक्रिया में तकनीक की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। सबसे पहले, यह राष्ट्रीय संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग में मदद करता है जो अविकसित देशों में अप्रयुक्त रहते हैं जिससे उत्पादन को बढ़ावा मिलता है। यह इसे और अधिक उत्पादक बनाकर पूंजी की दक्षता में सुधार करने में भी मदद करता है।

तकनीकी सुधार का परिणाम श्रम और विशेषज्ञता में सुधार होता है जिससे उत्पादन बढ़ता है, श्रम की दक्षता में सुधार होता है और समय की बचत होती है।

तकनीक के कारण उत्पादन के मानकीकरण द्वारा सामग्री और सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार होता है । बेहतर तकनीक बड़े पैमाने पर अर्थव्यवस्थाओं में उत्पादन की लागत को कम करने में मदद करती है। हाल के समय में सूचना तकनीक क्रांति ने दुनिया को बदल दिया है। व्यापार और वाणिज्य दुनिया भर में फल–फूल रहा है और बाजारों का विस्तार हो रहा है। तकनीकी प्रगति के कारण वैश्वीकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप देशों की राष्ट्रीय आय और दुनिया की आय में वृद्धि हुई है।

मानव संसाधन

आर्थिक विकास के प्रारंभिक चरण के दौरान आर्थिक विकास की प्रक्रिया में श्रम ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। श्रम उत्पादन का एकमात्र कारक है जो आर्थिक संसाधनों का उत्पादन करने के लिए प्राकृतिक संसाधनों पर कार्य करता है। लेकिन जैसे–जैसे विकास होता है, कुशल श्रम की भूमिका बढ़ती है। विलियम आर्थर लेविस श्रम की असीमित आपूर्ति के अपने सिद्धांत में श्रम की भूमिका की व्याख्या करते हैं कि उद्योग के क्षेत्र में श्रम का उपयोग किया जाता है जो आर्थिक विकास की प्रक्रिया शुरू करता है। धीरे–धीरे श्रम कुशल हो जाता है।

सभी अर्थव्यवस्थाओं में, एक ही उम्र के अधिक शैक्षिक डिग्री वाले लोग कम शिक्षा वाले लोगों की तुलना में औसत उच्च आय अर्जित करते हैं, । दूसरे शब्दों में,

अतिरिक्त शिक्षा उच्च जीवन–काल की आय के रूप में भुगतान करती है। इस प्रकार, इस बहुत ही सरल अर्थ में, अधिक शिक्षा प्राप्त करने में व्यक्तियों द्वारा किया गया खर्च उनकी भविष्य की कमाई की क्षमता में निवेश होता है।

टिप्पणी

अर्थशास्त्रियों को लंबे समय से पता है कि लोग राष्ट्र के धन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। यह इस बात से मापा जाता है कि श्रम उत्पादन में क्या योगदान देता है, मनुष्य की उत्पादक क्षमता एक साथ लिए गए सभी अन्य प्रकार के धन से बड़ी है।

आर्थिक विकास में मानव पूंजी की भूमिका

विकसित देशों में कम विकसित देशों (LDC) से मानव पूंजी प्रवाह के संदर्भ में, भारत जैसे देश की आर्थिक वृद्धि के लिए विशेष मानव पूंजी के योगदान का मूल्यांकन करना दिलचस्प होगा। पहला, मानव पूंजी (शैक्षिक पूंजी) का भंडार, मानव विकास, आर्थिक विकास और गरीबी परस्पर अनन्य नहीं है। दूसरा, मानव पूंजी सिद्धांत दीर्घकालीन श्रम आपूर्ति का एक सिद्धांत है। शिक्षा में निवेश के परिणामस्वरूप, भारत की श्रम शक्ति में सन्निहित शैक्षिक पूंजी का भंडार काफी बढ़ गया है। इसलिए श्रम बल की गुणवत्ता में सुधार हुआ है। साथ ही, श्रम उत्पादकता में लगातार सुधार हुआ है। श्रम उत्पादकता में सुधार के लिए जिम्मेदार प्रमुख कारक मानव पूंजी में निवेश है।

आर्थिक विकास के लिए नौकरी के अवसरों को बदलने के लिए श्रमिकों के आंतरिक प्रवास की आवश्यकता होती है। युवा पुरुष और महिलाएं पुराने श्रमिकों की तुलना में अधिक आसानी से आगे बढ़ते हैं।

यह निश्चित रूप से आर्थिक समझ है जब कोई यह पहचानता है कि इस तरह के प्रवास की लागत मानव निवेश का एक रूप है। युवा लोगों के पास पुराने श्रमिकों की तुलना में अधिक समय हैं, जिसके कारण वह इस तरह के निवेश कर सकते हैं।

आधारभूत संरचना

'आधारभूत संरचना' शब्द में वे क्षेत्र शामिल हैं जो अग्रिम औद्योगिक और कृषि विकास के लिए आवश्यक हैं। इसमें परिवहन, ऊर्जा, सूचना और संचार, सुरक्षित पेयजल और स्वच्छता शामिल हैं। बुनियादी ढांचा पश्चगामी और अग्रगामी दोनों का संपर्क स्थापित कर और बहिर्मुख बना कर आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है। आधारभूत संरचना की बेहतरी कृषि और उद्योग के विकास के लिए पूरक है।

आधारभूत संरचना की मांग काफी हद तक एक व्युत्पन्न मांग है। आधारभूत संरचना का विकास परिवहन और दूरसंचार के विकास के माध्यम से ग्रामीण अर्थव्यवस्था और पिछड़े क्षेत्रों के विकास में योगदान देता है और रोजगार भी उत्पन्न करता है। यह, बदले में, अर्थव्यवस्था में आय और खपत में सुधार करता है और गरीबी को कम करने में मदद करता है। अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तनों को लाने के लिए आधारभूत संरचना का विकास आवश्यक है क्योंकि यह औद्योगिक और कृषि क्षेत्र के विकास को सुविधाजनक बनाता है। यह अर्थव्यवस्था में तकनीकी बदलाव लाने में भी मदद करता है।

आर्थिक विकास की प्रक्रिया में आधारभूत संरचना के महत्व को आर्थिक विकास साहित्य में लंबे समय से मान्यता दी गई है। आधारभूत संरचना वाली सेवाएँ जैसे

टिप्पणी

परिवहन और बिजली उत्पादन की प्रक्रिया भी निवेश हैं। पर्याप्त आधारभूत संरचना के बिना, उत्पादन विशेषज्ञता और बाजारों में विनिमय द्वारा विशेषता से आधुनिक वाणिज्य नहीं बढ़ेगा। संचार और परिवहन के बिना वैश्वीकरण नहीं होगा। वर्तमान समय में, दूरसंचार क्षेत्र जैसी अवसंरचना सुविधाएं सेवा क्षेत्र की वृद्धि के लिए बहुत आवश्यक हैं।

आधारभूत संरचना के विकास के कई अन्य अप्रत्यक्ष लाभ हैं। यह सुरक्षित पेयजल और स्वच्छता सुविधाओं के माध्यम से उत्पादक आबादी के स्वास्थ्य में सुधार करने में मदद करता है। यह अनुत्पादक गतिविधियों पर खर्च किए गए समय को कम करने में मदद करता है जैसे कि यात्रा के लिए व्यय किए गए समय में कमी आती है जब परिवहन और दूरसंचार सुविधाओं में सुधार होता है। यह लोगों के लिए सुविधाएं बनाकर जीवन की गुणवत्ता में सुधार करने में मदद करता है जो एक अच्छे जीवन के लिए आवश्यक हैं। अंततः, यह महत्वपूर्ण है क्योंकि विकास जीवन की गुणवत्ता में सुधार के बारे में है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. निम्न में से कौन–से कारक भौतिक एवं मानव संसाधनों की दृष्टि से आर्थिक कारक हैं?

   (क) प्राकृतिक संसाधन (ख) आर्थिक संगठन

   (ग) क, ख दोनों (घ) दोनों में से कोई नहीं

6. प्राकृतिक संसाधनों पर कार्य करके आर्थिक संसाधनों का उत्पादन करने वाला कारक है–

   (क) श्रम (ख) रीति–रिवाज

   (ग) जलवायु (घ) कोई नहीं

1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (ग)
3. (क)
4. (घ)
5. (ग)
6. (क)

1.6 सारांश

आर्थिक विकास का संबंध अल्पकाल से न होकर दीर्घकाल से होता है क्योंकि आर्थिक विकास विभिन्न घटकों की संचयी प्रक्रिया से प्रभावित होने वाला विकास है। सामान्यतः विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं को विकास के स्तर के आधार पर दो भागों में

विभाजित किया जाता है– विकसित अर्थव्यवस्था एवं अल्पविकसित अर्थव्यवस्था। इन अर्थव्यवस्थाओं की अपनी कुछ विशिष्ट विशेषताएं होती हैं, जिनके आधार पर इनका वर्गीकरण किया जा सकता है।

आर्थिक विकास एवं आर्थिक संवृद्धि एक प्रकार से आर्थिक प्रगति का सूचक है जो उच्च जीवन स्तर एवं जीवन की गुणवत्ता पर बल देती है यद्यपि आर्थिक संवृद्धि एवं आर्थिक विकास एक दूसरे के पर्यायवाची हैं।

अल्पविकसित देशों में प्रति व्यक्ति आय में इतनी वृद्धि नहीं हो पाती जितनी विकसित देशों में होती है क्योंकि अल्पविकसित राष्ट्रों में आय का स्तर बहुत कम होता है और गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों का प्रतिशत अधिक होता है।

संसार की अर्थव्यवस्थाओं का विकसित तथा अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में वर्गीकरण करना काफी कठिन है परंतु फिर भी अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं की कई ऐसी विशेषताएं हैं, जैसे प्रति व्यक्ति आय का बहुत कम होना, जीवन स्तर नीचा होना, कृषि का पिछड़ापन, उद्योगों का निम्नस्तर पर विकास, बेरोजगारी, अशिक्षा, रूढ़िवादिता आदि, जिनके आधार पर इन अर्थव्यवस्थाओं को विकसित अर्थव्यवस्थाओं से अलग किया जा सकता है।

आर्थिक विकास की प्रक्रिया का एक अन्य महत्वपूर्ण कारक भौतिक पूंजी है। भौतिक पूंजी में सभी मानव निर्मित मशीनें, उपकरण आदि शामिल हैं, जो वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में सहायक हैं। भौतिक पूंजी देश की वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन की क्षमता बढ़ाने में उपयोगी है। यह विशेष रूप से कम विकसित देशों के लिए अधिशेष श्रम के कारण महत्वपूर्ण है।

तकनीक के कारण उत्पादन के मानकीकरण द्वारा सामग्री और सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार होता है। बेहतर तकनीक बड़े पैमाने पर अर्थव्यवस्थाओं में उत्पादन की लागत को कम करने में मदद करती है। हाल के समय में सूचना तकनीक क्रांति ने दुनिया को बदल दिया है। व्यापार और वाणिज्य दुनिया भर में फल–फूल रहा है और बाजारों का विस्तार हो रहा है। तकनीकी प्रगति के कारण वैश्वीकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप देशों की राष्ट्रीय आय और दुनिया की आय में वृद्धि हुई है।

आर्थिक विकास की प्रक्रिया में आधारभूत संरचना के महत्व को आर्थिक विकास साहित्य में लंबे समय से मान्यता दी गई है। आधारभूत संरचना वाली सेवाएँ जैसे परिवहन और बिजली उत्पादन की प्रक्रिया भी निवेश हैं। पर्याप्त आधारभूत संरचना के बिना, उत्पादन विशेषज्ञता और बाजारों में विनिमय द्वारा विशेषता से आधुनिक वाणिज्य नहीं बढ़ेगा। संचार और परिवहन के बिना वैश्वीकरण नहीं होगा। वर्तमान समय में, दूरसंचार क्षेत्र जैसी अवसंरचना सुविधाएं सेवा क्षेत्र की वृद्धि के लिए बहुत आवश्यक हैं।

1.7 मुख्य शब्दावली

- **मौद्रिक** : मुद्रा सम्बन्धी।
- **आबंटन** : वितरण

- **जी.एन.पी.** : ग्रॉस नेशनल प्रोडक्ट (सकल राष्ट्रीय उत्पाद)
- **प्रौद्योगिकी** : तकनीक

टिप्पणी

1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. शुम्पीटर ने आर्थिक संवृद्धि की क्या परिभाषा दी है?
2. आर्थिक संवृद्धि के मुख्य सूचक तत्व कौन–कौन से हैं?
3. त्रिकोणी अर्थव्यवस्था के तीन प्रमुख क्षेत्र कौन–कौन से हैं?
4. आर्थिक वृद्धि और विकास के प्रमुख तत्वों का नामोल्लेख कीजिए।
5. 'आधारभूत संरचना' में कौन–कौन से क्षेत्र सम्मिलित हैं?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. आर्थिक संवृद्धि एवं विकास की परिभाषाएँ देते हुए इनकी आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।
2. किन आर्थिक सांस्कृतिक एवं जनसांख्यिकीय विशेषताओं के आधार पर किसी देश को विकासशील या अल्पविकसित कहा जा सकता है? सविस्तार समझाएँ।
3. विकासशील देशों की सामाजिक आर्थिक सांस्कृतिक एवं जनसांख्यिकीय विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
4. आर्थिक विकास के लिए आवश्यक मानव एवं भौतिक संसाधनों के प्रमुख कारकों का विवेचन कीजिए।
5. अनुसंधान एवं विकास तथा तकनीक आर्थिक विकास में किस प्रकार सहायक हैं? विस्तारपूर्वक विश्लेषण कीजिए।

1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

M L Jhingan. *Economics of Growth and Development.*

Hayami Y. *Development Economics,* Oxfor University Press.

Karpagam M. *Environmental Economics.*

योगेश शर्मा, 'पर्यावरण एवं मानव संसाधन विकास', पॉइन्ट पब्लिशर, जयपुर।

वी.सी. सिन्हा, 'विकास एवं पर्यावरणीय अर्थशास्त्र', एस.बी.पी.डी. पब्लिशर हाउस, आगरा।

पी.सी.त्रिवेदी / गरिमा गुप्ता, 'पर्यावरण अध्ययन', आविष्कार पब्लिकेशन, जयपुर।

दीप्ति शर्मा / महेन्द्र कुमार, 'पर्यावरण एवं संविकास', अर्जुन पब्लिशिंग, दिल्ली।

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी के नवीनतम प्रकाशन

इकाई 2 आर्थिक विकास के सिद्धांत

टिप्पणी

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 एडम स्मिथ का सिद्धांत
2.3 कार्ल मार्क्स का सिद्धांत
2.4 शुम्पीटर का सिद्धांत
2.5 आर्थिक विकास की अवस्थाएं
2.6 आर्थिक निवेश के मापदंड
2.6.1 पूंजी – उत्पाद अनुपात
2.6.2 पूंजी – श्रम अनुपात
2.7 मानव संसाधन विकास
2.8 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.9 सारांश
2.10 मुख्य शब्दावली
2.11 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.12 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

आर्थिक विकास में किस प्रकार सततीय विकास के माध्यम से शिक्षा व स्वास्थ्य में सुधार के द्वारा लोगों में विकास की गुणवत्ता में सततीय सुधारों के निर्माण पर बल दिया जाना चाहिए जिससे मानवीय पर्यावरण को सुरक्षित रखा जा सके क्योंकि वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के जीवन की गुणवत्ता को कायम रखते हुए ही विकास करना है। इसके अतिरिक्त विकास प्रक्रिया में आने वाली बाधाओं, चुनौतियों जैसे निर्धनता, पूंजी की दुर्लभता आदि का सामना करने के लिए प्रयोग किए गए घटकों का विश्लेषण भी इस इकाई के अंतर्गत किया जाएगा, क्योंकि औपनिवेशिक काल में शोषण के कारण वर्तमान में प्रशासनिक राजनीतिक प्रणाली के कारण आर्थिक विकास में वृद्धि नहीं हो पाई। इसलिए यह निर्णय लिया गया कि परंपरागत अर्थव्यवस्थाओं का आधुनिकीकरण किया जाना चाहिए। इसके लिए अर्धविकसित देशों का चुनाव किया गया क्योंकि इन अर्धविकसित देशों में ही विकास की संभावनाएं छिपी होती हैं, बस आवश्यकता होती है उनको विकास की ओर अग्रसर करने के लिए प्रेरक तत्वों की। इसलिए ऐसे मानदण्डों एवं सिद्धांतों का विश्लेषण किया गया जो लोगों की आय में वृद्धि के सारे विकल्पों में वृद्धि करें। यह सत्य है निवेश की नीतियों पर ही अर्थव्यवस्था का विकास निर्भर है। इसके लिए प्रोजैक्ट–मूल्यांकन में लागत लाभ विश्लेषण एक वैज्ञानिक और सर्वश्रेष्ठ विधि है क्योंकि इसके द्वारा लागतों की तुलना में प्राप्त लाभों का मूल्यांकन करना संभव हो जाता है और शुद्ध सामाजिक लाभ भी प्राप्त हो जाते हैं।

अब आर्थिक नियोजन के लिए आवश्यक है कि सरकार की मौद्रिक और राजकोषीय नीतियों का निर्माण इस तरीके से हो जो अर्थव्यवस्था में मुद्रा और साख

टिप्पणी

की पूर्ति के नियंत्रण में और मौद्रिक स्थिरता को कायम रखने में सहायक हो सके। यद्यपि इस लक्ष्य को प्राप्त करना इतना आसान नहीं है क्योंकि अर्धविकसित देशों में निर्धनता व्यापक पैमाने पर फैली हुई है अभी भी वहां ऐसे लोग निवास करते हैं जो अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते। इसलिए निर्धनता के मुख्य संकेतकों को आधार मानकर ही आर्थिक नियोजन के लक्ष्य को पूरा किया जा सकता है। इसलिए आगत निर्गत अवधारणा को एक उपकरण की तरह प्रयोग करके उद्योगों पर पड़ने वाले पारस्परिक अंतर्संबंध और अंतनिर्माताओं की विस्तृत व्याख्या की गई है।

अर्धविकसित देशों में आर्थिक योजनाओं के कार्यान्वयन के लिए योजना मॉडल की व्याख्या को जानना भी आवश्यक है जो राष्ट्रों को पिछड़ेपन, उपेक्षित क्षेत्रों को क्रियाशील बनाने में सहयोग देते हैं। ये अर्धविकसित देशों के लिए एक औषधि का कार्य करते हैं जो अर्धविकसित राष्ट्रों को, विकसित राष्ट्रों में रूपांतरित करने में सहायक होते हैं, बाजार अर्थव्यवस्थाओं के विकास में सहायक है जिसमें कीमत तंत्र (मांग और पूर्ति की शक्तियां) आधारभूत समस्याओं के समाधान में सहयोग प्रदान करते हैं।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- आर्थिक विकास के सम्बन्ध में एडम स्मिथ, कार्ल मार्क्स व शुम्पीटर के सिद्धांतों से परिचित हो पाएंगे;
- आर्थिक विकास की अवस्थाओं को समझ पाएंगे;
- आर्थिक निवेश के मापदंडों का विश्लेषण कर पाएंगे;
- मानव संसाधन के प्रबंधन व विकास की क्रियाओं व आवश्यकताओं से अवगत होंगे।

2.2 एडम स्मिथ का सिद्धांत

आर्थिक विकास की अवधारणा आर्थिक जगत का एक महत्वपूर्ण प्रकरण है जिससे किसी भी अर्थव्यवस्था के विकास को चरम सीमा पर ले जाया जा सकता है। इसलिए इसको अधिक वैज्ञानिक बनाने के लिए विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अपने–अपने विचार प्रस्तुत किये लेकिन सभी अर्थशास्त्रियों के विचार एक दूसरे के सदृश है। फिर भी आर्थिक विकास का कोई सर्वमान्य मॉडल निश्चित करना मुश्किल है।

प्रो. फ्रीडमैन के अनुसार : ''विकास का कोई सर्वमान्य सूत्र नहीं है। अतः विकास का एक सामान्य सिद्धांत प्रस्तुत करना कठिन है।''

क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने सर्वप्रथम आर्थिक विकास की दीर्घकालीन प्रक्रिया को वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया और उन्होंने यह महसूस किया कि एक क्षेत्र दूसरे क्षेत्र पर निर्भर करता है और एक दूसरे पर वैज्ञानिक और व्यावहारिक रूप से प्रभाव डालते हैं, यद्यपि ये संकुचित दृष्टिकोण के थे क्योंकि उन्होंने विकास के प्रकरणों में केवल

पूंजीनिर्माण और आर्थिक संवृद्धि व विकास को शामिल किया था लेकिन फिर भी आर्थिक विकास के संदर्भ में इनके विचार अधिक महत्वपूर्ण थे। इसलिए प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के मौलिक विचारों का संक्षिप्तिकरण करके अपने विद्यार्थियों को उनका परिचय देना आवश्यक है। क्लासिकल अर्थशास्त्रियों में प्रो. एडम स्मिथ, जे.एस. मिल, रिकार्डो और माल्थस को प्रमुखता दी जाती है।

एडम स्मिथ का विकास सिद्धांत

प्रो. एडम स्मिथ ने योग्य गतिशील मॉडल की रचना की जिसके अंतर्गत आर्थिक विकास के तीन घटकों– पूंजी संचय, श्रम और संस्थागत पर्यावरण का अध्ययन किया।

प्रो. एडम स्थिम का नाम प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों में सर्वप्रथम आता है उनको 'अर्थशास्त्र का जन्मदाता' (Father of Economics) कहा जाता है उन्होंने 1776 में प्रकाशित विख्यात पुस्तक An Inquiry into the Nation and Causes of Wealth of Nations में विकास संबंधी विचारों की व्याख्या की जो अधिक वैज्ञानिक और सुव्यवस्थित रूप में थी। उनके द्वारा प्रतिपादित विचारों में निम्न महत्वपूर्ण हैं–

1. एडम स्मिथ के विकास के सिद्धांत की विशेषताएं

यद्यपि एडम स्मिथ के इस सिद्धांत को इतनी मान्यता नहीं मिली जितनी उनके अन्य सिद्धांतों को प्राप्त हुई फिर भी इस सिद्धांत को एक गतिशील गत्यात्मक मॉडल कहा जा सकता है। एडम स्मिथ के इस विकास के सिद्धांत में निम्न बातें दृष्टिगोचर होती है।

प्राकृतिक नियम : प्रो. स्मिथ प्राकृतिक नियमों के पक्षपाती थे, उनका मानना था –

(क) प्रत्येक व्यक्ति अपना भला चाहता है, स्वार्थी होता है इसलिए अपने हित को बढ़ाने का प्रयास करता है जिससे सामान्य हित में अपने आप बढ़ोत्तरी हो जाती है इसलिए व्यक्ति को स्वतंत्र छोड़ देना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं के निर्णय लेने में स्वतंत्र है।

(ख) **मुक्त व्यापार नीति** : उनका मानना था कि आर्थिक विषयों में सरकार को हस्तक्षेप का कोई अधिकार नहीं होना चाहिए अर्थव्यवस्था को स्वतंत्र छोड़ देना चाहिए।

(ग) **अदृश्य हाथ द्वारा संचालन** : राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने में अदृश्य शक्ति का काफी बड़ा हाथ होता है।

एडम स्मिथ के अनुसार, "पूर्ण प्रतियोगिता बाजार तंत्र में साम्य बनाये रखने के लिए 'अदृश्य हाथ' का उपयोग राष्ट्रीय आय को अधिकतम बनाता है। इसको मापने में कोई अदृश्य हाथ प्रत्येक व्यक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।"

(घ) समाज को वस्तुएं उद्यमी की उदारता के कारण नहीं बल्कि उसके स्वार्थ के कारण प्राप्त होती हैं–

उदाहरण : यदि कोई उद्यमी पीजा (Pizza) बनाता है तो अपनी उदारता से नहीं बल्कि उद्यमी के स्वार्थ के कारण हमें पीजा प्राप्त होता है।

इस प्रकार आर्थिक विकास स्वतंत्र वातावरण में ही संभव हो सकता है। वो इस बात के खिलाफ थे कि आर्थिक मामलों में सरकार को हस्तक्षेप करना चाहिए क्योंकि यदि इन मामलों में किसी तरीके का प्रतिबंध लगाया जाता है तो विकास का क्षेत्र सीमित हो जाएगा।

2. पूंजी संचय की प्रक्रिया

प्रो. स्मिथ पूंजी संचय को विकास का महत्वपूर्ण अंग मानते थे क्योंकि–

(क) कार्यात्मक विकास निवेश की दर से संबंधित है।

(ख) स्टॉक का संचय बढ़ने पर श्रम विभाजन उसी अनुपात में बढ़ता है।

(ग) पूंजी संचय बचतों पर आश्रित होता है यही बचतें पूंजीगत निवेश के लिए कार्य करती हैं।

(घ) बचत और निवेश की क्रियाएं एक साथ कार्य नहीं करती।

प्रो. स्मिथ : "वह भाग जो (अमीर व्यक्ति) एक व्यक्ति के द्वारा बचाया जाता है .... लाभ के उद्देश्य से ...... वह शीघ्रता से पूंजी के रूप में उपयोग हो जाता है।"

इसलिए बचत और निवेश की योग्यता आय स्तर पर आधारित होती है आय सीमित है तो बचत सीमित होगी। परिणामस्वरूप निवेश भी सीमित होगा।

(ङ) एक देश का जब विकास होता है तो पूंजी संचय का विस्तार होता है जो लाभ दर में गिरने की प्रवृत्ति को दिखाता है। पूंजी संचय का यह विस्तार श्रम की मांग को बढ़ाता है जो निवेश के अवसरों की बहुलता की आवश्यकता को बढ़ाता है जबकि व्यवहार में यह अर्थव्यवस्था में नहीं होता।

(च) एडम स्मिथ का कहना था कि अधिकार बचतें भूमि को लगान पर देने के कारण प्राप्त होती है। इसका अर्थ हुआ कि केवल पूंजीपति ही बचत कर सकते हैं। भूमिहीनों के द्वारा बचत नहीं की जाती थी।

(छ) उनका कहना था कि आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है कि बचतों का उपयोग इस ढंग से किया जाए कि लोगों की आय में वृद्धि हो जिससे वे अधिक बचत करने के लिए प्रेरित हो। आर्थिक विकास लोगों की अधिक बचत और निवेश की योग्यता पर निर्भर थी।

• मजदूरी दर का निर्धारण

मजदूरी दर का निर्धारण श्रमिकों की पूंजीपतियों से सौदेबाजी की क्षमता पर निर्भर करता है उनका कहना था कि श्रमिक को मजदूरी उसके जीवन निर्वाह स्तर तक मिलनी चाहिए। इसमें निम्न स्थितियां प्राप्त होती हैं–

(क) श्रमिक की मांग → श्रम पूर्ति इस स्थिति में श्रम की मांग अधिक होने पर रोजगार प्राप्ति की प्रतियोगिता बढ़ जाएगी। स्वतः ही मजदूरी दर बढ़ जाएगी।

(ख) श्रम की मांग → श्रम की पूर्ति इस स्थिति में पूर्ति अधिक होने पर श्रम बल की अधिकता होगी प्रतियोगिता के स्थान पर सौदेबाजी शक्ति के द्वारा मजदूरी निर्धारित होगी और मजदूरी दर कम हो जाएगी।

(ग) श्रम की मांग → श्रम की पूर्ति → इस स्थिति में श्रम को उसकी न्यूनतम लागत के बराबर मजदूरी मिलनी चाहिए। श्रमिक को उसकी सीमांत उत्पादकता के बराबर मजदूरी मिलना श्रमिक के निर्वाह के लिए आवश्यक है।

इस प्रकार प्रो. स्मिथ की यह अवधारणा मांग और पूर्ति की शक्तियों के द्वारा निर्धारित होती है।

- **ब्याज का निर्धारण**

एडम स्मिथ के अनुसार, विकास प्रक्रिया के अंतर्गत जिस देश के लोग अधिक समृद्ध होंगे वहां पर ब्याज की दर कम होती है। ब्याज दर की मात्रा में कमी होने से पूंजी संचय अधिक होगा परिणामस्वरूप ब्याज की दर में और गिरावट आएगी। पूंजी की मात्रा में वृद्धि हो जाने पर उद्यमियों की साख क्षमता घट जाएगी। ऐसी परिस्थितियों से उद्यमी स्वयं विनियोग करेंगे लाभ भावना से प्रेरित होंगे इसलिए ब्याज दर के कम होने पर भी आर्थिक विकास और पूंजी में वृद्धि होगी।

- **लाभ का निर्धारण**

आर्थिक विकास बढ़ने पर लाभ दर कम हो जाती है क्योंकि पूंजीपतियों में प्रतिस्पर्धा बढ़ने से लाभ की मात्रा कम हो जाती है। वैसे भी सीमित श्रम साधन अस्तित्व में होते हो उद्यमियों से सीमित श्रम साधनों और पूंजीगत स्टॉक के लिए प्रतियोगिता बढ़ जाती है और मजदूरी की दर भी बढ़ जाती है। जिससे लाभ की दर में कमी आ जाती है।

- **लगान का निर्धारण**

प्रो. एडम स्मिथ का मानना था कि आर्थिक उन्नति के फलस्वरूप वास्तविक लागतों में बढ़ोतरी होती है। मुद्रा संचय की मात्रा भी बढ़ती है।

3. श्रम विभाजन

श्रम विभाजन विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

श्रम विभाजन श्रम की कार्यक्षमता में वृद्धि करता है इससे उत्पादन की मात्रा में वृद्धि, समय की बचत होती है। लाभदर की मात्रा बढ़ जाती है परिणामस्वरूप श्रमिक की उत्पादकता बढ़ती जाती है फिर पूंजी संचय में भी वृद्धि होने से श्रम विभाजन बढ़ जाता है। प्रो. स्मिथ का यह सिद्धांत गत्यात्मक है जिसके कारण वाणिज्य, अंतर्राष्ट्रीय जनसंख्या बढ़ने पर श्रम विभाजन और पूंजी संचय में वृद्धि होगी।

4. आर्थिक विकास के एजेण्ट

किसान, व्यापारी और उत्पादक

स्मिथ के अनुसार : कृषि क्षेत्र के विकास होने पर भी निर्माण कार्यों और वाणिज्य में भी वृद्धि होती है। कृषि क्षेत्रों में यदि अधिशेष प्राप्त होता है तो निर्मित वस्तुओं और सेवाओं की मांग बढ़ती है जिससे निर्माणकारी उद्यमों की स्थापना होती है। साथ ही कृषि का विकास होता है। उत्पादन में वृद्धि होती है उत्पादन तकनीक की विधियां प्रयोग में लायी जाती हैं। इसलिए पूंजी संचय में वृद्धि के साथ विकास भी बढ़ता जाता है।

आर्थिक विकास की प्रक्रिया : एडम स्मिथ के अनुसार आर्थिक विकास की प्रक्रिया में आय के स्तर और पूंजी का स्टॉक बढ़ता है। अधिकतर पूंजी संचय की दर

में बढ़ने की प्रवृत्ति पायी जाती है। यह आर्थिक संवृद्धि की रणनीति का महत्वपूर्ण तत्व है।

टिप्पणी

प्रो. शुम्पीटर : आर्थिक विकास की प्रक्रिया में प्राकृतिक साधनों, संस्थागत और राजनीतिक साधनों में कोई परिवर्तन नहीं होता लेकिन जैसे ही औद्योगीकरण और व्यापार में वृद्धि होती है वैसे ही देश का विकास होता है। समृद्धि में वृद्धि, बाजार का विस्तार, श्रम विभाजन, जनसंख्या वृद्धि दर, उत्पादकता में वद्धि, बचत में वृद्धि, पूंजी संचय की वृद्धि दर, उत्पादकता में वृद्धि, बचत में वृद्धि, पूंजी संचय की वृद्धि में सुधार होता है। विकास में निरंतरता रहती है। हां ऐसा हो सकता है कि समृद्धि और विकास के कारण रोजगार में प्रतियोगिता बढ़ जाए और मजदूरी दर में कमी हो जाए। व्यापारिक गतिविधियों में होने वाली प्रतियोगिता व्यापारियों के लाभों में कमी कर दे जिससे बचत और निवेश में कमी हो जाने से पूंजी निर्माण में बाधा आए पूंजी संचय में स्थिरता आ जाए, श्रम विभाजन संभव हो पाये ऐसी अवस्था अर्थव्यवस्था की स्थैतिक अवस्था में आ जाती है।

एडम स्मिथ ने इस संबंध में किसान, व्यापारियों और उत्पादकों को विकास के एजेन्ट कहा है क्योंकि पूंजी संचय, विकास इन्हीं के द्वारा किया जा सकता है जिसके कारण आर्थिक विकास तीव्र गति से बढ़ता है।

आलोचनात्मक व्याख्या

यद्यपि एडम स्मिथ के विकास सिद्धांत में अनेक विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं। जिनमें विशेष बाजार नीति, बाजार के आकार, में वृद्धि, पूंजी संचय मुख्य है। लेकिन फिर भी इनके विकास सिद्धांत में कुछ कमियां हैं। जिनकी इसमें उपेक्षा की गई है।

1. एडम स्मिथ का सिद्धांत मुक्त व्यापार नीति का पक्षपाती है। ये निजी क्षेत्रों के विकास पर तो बल देता है, लेकिन सार्वजनिक क्षेत्रों की अवहेलना करता है।
2. उद्यमी की उपेक्षा करता है, जबकि उद्यमी विकास प्रक्रिया का मुख्य घटक है क्योंकि उद्यमी ही विभिन्न उत्पादन के साधनों को एकत्रित करता है। इस प्रकार वह पूंजी निर्माण वृद्धि में सहायता करता है। नवप्रवर्तन लाता है।
3. बचत का आधार उन्नत समाज को मानता है जबकि समाज में आय प्राप्त कर्ता वर्ग भी है जो बचतों को प्रेत्साहन देता है।
4. इस सिद्धांत में मध्यम वर्ग के उपेक्षा की गई है। यह सिद्धांत यूरोप और यू. के. के सामाजिक और आर्थिक वातावरण को ध्यान में रखते हुए दिया गया। समाज में पूंजीपति और श्रमिक वर्ग ही नहीं होता मध्यम वर्ग भी होता है जिसका समाज के विकास में काफी योगदान होता है।
5. अवास्तविक मान्यता पर आधारित है पूर्ण। प्रतियोगिता की धारणा किसी भी अर्थव्यवस्था में नहीं पायी जाती। व्यापार में अनके प्रतिबंध और रुकावटें पायी जाती हैं। इससे आर्थिक विकास नहीं रुकता है।
6. असंतुलित स्थिति को नहीं समझा, सदैव संतुलन की स्थिति में रखा जबकि ऐसा नहीं है।
7. अर्थव्यवस्था में गत्यात्मकता हमेशा बनी रहती है स्थैतिक अर्थव्यवस्था की कल्पना असंभव है।

8. व्यापार चक्र जैसे विषयों पर कोई टिप्पणी नहीं की जबकि व्यापारी और उत्पादकों को एजेन्ट के रूप में स्वीकार किया।

एडम स्मिथ के विकास सिद्धांत की अल्पविकसित देशों में उपयुक्तता

टिप्पणी

प्रो. एडम स्मिथ का विकास सिद्धांत आर्थिक विकास जैसे क्षेत्र के लिए सीमित है जिसके निम्न कारण हैं–

1. **सिद्धांत का संकुचित आकार**– जिसके कारण बचत व निवेश को प्रोत्साहन नहीं मिलता।
2. उत्पादकता का स्तर निम्न रहता है जिसमे आय का स्तर निर्धारित किया जाता है परिणामस्वरूप बाजार का आकार संकीर्ण हो जाता है।
3. कीन्स के अनुसार अल्पविकसित देशों में उपभोग प्रवृति अधिक होती है जिसके कारण आय का अधिक भाग अनिवार्य आवश्यकताओं पर ही व्यय कर दिया जाता है। बचत और निवेश का स्तर गिर जाता है।
4. अल्पविकसित देशों में एकाधिकारी नीतियों के कारण सार्वजनिक क्षेत्र के हस्तक्षेप से ही विकास की प्रक्रिया में तीव्रता आती है।
5. श्रम विभाजन और बाजार का आकार छोटा होता है जिससे अल्पविकसित देशों में ये लागू नहीं होता।
6. अर्थव्यवस्था के विकास के एजेन्ट, किसान, व्यापारी तथा उत्पादक अपने क्षेत्रों में उत्पादन बढाकर पूंजी संचय और विकास प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हैं। मुक्त व्यापार का अभाव होने के कारण सरकार अनुदान देकर उत्पादन वृद्धि को प्रोत्साहन देती है।
7. परस्पर निर्भरता विकास के महत्व की ओर संकेत करती है।
8. एडम स्मिथ के अनुसार : ''अपव्यय करने वाला समाज दुश्मन दिखाई देता है और मितव्ययी समाज लोक कल्याण करने वाला होता है।''
9. इस संदर्भ में रोस्टोव का कहना है कि एडम स्मिथ के विकास सिद्धांत की अवधारणा गत्यात्मक विश्लेषण है यह एक अल्पविकसित देश के लिए नीति का कार्यक्रम है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. एडम स्मिथ के योग्य गतिशील मॉडल में निम्न में से किस विकास घटक का अध्ययन किया गया है–

   (क) पूंजी संचय (ख) श्रम

   (ग) संस्थागत पर्यावरण (घ) उपर्युक्त सभी

2. एडम स्मिथ किन्हें आर्थिक विकास का एजेंट कहते हैं?

   (क) किसान (ख) सैनिक

   (ग) उद्योग (घ) मशीन

2.3 कार्ल मार्क्स का सिद्धांत

टिप्पणी

कार्ल मार्क्स ने आर्थिक विकास के विचारों को अपनी पुस्तक "DAS CAPITAL" में प्रस्तुत किया है। उनके विचारों का समाज पर इतना प्रभाव पड़ा कि बहुत लोग उनके अनुयायी बन गए और अपने सिद्धांतों के कारण उन्हें ईसा मसीह की तरह स्थान प्राप्त होने लगा। मार्क्स ने भविष्यवाणी की थी कि पूंजीवाद का अंत निश्चित है इसी आधार पर साम्यवाद का आरंभ हुआ। यद्यपि मार्क्स कोई अर्थशास्त्री नहीं था और उसके विचारों में दर्शनशास्त्र का भी प्रभाव दिखाई देता है। हम यहां मार्क्स के आर्थिक विकास के सिद्धांत का अध्ययन करेंगे। मार्क्स का विकास का सिद्धांत कुछ ऐसी मान्यताओं से संबंधित है जिसमें उत्पादन प्रक्रिया पूंजी संचय और प्रद्योगिकीय प्रगति सम्मिलित है साथ ही यह सिद्धांत समाज के गत्यात्मक व्यवहार का भी अध्ययन करता है।

मार्क्स की प्रणाली के अनुसार किसी भी अर्थव्यवस्था का ऐतिहासिक विकास उस देश की उत्पादन प्रक्रिया के द्वारा निर्धारित होता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मार्क्स सिद्धांत को तीन प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है–

(i) ऐतिहासिक विकास प्रणाली

(ii) पूंजीवादी विकास प्रणाली

(iii) योजनाबद्ध और व्यवस्थित विकास प्रणाली

ऐतिहासिक विकास प्रणाली की व्याख्या

ऐतिहासिक विकास आर्थिक कारणों से उत्पन्न गतिविधियों का परिणाम है यह उत्पादन प्रक्रिया द्वारा निश्चित किया जाता है। ऐतिहासिक विकास का परिवर्तन होना वहां की आर्थिक क्रियाओं और तरीकों पर निर्भर करता है जो सदैव गतिशील होते हैं।

मार्क्स के अनुसार : "जीवन के आर्थिक, राजनीतिक सांस्कृतिक सामाजिक और धार्मिक कार्यों को निर्धारित करने में उत्पादन प्रणाली का व्यवस्थित होना काफी मायने रखता है। उत्पादन व्यवस्था में परिवर्तन के साथ ही आंतरिक और बड़ा ढांचा भी परिवर्तित होता है तो आर्थिक संघर्ष भी दिखाई देता है, इसका मुख्य कारण है उत्पादन के तरीकों और उत्पादन के संबंध में संयोजन न होना या विरोधाभास होना। उत्पादन के बदलते तरीके समाज में विशिष्टिकरण को बढ़ावा देते हैं, जिससे समाज में परिवर्तन होता है जबकि उत्पादन के संबंध में समाज के वर्ग ढांचे से स्बंधित होते हैं इसीलिए विशिष्टता प्रदान करते हैं जैसे (1) श्रम विभाजन और श्रम का संगठन, श्रम का स्थान (2) उत्पादन के साधनों के विकास का ज्ञान (3) तकनीकी प्रगति के लिए उपलब्ध साधन।

- **तकनीकी प्रगति के लिए उपलब्ध साधन** – मार्क्स के अनुसार : समाज का वर्ग ढांचा अमीर वर्ग और निर्धन वर्गों में बंटा होता है। समय के साथ समाज में उत्पादन के तरीकों में बदलाव नई–नई तकनीकी प्रगति के कारण उत्पादन की ऐसी अवस्था आती है जब उत्पादन की शक्तियों और समाज के वर्ग ढांचे में संघर्ष उत्पन्न होता है।

अमीर वर्ग और निर्धन वर्गों के हित आपस में एक दूसरे के विरोधी होते हैं और यह वर्ग संघर्ष सदैव ही चलता है।

मार्क्स के अनुसार : ''वर्ग संघर्ष ही पूंजीवाद के अंत और नये समाज के जन्म का कारण होगा।''

यदि ऐतिहासिक विकास के दृष्टिकोण से देखा जाए तो शोषित वर्ग (श्रमिक) और शोषण करने वाला वर्ग (पूंजीवादी अमीर) सदैव एक दूसरे के विरुद्ध है। जिसके परिणामस्वरूप (1) यह वर्ग संघर्ष या तो समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने में सहायक होगा या (2) संघर्ष करने वाला श्रमिक वर्ग का अंत हो जाएगा। यदि क्रांति के बाद भी वर्ग संघर्ष दृष्टिगोचर होते हैं तो ये निश्चित रूप से सामाजिक व्यवस्था को भंग कर देगा। इसलिए श्रम वर्ग की उपेक्षा न करके उसकी उत्पादकता वृद्धि का प्रयास करने के पक्षपाती थे।

मार्क्स द्वारा उत्पादन का अवलोकन सामाजिक और ऐतिहासिक तत्वों के द्वारा निश्चित किया गया।

$Y = f(k, N, L, S, U)$

Y = उत्पादन

K, N, L = पूंजी स्टॉक, भूमि, श्रम बल को रोजगार देना

S = सामाजिक आर्थिक संगठन और तकनीक के मध्य अंतः क्रिया (पारस्परिक क्रिया)।

U = समाज में सामाजिक सांस्कृतिक संस्थाओं का मिश्रण।

मार्क्स के अनुसार : पूंजीवादी राष्ट्रों में उत्पादित वस्तुओं का मूल्य तीन तत्वों से सुव्यवस्थित किया जाता है।

(i) अचल पूंजी – भौतिक और मशीनों का मूल्य

(ii) परिवर्तनशील या चल पूंजी – श्रम शक्ति का मूल्य

(iii) अधिशेष मूल्य – उत्पादन में मूल्यवृद्धि

मार्क्स के अनुसार लाभ की मात्रा = अधिशेष मूल्य

- **मार्क्स का उत्पादन फलन** : मार्क्स के उत्पादन फलन को निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है– मार्क्स ने पूंजी को दो भागों में विभाजित किया है–

$Y - (q_1 + q_2) L + kK + nN$

q_1L = अचल पूंजी

q_2L = अधिशेष मूल्य

$kK + nN$ – चल पूंजी

मार्क्स के विकास सिद्धांत में kK और nN को अलग–अलग नहीं लिया गया है इसलिए उत्पादन फलन को इस प्रकार लिखा जा सकता है।

$Y = (q_1 + q_2) L + k\text{'K'}$

टिप्पणी

$K = k + N$

- **प्रौद्योगिकीय प्रगति** : मार्क्स ने उत्पादन तकनीक के सुधारों को स्वतंत्र तत्व नहीं माना है। तकनीकी प्रगति श्रमिक का स्थानांतरण कर देती है।

  मार्क्स के अनुसार : ''उत्पादन के संबंधों में परिवर्तन की दर सकल निवेश की मात्रा में वृद्धि करती है।'' स्थिर पूंजी स्टॉक में वृद्धि सकल निवेश की दर में तीव्रता से वृद्धि करती है। सकल निवेश = शुद्ध निवेश + मूल्य ह्रास

  (i) पूंजी संचय अधिशेष मूल्य पर निर्भर है।

  (ii) अधिशेष मूल्य की दर जितनी अधिक होगी श्रम का शोषण भी उसी दर से होगा।

  (iii) एक विकासशील अर्थव्यवस्था में पूंजी संचय की संभावनाओं के साथ अधिशेष मूल्य में प्रगति करते हुए बढ़ोत्तरी होती है।

  (iv) मार्क्स ने स्पष्ट रूप से यह कहा है कि अधिशेष मूल्य की सही मात्रा को एक पूंजीपति ही विनियोजित कर सकता है। अधिशेष को न तो पूर्ण रूप से उपभोग किया जा सकता है न ही पूर्णरूपेण पुनर्निवेश किया जा सकता है। इसका प्रयोग दोनों के लिए होता है।

- **लाभ का ह्रासमान नियम** : जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि पूंजी संचय एक तरफ श्रमिक की उत्पादकता की प्रगति करते हुए बढ़ता है तो दूसरी तरफ पूंजी के संयोजन में तीव्र वृद्धि करता है। इसी प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए मार्क्स ने लाभ दर के ह्रास नियम की उत्पत्ति की जिससे यह प्रदर्शित होता है कि लाभ दर, अधिशेष को निर्धारित करने वाले तत्वों पर और पूंजी के सहज सम्मिश्रण पर निर्भर करता है।

  $$P = S(1 - q)$$

  P — लाभ दर

  S — अधिशेष की दर

  q — पूंजी का संयोजन

  मार्क्स ने आगे कहा कि पूंजी संयोजन यदि बढ़ रहा है तो लाभ के दर की प्रवृत्ति घटती हुई होगी। श्रमिकों की उत्पादकता को बढ़ाने वाले पूंजीगत स्टॉक, कच्चा माल, उपकरण आदि के निर्माण में चल पूंजी विनियोजित पूंजी तथा जीवन निर्वाह के आधार पर श्रम शक्ति को खरीदने के लिए इस्तेमाल की गई पूंजी चल पूंजी है।

  इस प्रकार वस्तु का कुल मूल्य, उसकी चल और अचल पूंजी और अधिशेष मूल्य की दर लाभों की मजदूरी के बराबर होती है। S/V चल पूंजी का अचल पूंजी से अनुपात C/V पूंजी का संयोजन है।

  अतः यह स्पष्ट है कि जब लाभ की दर और पूंजी संयोजन में विलोम संबंध होता है यानि जब पूंजी संयोजन बढ़ता है तो लाभ की दर में कमी होती है।

- मार्क्स के अनुसार : पूंजी संचय के केंद्रीयकरण से चल पूंजी की मात्रा ↑ अचल पूंजी की मात्रा ↓ श्रम की मांग ↓ मशीनों का प्रयोग ↑ अधिशेष मूल्य ↓ पूंजी संयोजन ↑ लाभ दर ↓

$$R = \frac{S}{C+V} = \frac{S/V}{I + C/V}$$

R = पूंजी पर प्रतिफल

S = अधिशेष मूल्य

C + V = अचल + चल पूंजी

I = विनियोजन

V = चल पूंजी

C = अचल

- **पूंजी का संचय और आर्थिक समस्या**

  (i) पूंजीपति लाभ को अधिकाधिक बढ़ाने के लिए अधिशेष श्रम का प्रयोग करता है इससे पूंजी संचय में वृद्धि होती है लेकिन आर्थिक समस्या उत्पन्न होती है क्योंकि धन का केंद्रीयकरण कुछ ही समय के लिए हाथों में होता है।

  (ii) लाभ को बढ़ाने के लिए वह (A) श्रम की कार्यकारी घण्टों को कम करता है। (B) तकनीकी परिवर्तन के द्वारा श्रम की उत्पादकता में वृद्धि करता है। जिससे लागत कम हो जाएगी। मार्क्स के अनुसार पूंजीपति श्रम की उत्पादकता में सुधार का प्रयोग करेगा।

  (iii) पूंजी संचय व मशीनों तथा विकसित साधनों का इस्तेमाल करके मजदूरों का शोषण करेंगे इससे भुखमरी, क्षुधा, निर्धनता, आर्थिक समानता, बेरोजगारी आदि से अर्थव्यवस्था में आर्थिक समस्या का सामना करना पड़ेगा।

- **पूंजीवाद का अंत** – मार्क्स के अनुसार : जब लाभ की दर में गिरावट आती है तो पूंजीपति श्रमिकों का शोषण करने के लिए या तो मजदूरी कम करेगा या काम करने के घंटे (समय) में वृद्धि करेगा इस लाभ की प्रतिस्पर्धा उत्पादन के अधिशेष के अनुपात को कम करती है। मशीनीकरण के कारण औद्योगिक सुरक्षित सेना (Industrial Reserve Army) की रचना होती है इसके कारण उपयोग कम होता है औद्योगिक सुरक्षित सेना के आकार में विस्तार होगा पूंजीपति अधिकाधिक वस्तुओं की बिक्री करेगा जिससे छोटी इकाइयां विलीन हो जाती हैं मंदीकाल का आरंभ हो जाता है गरीबी और क्रय शक्ति सीमित है। लेकिन ऐसी स्थिति अस्थायी होती है बल्कि मूल्यों में ↓ मजदूरी दर में लाभों में ↑ विनियोग ↑ लाभ ↑ श्रमिक वर्ग का शोषण ↑ धन संचय द्वारा विनाश की स्थिति। इस अवस्था में श्रमिक वर्ग पूंजीपति वर्ग के विरोध में खड़ा हो जाता है। पूंजीवाद विनाश के कगार पर खड़ा हो जाता है।

टिप्पणी

- **अधिशेष मूल्य की अवधारणा** : यह अवधारणा शोषण और वर्ग संघर्ष पर आधारित है जिसमें पूंजीपति उत्पादन के प्रयोग में सहायक होता है और श्रमिक अपनी श्रम शक्ति बेचते हैं। श्रम का बाजार मूल्य वह मूल्य होता है, जितना उस शक्ति के निर्माण में लगता है। अर्थात श्रम शक्ति का मूल्य = जीवन निर्वाह साधनों का मूल्य,

  उत्पादित वस्तुओं का मूल्य > जीवन निर्वाह हेतु साधनों का मूल्य

  जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक साधनों के मूल्य के बराबर ही मजदूरी मिलती है। पूंजीपतियों द्वारा अधिशेष मूल्य का सृजन होता है।

- **श्रम की उत्पादकता में बढ़ोतरी** : श्रम की गति में वृद्धि करके श्रम की उत्पादकता बढ़ा सकते हैं। तकनीकी परिवर्तन द्वारा कुल उत्पाद में वृद्धि की जा सकती है जो उत्पादन लागत घटाने में सहयोगी है।

  मार्क्स के अनुसार : जब उद्योगों में मशीनों का प्रयोग किया जाता है तो महिलाओं और बच्चों को भी कार्य पर लगा कर पूंजीपति अतिरिक्त मूल्य बढ़ाता है।

  इसलिए श्रम की उत्पादकता में वृद्धि करके उत्पादक अतिरेक मूल्य की बचत करते हैं और पूंजी का बड़ा स्टॉक बनाने के लिए उसका पुनर्निवेश करते हैं यही पूंजी संचय है।

मार्क्स के आर्थिक सिद्धांत के गुण

मार्क्स के आर्थिक सिद्धांत के गुण निम्न प्रकार से है–

1. व्यापारिक उतार चढ़ाव अनिवार्य है : मार्क्स के अनुसार उपभोग का कम होना मंदीकाल को दर्शाता है। स्थिर वृद्धि को बढ़ाने के लिए निवेश और उपभोग में संतुलन की स्थिति होनी जरूरी है।
2. तकनीकी उन्नति और नवप्रवर्तन द्वारा आर्थिक विकास में वृद्धि संभव है।
3. आर्थिक विकास के लिए पूंजी संचय महत्वपूर्ण घटक है।
4. श्रमिकों के शोषण द्वारा लाभ दर को बढ़ाने का प्रयास दीर्घकाल में समस्याएं उत्पन्न कर सकता है।

मार्क्स के सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या

मार्क्स के सिद्धांत की निम्न प्रकार से आलोचना की जाती है–

1. तकनीकी उन्नति रोजगार के अवसर बढ़ाने में सहायक : मार्क्स का यह कहना कि मशीनों आदि का प्रयोग करके औद्योगिक सेना बढ़ती है गलत है क्योंकि तकनीकी उन्नति द्वारा भविष्य में मांग और आय बढ़ाकर रोजगार के अवसरों की उत्पत्ति की गई है।

2. अधिशेष मूल्य का सिद्धांत अस्पष्ट मान्यताओं का सिद्धांत है। क्योंकि वह पूंजीवादी कार्यकरण को समझाने में सहायता नहीं करता इसमें वास्तविक मान्यतायें, सामान्य मूल्यों को भी, अधिक महत्व दिया है।
3. लाभ का ह्रासमान नियम अवास्तविक है क्योंकि नवप्रवर्तन या मशीनों का प्रयोग बचत में वृद्धि में सहायक है जिससे पूंजी अनुपात कम होगा उत्पादकता में वृद्धि होगी मजदूरी के साथ लाभ भी बढ़ेंगे।
4. चक्रीय सिद्धांत की धारणा अव्यावहारिक है : मार्क्स का कहना कि पूंजी संचय में वृद्धि से उपभोग जन्य वस्तु की मांग कम होती है तो लाभ में भी कमी आती है सही नहीं है क्योंकि पूंजी संचय में वृद्धि होने पर मजदूरी दर में कमी हो ये जरूरी नहीं है।
5. पूंजीवाद का अंत होगा यह भविष्यवाणी गलत सिद्ध हुई –

   (क) मार्क्स के अनुसार समाजवाद का विकास क्रमिक नहीं था।

   (ख) साम्यवाद का प्रयोग केवल गरीब राष्ट्रों के द्वारा किया गया।

   पूंजीवादी देशों में मजदूरी दर बढ़ी है न कि कम हुई।
6. स्थैतिक विश्लेषण : कार्ल मार्क्स ने गत्यात्मक प्रक्रिया की व्याख्या तो की लेकिन यह उपुयक्त नहीं है।
7. समाजवादी समाज का जन्म तो हुआ लेकिन उसका क्रमिक विकास मार्क्स के हिसाब से नहीं था।
8. मार्क्स के विकास सिद्धांत में केवल वर्ग संघर्ष का विवरण अधिक है।

मार्क्स का विकास सिद्धांत और अल्पविकसित देश

मार्क्स के विकास सिद्धांत को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

1. मार्क्स का यह सिद्धांत अल्पविकसित देशों में व्यावहारिक रूप से सफल नहीं होगा क्योंकि अल्पविकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि दर अधिक होने के कारण विकास में कठिनाई आती है। मार्क्स ने इस अवधारणा की अवहेलना की है।
2. अल्पविकसित देशों में आने वाली समस्याओं में काफी परिवर्तन हुए हैं उन पर ध्यान नहीं दिया गया।
3. मार्क्स के सिद्धांत के गुण और अल्पविकसित देशों के लक्षणों में काफी समानता है। जैसे– वर्ग संघर्ष, उपभोग की न्यूनता, आर्थिक असमानता, धन का केंद्रीयकरण, गरीबी आदि लेकिन मार्क्स का सिद्धांत प्रत्यक्ष रूप से अल्पविकसित देशों के लिए लाभकारी नहीं है परंतु मार्क्स का योजनाबद्ध तरीके से किया गया विकास अल्पविकसित देशों के लिए विकास मार्ग दिखाता है क्योंकि यदि समाज के वर्गों में संघर्ष की भावना घर कर गई तो निश्चित रूप से श्रमिकों का एकाधिकारी जो जाएगा इसलिए योजनाबद्ध तरीके से किया गया विकास ही पिछड़े देशों के विकास में सहायक होगा।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

3. "वर्ग संघर्ष ही पूंजीवाद के अंत और नये समाज के जन्म का कारण होगा।" किसका कथन है?
   (क) एडम स्मिथ (ख) कार्ल मार्क्स
   (ग) मिर्डल (घ) फ्रीडमैन
4. मार्क्स के अनुसार पूंजीवादी राष्ट्रों में उत्पादित वस्तुओं के मूल्य कितने तत्वों से व्यवस्थित किये जाते हैं?
   (क) एक (ख) दो
   (ग) तीन (घ) चार

2.4 शुम्पीटर का सिद्धांत

प्रो. शुम्पीटर ने विकास से संबंधित विचारों को अपनी पुस्तक में प्रकाशित किया जो 1911 में जर्मन भाषा में लिखी गई थी। शुम्पीटर पूंजीवादी प्रणाली के पक्षधर थे, उनका पूरा सिद्धांत आर्थिक विकास की प्रक्रिया की कैसे व्याख्या की जाए पर आधारित है। शुम्पीटर की अवधारणा के मुख्य बिंदु नव प्रवर्तन और उद्यमी है जो आर्थिक विकास की प्रक्रिया में दो शक्तिशाली उपकरण की तरह प्रयोग किये गए हैं।

इसलिए आर्थिक विकास की प्रक्रिया को किस प्रकार व्याख्यायित किया जाए इस समस्या के ईर्द–गिर्द ही शुम्पीटर के विचारों का भी वर्णन मिलता है लेकिन बहुत ध्यानपूर्वक अवलोकन किया जाए तो शुम्पीटर का संपूर्ण सिद्धांत व्यापार चक्रों का विश्लेषण करता है न कि आर्थिक विकास का। यह बात 1939 में Business Cycles नाम से प्रकाशित पुस्तक से सिद्ध होती है।

शुम्पीटर के आर्थिक सिद्धांत का विश्लेषण

शुम्पीटर के आर्थिक सिद्धांत को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

1. **आर्थिक विकास का अर्थ** : शुम्पीटर ने ऐसे समाज और राष्ट्र के निर्माण का सिद्धांत का प्रतिपादन किया जिसमें सदैव स्थिरता पायी जाती है। पूर्ण प्रतियोगिता संतुलन होता है एक चक्रीय प्रवाह है जो हमेशा एक ही प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करता है एक ही तरीके से करता है। आर्थिक व्यवस्था में समान मांग के लिए समान पूर्ति और समान पूर्ति के लिए समान मांग का इंतजार किया जाता है। शुम्पीटर के अनुसार सभी आर्थिक गतिविधियां एक समय रहित राष्ट्र में दोहरायी जाती है। चक्रीय प्रवाह एक ऐसी नदी है जो श्रम साधन और भूमि के सतत् प्रवाह से आगे बढ़ती है जिसे हम आय कहते हैं जिससे उसे अपनी आवश्यकता की संतुष्टि में परिवर्तित कर सके। शुम्पीटर के अनुसार "आर्थिक विकास, आर्थिक जीवन में आए अचानक और स्थिर परिवर्तनों के कारण होता है ये परिवर्तन किन्हीं बाह्य कारणों से नहीं होते बल्कि उद्यम के अंदर ही उत्पन्न होते हैं।" इस प्रकार विकास की प्रक्रिया, चक्रीय प्रवाह की दिशाओं में

अचानक और अनिरंतर परिवर्तन के असंतुलन के कारण है, जो पहले से ही विद्यमान संतुलन की दशा में हमेशा के लिए परिवर्तित कर देती है। और ये परिवर्तन अर्थव्यवस्था में थोपे नहीं जाते बल्कि औद्योगिक और वाणिज्यिक क्षेत्रों पर अल्पकालिक तेजी और मंदी के उतार चढ़ाव के द्वारा परिवर्तित होते हैं जो नवप्रवर्तन के रूप में दिखाई देता है।

2. **नये संयोगों की उत्पत्ति** : असंतुलित चक्रीय प्रवाह के कारण एक नये संतुलन का स्थापित होना ही आर्थिक विकास है। नये संयोगों के कारण नवप्रवर्तन का जन्म होता है। नवप्रवर्तन स्थिर अर्थव्यवस्था को समाप्त करके विकास की दर में वृद्धि करते हैं। ''नवप्रवर्तनों से अभिप्राय उत्पादन के साधनों के अनुपात में धीरे–धीरे परिवर्तन करके तीव्र गति से परिवर्तन करने से है'' जो निम्न कारणों के द्वारा होता है–

नवप्रवर्तनों का योगदान

1. कच्चे माल और मध्यवर्ती वस्तुओं के नये–नये आधार को खोजना।
2. नये बाजारों को आरंभ करना।
3. नये औद्योगिक संगठनों को कार्यान्वित करना।
4. उत्पादन के नये तरीकों का प्रचलन होना।
5. नई–नई वस्तुओं को अपनाना।
6. उत्पादों को सस्ते और किफायती तरीके से प्रवर्तित करना।

शुम्पीटर के अनुसारः ''एक नये उत्पाद का निर्माण करने से तथा उपलब्ध वस्तुओं में सतत् सुधार करने की क्रियाएं आर्थिक विकास में योगदान देती है''।

3. उद्यमी का कर्तव्य

उद्यमी के कर्तव्यों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

1. अर्थव्यवस्था में विकास का कार्य एक उद्यमी द्वारा ही किया जाता है जिसका कार्य सिर्फ निर्देशन और प्रबंधकीय योग्यता द्वारा नवप्रर्वतन का कार्य करना होता है।
2. उद्यमी नई क्रिया विधि, नई उत्पादक वस्तुएं एवं नये बाजार का सूत्रधार है।
3. उद्यमी में जोखिम लेने की क्षमता होती है। जीवन में कुछ कर गुजरने का जज्बा होता है दूसरे से श्रेष्ठ सिद्ध करने की क्षमता और इच्छा, दृढ़ संकल्प होता है।
4. अधिक जोखिम अधिक लाभ, जोखिम नहीं तो लाभ नहीं।
5. उद्यमी का उद्देश्य जोखिम से लाभ कमाना ही नहीं बल्कि सफलता प्राप्त करना भी उसका लक्ष्य होता है।
6. नये प्रभुत्व की स्थापना करना, निर्माण कार्य करने की, अपनी शक्ति का उपयोग करने की लालसा के कारण ही उद्यमी लाभ प्राप्त करता है। उसकी इसी इच्छा शक्ति व प्रवीणता के कारण स्वतः ही देश के आर्थिक विकास में सहायता मिलती है।

7. यह भी कहा जा सकता है ''नवप्रवर्तन के कारण ही उद्यमी को लाभ प्राप्त होता है जिससे किसी भी राष्ट्र की आर्थिक प्रगति संभव हो सकती है। क्योंकि उद्यमी की जोखिम क्षमता, अनिश्चितता वहन करने के कारण ही अर्थव्यवस्था में नई–नई वस्तुओं का सृजन होता है।
8. उद्यमी को आर्थिक क्रियाओं को पूरा करने के लिए निम्न दो बातों की जरूरत होती है– 1. तकनीक ज्ञान 2. साख सुविधा। तकनीकी ज्ञान एक ऐसी पूंजी है जिसका प्रयोग भविष्य में कभी भी, कहीं भी किया जा सकता है, और अपने उद्यम का विस्तार करने के लिए साख की आवश्यकता होती है।

4. **शुम्पीटर की पद्धति का अवलोकन** : शुम्पीटर के आर्थिक विकास की प्रक्रिया की व्याख्या करने से पहले यह आवश्यक है कि शुम्पीटर की पद्धति का अवलोकन करें जिससे इनके विचारों से लाभदायक परिणाम निकल सके।

बचत : शुम्पीटर के विचार इस संबंध में कीन्स के सिद्धांतों से मिलते हैं। शुम्पीटर का कहना है कि बचत या तो भविष्य के उपभोग को पूरा करने के लिए या निवेश करने के लिए की जाती है। साथ ही समाज के दोनों वर्ग चाहे वह पूंजीपति है या श्रमिक, बचत करते हैं। आय वृद्धि के साथ बचत प्रवृत्ति भी बढ़ती जाती है और ब्याज की दर में वृद्धि के साथ बचत भी बढ़ती है।

निवेश : शुम्पीटर प्रेरित निवेश और स्वायत्त निवेश में अंतर करते हैं।

1. प्रेरित निवेश – यह आय वृद्धि, उत्पादन वृद्धि और लाभ के साथ बढ़ता है।
2. स्वायत्त निवेश – यह निवेश उपर्युक्त तत्वों में से किसी से भी प्रभावित नहीं होता, बल्कि दीर्घकाल में तकनीकी परिवर्तन, नवप्रवर्त्तन, नये संसाधनों के कारण प्रभावित होते हैं।

उद्यमी : जैसा कि उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उद्यमी का आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान। वह एक रणनीति तैयार करता है जिससे वह नवप्रवर्त्तन और आर्थिक विकास के अवसरों से लाभ उठाता है।

इस प्रकार लाभ की व्याख्या निम्न रूप से की जा सकती है।

लाभ = कुल आय – लागतें (स्पष्ट + अस्पष्ट)

शुद्ध लाभ= सकल लाभ – मूल्य ह्रास

लाभ = अवितरित लाभ + निगम कर + लाभांश

5. **पूंजीवादी विकास**: प्रो. शुम्पीटर के अनुसार– "पूंजीवादी विकास एक पूर्ण रूपेण प्रतियोगितात्मक स्थिर अर्थव्यवस्था है'' इसके अंतर्गत जनसंख्या वृद्धि दर और विनियोजन दर स्थायी रहती है और पूर्ण रोजगार की दशा पायी जाती है चक्रीय प्रवाह के कारण अर्थव्यवस्था सदैव संतुलित रहती है। एक असतत् परिवर्तन नई संतुलन दशा को जन्म देता है यानि अर्थव्यवस्था में नवप्रवर्तन का प्रयोग हो जाने के बाद दूसरे उद्यमी उसका अनुकरण करते हैं जिससे कीमतों में वृद्धि के साथ लोगों की मौद्रिक आय में भी वृद्धि होती है। वास्तविक आय कम होती है। मुद्रास्फीति दर बढ़ जाती है बैंक नवप्रवर्तनों को साख की सुविधा

प्रदान करते हैं। विकास की प्रक्रिया चलते–चलते अचानक कम होने लगती है। नई कंपनियां बाजार में प्रवेश करती हैं नये–नये उत्पादों का तीव्र गति से उत्पादन होता है जिसके परिणामस्वरूप कीमतों में कमी होती है और हानि प्राप्त करने वाली फर्म प्रतियोगिता से बाहर हो जाती है दूसरी तरफ आय बढ़ने से उद्यमी बैंकों को ऋणों का भुगतान करते हैं अनिश्चितता के कारण जोखिम बढ़ता है उद्यमी गतिविधियों का संकुचन होता है। कीमत कम होने से आय कम होती है। अर्थव्यवस्था में मंदी उत्पन्न होती है फिर नवप्रवर्तन किये जाते हैं।

6. **पूंजीवाद का अंत**: शुम्पीटर का कहना था कि पूंजीवाद स्वयं नष्ट होने वाला है। यद्यपि उन्होंने कहा कि पूंजीवाद ने उत्पादन की विधियों का वैज्ञानिक तरीका बनाया। पूंजीवाद के पक्ष में विभिन्न तर्क दिये जैसे नई वस्तुएं नये विचार आदि लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि शुम्पीटर पूंजीवाद के हिमायती थे। उनका मानना था कि यह प्रक्रिया मानव जाति के ऊपर से गरीबी का भार हरण नहीं कर सकती।

   निम्न बाते हैं जिनके कारण पूंजीवाद स्वतः नष्ट होने लगता है–

   1. बड़े परिवारों का विघटन
   2. संस्थागत ढांचे का पतन
   3. उद्यमी के कार्यों का महत्वपूर्ण न होना।

   शुम्पीटर के अनुसार, उत्पादन में वृद्धि, वस्तुओं की मांग का कम होना, बेरोजगारी, लाभों में कमी आदि तत्व, पूंजीवाद का अंत करते हैं।

7. **व्यापारिक चक्रीय प्रवाह**: प्रो. शुम्पीटर के अनुसार अर्थव्यवस्था में व्यापार चक्रों के कारण प्रगति होती है नये–नये उद्यमियों का प्रवेश होता है। नवप्रवर्तन राष्ट्रों को विकास के मार्ग पर अग्रसर करता है। साख की मात्रा में वृद्धि, उत्पादन के साधनों के पुरस्कार में वृद्धि, नई फर्मों का बाजार में आना, लोगों को रोजगार मिलना, आय में वृद्धि होने से क्रयशक्ति में वृद्धि, पुराने उद्योगों की मांग का बढ़ना, पूर्ति का कम होना कीमत स्तर में वृद्धि, लाभ दर में वृद्धि होती है। उद्योगों का विस्तार करने के लिए साख सुविधा का उपलब्ध होना ये सभी कारण तेजी काल को आरंभ करते हैं फिर भी कुछ समय बाद नई वस्तुएं बाजार में आती हैं जो अप्रचलन के कारण पुरानी वस्तुओं को विस्थापित करती हैं फिर वही प्रक्रिया शुरू हो जाती है पुनः संयोजन और शोषण की प्रक्रिया आरंभ होती है तो पुरानी वस्तुओं की मांग घटने के कारण वह चलन से बाहर हो जाती है।

   यह अल्पकालीन अवधारणा है लेकिन दीर्घकाल में आय और उत्पादन में सततीय वृद्धि प्राप्त होती है।

   शुम्पीटर की अवधारणा में उद्यमी काफी महत्वपूर्ण है "चक्रीय उतार–चढ़ाव पूंजीवाद में आर्थिक विकास की कीमत है।" दीर्घकाल में तकनीकी उन्नति के कारण प्रतिव्यक्ति उत्पादन में वृद्धि होती है जब तक प्रगति में वृद्धि होती रहेगी, लाभ दर बढ़ती रहेगी निवेश के अवसर बढ़ेंगे निवेश कोषों में वृद्धि होगी आय में अप्रत्याशित वृद्धि होगी अर्थात पूंजीवाद में सफलता ही उसका विनाश करेगी।

टिप्पणी

8. **विकास प्रक्रिया में साख का योगदान** : शुम्पीटर के अनुसार– ''नवप्रवर्तन में निवेश हेतु उद्यमी के साख की आवश्यकता होती है।'' साख का प्रयोग करने के बदले उसे ब्याज देना पड़ता है, उद्यमी को नवप्रवर्तन के परिणामस्वरूप लाभ दर में वृद्धि मिलती है एक क्षेत्र में नई–नई तकनीक का प्रयोग करने से दूसरे क्षेत्र का विकास स्वतः ही होता है।

9. **शुम्पीटर के विकास सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या** : शुम्पीटर के विचारों में मौलिकता और नवीनता है इसलिए इनको क्लासिक अर्थशास्त्रियों के योग्य और समकक्ष माना जा सकता है।

   (क) नवप्रवर्तन शब्द पर अधिक बलः नवप्रवर्तनों पर आवश्यकता से अधिक बल दिया है जबकि ये व्यापारिक उतार चढ़ावों का एक मात्र घटक है।

   (ख) समाजवादी व्यवस्था के आरंभ होने की धारणा तर्कहीन है क्योंकि इसकी उत्पत्ति कैसे होगी इस विषय में कोई बात नहीं की गई बस यह कहा गया कि पूंजीवाद का अंत होने पर एक नये समाज का उदय होगा।

   (ग) उद्यमी का कार्य नवप्रवर्तन करना नहीं है। नवप्रवर्तन व्यावसायिक क्रियाविधि का एक हिस्सा बन चुका है इसके लिए अलग से किसी व्यक्ति की आवश्यकता नहीं है।

   (घ) पूंजीवादी व्यवस्था के अभ्युदय के साथ उद्यमी का महत्व कम होता है अर्थात पूंजीवादी व्यवस्था में उद्यमी का प्रभाव कम होने लगता है और लाभ दर ऋणात्मक हो जाता है अर्थात शून्य पर पहुंच जाता है।

   (ङ) साख सुविधा को अधिक महत्व : यह सही है कि बैंकों द्वारा साख सुविधाएं उद्यमी को प्रदान की जाती है लेकिन बैंक केवल अल्पकालीन साख ही प्रदान करते हैं जबकि इस नवप्रवर्तन के कार्य के लिए दीर्घकालीन ऋण ही चाहिए।

   (च) आर्थिक विकास के लिए चक्रीय प्रवाह का योगदान नहीं – नर्क्से के अनुसारः ''आर्थिक विकास सतत् प्रयत्नों का फल है इसके लिए किन्हीं व्यापार चक्रों की आवश्यकता नहीं है।''

   उपर्युक्त निष्कर्षों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नवप्रवर्तन और प्रावैधिक विकास को समझाने में शुम्पीटर का काफी योगदान है। आर्थिक समृद्धि और प्रगति हेतु नवप्रवर्तन एक आवश्यक तत्व है।

10. **शुम्पीटर का विकास सिद्धांत और अल्पविकसित देश** : शुम्पीटर का सिद्धांत अल्पविकसित देशों के लिए लाभदायक नहीं है क्योंकि–

    1. विकासवादी और विकासोन्मुखी अर्थव्यवस्थाओं के लिए उपयुक्त नहीं है।
    2. नवप्रवर्तन का सिद्धांत एक निजी अवधारणा है। जो लाभ प्रेरक होती है जो केवल अधिकतम लाभ के लिए ही उत्पादन करती है। भिन्न सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था के कारण यह सिद्धांत उद्यमी को प्रेरित नहीं करता है उत्पादन करता है।

3. अर्थव्यवस्था का विकास नये–नये उद्यमियों पर निर्भर करता है, जबकि अल्पविकसित देशों में इनका अभाव होता है।
4. अल्पविकसित देशों में आर्थिक विकास नवप्रवर्तन के कारण नहीं बल्कि नवप्रवर्तन की खपत पर निर्भर करता है।
5. वास्तविक बचतों की अवहेलना करता है यह आर्थिक विकास में घाटे का प्रबंध, सरकारी ऋण, बजट की बचतों के महत्व को नहीं बताता।
6. जनसंख्या और धनवृद्धि के प्रभाव को आंकने में असफल रहा है क्योंकि जनसंख्या वृद्धि की उच्चतम दर विकासशील अर्थव्यवस्था की विकास दर को घटा देती है। प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम शोषण विकास को बढ़ाता है।
7. शुम्पीटर का विकास सिद्धांत उत्पादन प्रेरक है जबकि आर्थिक विकास उपभोग प्रवृत्ति पर निर्भर करता है।
8. संस्थागत परिवर्तनों की व्याख्या नहीं करता : विकास प्रक्रिया के लिए नवप्रवर्तनों का कोई योगदान नहीं होता, बल्कि कुशल श्रम, उचित कीमत स्तर संरचनात्मक ढांचे, व्यापार आदि में संयोगों के परिणामस्वरूप ही विकास होता है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. शुम्पीटर किस किस व्यवस्था के समर्थक थे?
   (क) पूंजीवादी (ख) साम्यवादी
   (ग) समाजवादी (घ) साम्राज्यवादी
6. आर्थिक क्रियाओं की पूर्ति के लिए शुम्पीटर ने क्या जरूरतें बताई हैं?
   (क) तकनीक ज्ञान (ख) साख सुविधा
   (ग) दोनों (घ) दोनों में से कोई नहीं

2.5 आर्थिक विकास की अवस्थाएं

आर्थिक विकास एक क्रमिक प्रक्रिया है। जिस प्रकार मानव के विकास का आदिम इतिहास इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि मनुष्य जन्म के साथ शिशु से किशोर, किशोर से तरूण और फिर जवान की दहलीज पार करते हुए वृद्धावस्था की ओर अग्रसर होता है। ठीक उसी प्रकार प्रत्येक देश को अपने पिछड़ेपन से विकास की चरम सीमा तक पहुंचने के लिए अनेक अवस्थाओं में से होकर गुजरना पड़ता है। यह संभव हो सकता है कि कोई देश अपने सक्रिय प्रयत्नों के फलस्वरूप विकास की प्रत्येक अवस्था में पड़े रहने की अवधि को कम कर ले, परंतु यह नामुमकिन है। प्रो. रिचार्ड टी. गिल का कहना है कि ''अर्थव्यवस्थाओं के आर्थिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं की खोज इंग्लैंड की महान औद्योगिक क्रांति के काल से ही प्रारंभ की जा चुकी है। यह सैद्धांतिक की बजाए वर्णात्मक अधिक है, क्योंकि इसमें विकास प्रक्रिया को अनेक अवस्थाओं में वर्गीकृत

करने का प्रयास किया गया है जिसमें से सभी देशों को अपने स्वाभाविक आर्थिक उद्‌गम व विकास के स्तर से होकर गुजरना पड़ेगा।"

टिप्पणी

वृद्धि की विभिन्न अवस्थाओं के संबंध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद रहे हैं। इसका मुख्य कारण इन अर्थशास्त्रियों द्वारा वर्णित अवस्थाओं के दृष्टिकोण, आधार व काल में भिन्नता का पाया जाना है।

(अ) **प्रो. फ्रेडरिक लिस्ट द्वारा प्रतिपादित अवस्थाएं**– प्रो. फेडरिक ने वृद्धि की निम्नलिखित पांच अवस्थाओं का उल्लेख किया–

i. आखेट अथवा जंगली अवस्था।

ii. पशुपालन अथवा चरागाह अवस्था।

iii. कृषि अवस्था।

iv. कृषि–निर्माण।

v. वाणिज्य अवस्था।

आर्थिक वृद्धि की दृष्टि से अंतिम (पांचवीं) अवस्था को प्राप्त करने के पश्चात ही एक राष्ट्र आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ बन पाता है। अतः प्रत्येक राष्ट्र की आर्थिक नीति का लक्ष्य इसी अवस्था को प्राप्त करना होना चाहिए।

(ब) **प्रो. हिल्डे ब्रान्ड द्वारा प्रतिपादित अवस्थाएं**– 1. वस्तु विनियम अवस्था 2. मुद्रा अवस्था 3. साख अवस्था

(स) **कोलिन क्लार्क द्वारा प्रतिपादित अवस्थाएं**–1. कृषि उद्योग अवस्था 2. निर्माणकारी उद्योग अवस्था 3. सेवा उद्योग अवस्था

(द) **कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित अवस्थाएं**–1. आदिम साम्यवाद 2. दास समाजवाद 3. सामंतवादी समाज पूंजीवाद 4. साम्राज्यवाद 6. समाजवाद 7. साम्यवाद।

प्रो. रोस्टोव की आर्थिक विकास की अवस्थाएं

अमेरिकन अर्थशास्त्री प्रो. डब्ल्यू डब्ल्यू रोस्टोव ने आर्थिक विकास की अवस्थाओ का सबसे वैज्ञानिक व तर्कपूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उन्होंने ऐतिहासिक आधार पर यह बताने का प्रयास किया है कि एक राष्ट्र किस प्रकार अविकसित अर्थव्यवस्था से विकसित अर्थव्यवस्था को प्राप्त करता है। प्रो. रोस्टोव ने अपनी पुस्तक The Stage of Ecnomic Growth में आर्थिक विकास की प्रक्रिया को पांच अवस्थाओं में विभाजित किया है–

(1) परंपरागत समाज (2) आत्म–स्फूर्ति की पूर्व दशाएं (3) उत्कर्ष या आत्म–स्फूर्ति की अवस्था (4) परिपक्वता की अवस्था तथा (5) अत्यधिक उपभोग की अवस्था।

(1) परंपरागत समाज की अवस्था– प्रो. रोस्टोव के अनुसार ''परंपरागत समाज से तात्पर्य एक ऐसे समाज से है जिसकी संरचना का विकास न्यूटन के पूर्व के विज्ञान और तकनीक तथा भौतिक जगत के प्रति न्यूटन से पूर्व के दृष्टिकोणों पर आधारित सीमित उत्पादन फलनों की सीमाओं के अंतर्गत होता है।''

टिप्पणी

विकास की यह अवस्था अत्यंत पिछड़ी हुई होती है। उत्पादन बढ़ता है लेकिन अत्यंत धीमी गति से और विकास की उत्प्रेरणाओं का सर्वथा अभाव होता है। परंपरागत समाज की आधारभूत विशेषता वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव तथा उत्पादन फलन का सीमित होना है।

प्रमुख विशेषताएं– परंपरागत समाज की विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. आधुनिक विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के प्रयोग के प्रति सीमित दृष्टिकोण पाया जाता है।
2. यह अर्थव्यवस्था अधिकांश रूप से अविकसित होती है।
3. औद्योगीकरण का अभाव होता है तथा अर्थव्यवस्था मुख्यतया कृषि पर आश्रित होती है।
4. उत्पादन कार्य परंपरागत तरीकों से किया जाता है जिसके फलस्वरूप उत्पादकता का स्तर नीचा बना रहता है।
5. जन्म व मृत्यु दर के ऊंची होने के बावजूद जनाधिक्य की कोई समस्या नहीं होती।
6. राज्य की आर्थिक क्रियाएं अत्यंत सीमित होती हैं।
7. इस प्रकार के समाज में राजनीतिक सत्ता भू–स्वामियों के हाथ में केंद्रित होती है।
8. ऐसे समाजों का सामाजिक ढांचा उत्तराधिकारवादी होता है। जिसमें परिवार तथा जाति संबंध प्रमुख भूमिका निभाते हैं।
9. कृषि राज्य की आय का प्रमुख स्रोत होता है।
10. कृषि आय तथा बचतों का अधिकांश भाग अनुत्पादक कार्यो पर व्यय किया जाता है।
11. स्मरण रहे, परंपरागत समाज स्थैतिक समाज नहीं होता बल्कि उत्पादन स्तर, व्यापार में परिवर्तन लाने की पर्याप्त संभावनाएं उपस्थित होती हैं।

(2) आत्म–स्फूर्ति की पूर्व दशाएं– आर्थिक विकास की यह अवस्था संक्रमण काल है, जिसमें सतत वृद्धि की पूर्व दशाओं का निर्माण होता है। इस अवस्था में समाज में धीमे रूप में परिवर्तन होने आरंभ हो जाते हैं और समाज परंपरागत अवस्था से निकलकर एक वैज्ञानिक समाज का रूप लेते हुए आत्म–स्फूर्ति की अवस्था में प्रवेश करने की तैयारी करने लगता है। यही कारण है कि इस काल को आत्म–स्फूर्ति विकास की पूर्व दशाओं का काल कहते हैं यह अवस्था प्रगति की एक ऐसी अवस्था है जिसमें विकास के आवश्यक घटक जैसे श्रम पूंजी और कच्चे माल आदि एकत्र किये जाते हैं और तकनीकी ज्ञान को विकसित किया जाता है। उत्पादन की विभिन्न आत्म–स्फूर्ति की अवस्थाओं को प्राप्त करने के लिए अनुकूल पृष्ठभूमि का निर्माण किया जाता है।

प्रमुख विशेषताएं– इस अवस्था की विशेषताएं इस प्रकार हैं–

(1) कृषि क्षेत्र में प्राविधिक क्रांति लाने के प्रयत्न किये जाते हैं।

(2) सामाजिक व संस्थागत तत्वों के दृष्टिकोण में परिवर्तन होता है।

टिप्पणी

(3) कृषि का सापेक्षिक महत्व कम होने लगता है और उसके साथ ही साथ शहरी क्षेत्र में औद्योगिक कार्यशील जनसंख्या का अनुपात बढ़ने लगता है।

(4) आयातों विशेषतया पूंजीगत आयातों का विस्तार होता है और इसका वित्त प्रबंधन प्राथमिक वस्तुओं तथा प्राकृतिक साधनों के निर्यात द्वारा किया जाता है।

(5) विदेशी पूंजी को आमंत्रित किया जाता है और आंतरिक बचतों के संचय का प्रोत्साहन किया जाता है।

(6) बैंकिंग व्यवस्था, परिवहन व संचार, शिक्षा प्रणाली और श्रम शक्ति के वर्तमान स्तर में विकास व सुधार होने लगता है।

(7) शासन में भू–स्वामियों का महत्व घटने लगता है और उसके स्थान पर एक राष्ट्रवादी सक्षम सरकार की स्थापना हो जाती है।

(8) भू–स्वामियों के हाथ में केंद्रित आय, विकेंद्रित होने लगती है।

(9) व्यक्ति की प्रतिष्ठा अब उसकी संबंधित जाति, उसके धर्म, समाज एवं संघ के कारण न होकर उसकी अपनी योग्यता के कारण होने लगती है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार वायुयान को उड़ाने से पूर्व सर्वे की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार यह अवस्था स्वयं स्फूर्ति अवस्था के उचित उदाहरण वातावरण तैयार करती है। जिसमें इस अवस्था में सौ वर्ष तक रह सकता है।

आत्म–स्फूर्ति की अवस्था की शर्तें

रोस्टोव के अनुसार आर्थिक विकास के लिए आवश्यक दशाओं को पैदा करने के लिए कुछ आवश्यक शर्तो का पूरा होना जरूरी है।

1. राष्ट्रीय आय का लगभग 5 से 10 प्रतिशत या इससे अधिक भाग विनियोजित होना चाहिए।
2. कृषि उत्पादकता में वृद्धि होनी चाहिए ताकि बढ़ती हुई सामान्य तथा शहरी जनसंख्या को आवश्यक खाद्य पूर्ति प्राप्त हो सके।
3. यातायात एवं सामाजिक सेवाओं के विकास पर कुल विनियोग का काफी बड़ा भाग व्यय होना चाहिए।
4. आधुनिक उद्योगों का विकास तथा विविधीकरण होना चाहिए।
5. सामाजिक मूल्यों तथा दृष्टिकोण में आवश्यकतानुकूलन।

(3) आत्म–स्फूर्ति की अवस्था– आत्म–स्फूर्ति या उत्कर्ष अर्थात छलांग लेने की अवस्था विकास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवस्था है। प्रो. रोस्टोव के अनुसार ''आत्म–स्फूर्ति, अविकसित अवस्था है यह वह अंतराल है जब पुरानी बाधाओं तथा प्रतिरोधों पर पूरी तरह से काबू पा लिया जाता है। विकास की प्रेरक शक्तियां, जो अब तक निष्क्रिय बनी हुई थीं, सक्रिय हो उठती हैं और विस्तृत होकर समाज पर हावी होने लगती हैं। विकास समाज की एक सामान्य दिनचर्या का रूप ले लेता है और संचयी विकास उसकी आदतों तथा उसके संस्थानिक ढांचे का अभिन्न अंग बन जाता हैं। प्रो. किंडबर्जर के अनुसार ''यह प्रगति की एक ऐसी अवस्था है जिसमें विकास की रुकावटें दूर हो जाती हैं।''

विकास की दर की चक्रीय वृद्धि नियम के अनुसार बढ़ाने हेतु विनियोजन की दर 5 प्रतिशत से बढ़कर 10 प्रतिशत से भी अधिक हो जाती है। अर्थव्यवस्था कुछ मामलों में आत्मनिर्भर होने लगती है।

टिप्पणी

प्रमुख देशों की आत्म–स्फूर्ति

देश	आत्म–स्फूर्ति
ग्रेट ब्रिटेन	1783–1802
अमेरिका	1843–1860
जापान	1878–1900
भारत	1952

प्रमुख विशेषताएं

1. अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भर व स्वयं संचालित हो चुकी होती है।
2. आर्थिक विकास की बाधाओं पर काबू पा लिया जाता है और आर्थिक प्रगति की उत्प्रेरक शक्तियों का भरपूर प्रयोग किया जाता है।
3. गरीबी का दुश्चक्र पूरी तरह से तोड़ दिया जाता है और विकास एक सामान्य दशा बन जाती है।
4. आधारभूत उद्योगों की स्थापना के कारण औद्योगिक उत्पादन तेजी के साथ बढ़ने लगता है।
5. प्राविधिक विकास एवं नव प्रवर्तन अर्थव्यवस्था की एक स्थायी विशेषता बन जाता है और संचयी विकास संभव होने लगता है।
6. कृषि क्षेत्र में संलग्न जनसंख्या का प्रतिशत 75 से घटकर 40 के करीब रह जाता है।

जनसंख्या औद्योगिक उत्पादन अथवा किन्हीं अन्य परिवर्तन तत्वों के साथ जुड़ी होती है। उन्हें व्युत्पन्न विकास क्षेत्र कहते हैं। उदाहरणार्थ जनसंख्या के संबंध में अन्न का उत्पादन तथा मकानो का निर्माण। अग्रगामी क्षेत्रों के विकास से उद्योगों की विविधता जन्म लेती है। रोस्टोव का कहना है कि अग्रगामी क्षेत्र अपने चारों और नये उद्योगों का जाल तैयार कर देते हैं जो कि एक सुदृढ़ औद्योगिक आधार की पहली कसौटी है। ऐतिहासिक रूप में देखने पर पता चलता है कि इंग्लैंड में सूती वस्त्र उद्योग, अमेरिका व फ्रांस में रेल उद्योग, जर्मनी में इंजीनियरिंग उद्योग, स्वीडन में लकड़ी उद्योग डेनमार्क मांस डेरी उद्योग तथा न्यूजीलैंड में मांस व मक्खन के वैज्ञानिक ढंग से किये जाने वाले उत्पादन ने इन देशों के आर्थिक विकास की नींव को न केवल मजबूत किया है बल्कि अनेक प्रकार के उद्योगों के विस्तार की संभावनाएं भी उत्पन्न की हैं।

इस प्रकार ''स्पष्ट रूप से उत्कृष्ट के लिए कोई क्षेत्रीय अनुक्रम नहीं है, कोई अकेला क्षेत्र ऐसा नहीं जो जादू की कुंजी हो।'' रोस्टोव के अनुसार प्रमुख क्षेत्रों की शीघ्र वृद्धि चार आधारभूत तत्वों की उपस्थिति पर निर्भर करती है–

टिप्पणी

(1) उनके उत्पादनों की वास्तविक मांग में अवश्य वृद्धि हो, जो सामान्य रूप से विसंग्रह, उपभोग घटाने, पूंजी के आयात के द्वारा अथवा वास्तविक आयों में तीव्र वृद्धि के द्वारा लाई गई हो।

(2) इन क्षेत्रों में क्षमता के विस्तार के साथ–साथ एक नया उत्पादन फलन प्रारंभ किया जाए।

(3) उत्कृष्टता के लिए, इन प्रमुख क्षेत्रों में पर्याप्त प्रारंभिक पूंजी तथा निवेश लाभ है।

(4) ये प्रमुख क्षेत्र तकनीकी परिवर्तनों के माध्यम से अन्य क्षेत्र में उत्पादन के विस्तार का सूत्रपात करें।

उपयुक्त सामाजिक एवं सांस्कृतिक ढांचा– आत्म–स्फूर्ति के लिए तीसरी आवश्यक शर्त एक उपयुक्त, राजनीतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक ढांचे का पाया जाना है। अर्थव्यवस्था की सामाजिक संरचना ऐसी होनी चाहिए कि जिसमे बचत की दर को पर्याप्त रूप से ऊंचा किया जा सके। इसका कारण यह है कि विदेशी पूंजी के महत्वपूर्ण होने के बावजूद, अर्थव्यवस्था में पूजी निर्माण का कार्य घरेलू बचतों पर निर्भर हुआ करता है। रोस्टोव का कहना है कि ''आत्म–स्फूर्ति के लिए वह समाज अधिक उपयुक्त होगा जो उद्यमशीलता अर्थात जोखिम उठाने के लिए सदैव तैयार रहे और नव प्रवर्तनों को अपनाने की तत्परता रखता है।'' तीव्र आर्थिक विकास वही समाज कर सकता जो परंपरागत धरातल से ऊपर उठकर आधुनिक धरातल पाने की महत्वाकांक्षा रखता हो, जो समस्याओं से जूझने का सामर्थ्य रखता हो, जिसमें जोखिम उठाने की क्षमता हो। आत्म–स्फूर्ति को रेखाचित्र द्वारा भी स्पष्ट किया गया है।

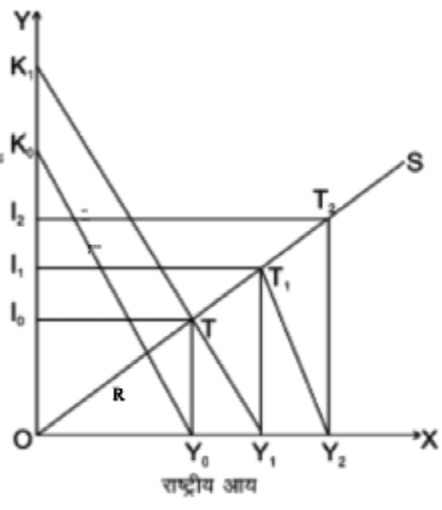

स्पष्टीकरण– OS बचत रेखा है तथा $K_o Y_o$ और K_1Y_1 पूंजी उत्पाद अनुपात वक्र हैं। इन दोनों वक्रों का समानांतर होना इस बात का प्रतीक है कि ORS स्थिर है अर्थात $OK_o/OY_o=OK_1/OY_1$ इसी प्रकार TY_o/Y_oY_1 सीमांत पूंजी उत्पाद अनुपात है। आत्म–स्फूर्ति से पूर्व अर्थव्यवस्था का बचत वक्र चपटा है और उत्पादन वक्र अत्यधिक प्रपाती है जो इस बात का द्योतक है कि समाज अपनी आय में से कुछ भी नहीं बचाता और ORS काफी ऊंचा है। O समयावधि में, जब Ol_o निवेश किया जाता है तो यह पूंजी स्टॉक को बढ़ाकर I समयावधि में उत्पादक बन जाता है और राष्ट्रीय आय को

टिप्पणी

OY_1 स्तर तक बढ़ा देता है। तो उत्पादक पूंजी की वृद्धि और भी अधिक तेजी के साथ होती है। जिससे COR घटकर T_1Y_1/T_2Y_2 हो जाता है। फलत एक तरफ निवेश का ढांचा बदलता है तो दूसरी ओर ORS वक्र अधिक चपटा होने लगता है। राष्ट्रीय आय OY_1 से बढ़कर OY_2 हो जाती है जो शुद्ध निवेश की मात्रा को OI_1 ऊंचा उठाकर OI_2 पर ले जाती है। अर्थव्यवस्था में आत्म–स्फूर्ति अवस्था उत्पन्न हो जाती है और यदि विकास का यह क्रम जारी रहे तो अर्थव्यवस्था आत्म निर्भर हो जाती है।

(4) परिपक्वता की अवस्था– आत्म–स्फूर्ति अर्थात छलांग स्तर की अवस्था प्राप्त कर लेने के बाद अर्थव्यवस्था परिपक्वता की अवस्था की ओर अग्रसर होने लगती है। रोस्टोव के अनुसार ''अर्थव्यवस्था उन भौतिक उद्योगों से आगे बढ़ने की क्षमता रखती हैं जिन्होंने उसकी आत्म–स्फूर्ति को संभव बनाया है और आधुनिक प्रौद्योगिकी को पूर्ण कुशलता के साथ अपने अधिकांश साधन क्षेत्रों पर लागू करने की सामर्थ्य रखती है।''

इस अवस्था में विनियोग की दर 10 से 20 प्रतिशत के बीच रहती है। प्रो. रोस्टोव का कहना है कि यह अवस्था एक दीर्घकालीन प्रक्रिया है और एक समाज स्वयं स्फूर्ति के आरंभ होने के 60 वर्ष बाद परिपक्वता की अवस्था प्राप्त कर पाता है, परंतु फिर भी स्पष्टतया इस अवधि के लिए कोई निश्चित रूप से भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है।''

रोस्टोव ने निम्नलिखित देशों की प्रौद्योगिकी की संकेतात्मक तिथियां दी है–

बर्तानिया	1850	स्वीडन	1930
अमेरिका	1900	जापान	1940
जर्मनी	1910	रूस	1950
फ्रांस	1910	कनाडा	1950

जब कोई देश परिपक्वता की अवस्था में आता है तो उसमें तीन महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं–

(1) **कार्यकारी शक्ति की प्रकृति में परिवर्तन**– देश की अर्थव्यवस्था में कृषि का सापेक्षिक महत्व कम हो जाता है जिसके फलस्वरूप कृषि कार्यों में संलग्न जनसंख्या का अनुपात भी घट जाता है। श्रम शक्ति कार्यकुशल हो जाती है। और वास्तविक मजदूरी बढ़ जाती है। लोग ग्रामीण क्षेत्रों में रहने की बजाय शहरों में रहना अधिक पसंद करने लगते हैं। शहरी जनसंख्या में प्रशिक्षित तथा सफेदपोश श्रमिकों का अनुपात साधारण श्रमिकों की तुलना में अधिक हो जाता है। श्रम शक्ति में जागरुकता और सामाजिक सुरक्षा प्राप्त करने के लिए श्रमिक संगठित हो जाते हैं।

(2) **उद्यम की प्रकृति में परिवर्तन**– उद्यम की प्रकृति इस प्रकार बदलती है कि कठोर तथा परिश्रमी मालिकों का स्थान सभ्य तथा विनम्र प्रबंधकों के हाथ में आ जाता है।

(3) तीव्र औद्योगीकरण के चमत्कारों से समाज एक तरफ पर्याप्त रूप से लाभान्वित होता है तो दूसरी तरफ उनसे ऊब जाता है। फलतः और भी अधिक नूतनताओं की मांग की जाती है जो पुनः परिवर्तन ला सके।

टिप्पणी

(4) अत्यधिक उपभोग की अवस्था परिपक्वता की अवस्था प्राप्त होने के बाद अर्थव्यवस्था अत्यधिक उपभोग की अवस्था में प्रवेश करती है। अवस्था परिवर्तन का यह काल अधिक लंबा नहीं होता है। इस अवस्था में अग्रगामी क्षेत्र अधिकतकर टिकाऊ उपभोगीय वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करने लगते हैं जिससे उपभोग का स्तर काफी ऊंचा उठ जाता है। मोटर कारों और घरेलू जीवन से संबद्ध अन्य उपकरणों का प्रयोग काफी मात्रा में होने लगता है। समाज का ध्यान उत्पादन से हटा उपभोग अर्थात लोगो में पूर्ति की अपेक्षा मांग, उत्पादन का उपभोग और आर्थिक विकास की समाज में भौतिक कल्पना का महत्व अधिक बढ़ जाता है।

प्रमुख विशेषताएं— इस अवस्था की विशेषताएं इस प्रकार हैं—

1. इस अवस्था में उपभोग का स्तर उच्चतम हो।
2. औद्योगिक जनसंख्या में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि हो जाती है।
3. टिकाऊ उपभोक्ता सामानों, जैसे बिजली का सामान, रेफ्रिजरेटर, वातानुकूलन यंत्र व मोटरों आदि का उत्पादन व उपभोग बड़े पैमाने पर किया जाने लगता है।
4. लगभग देश में पूर्ण रोजगार की स्थिति स्थापित हो जाती है।
5. इन परिवर्तनों के बाद समाज आधुनिक तकनीक में और अधिक विस्तृत परिवर्तन स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होता है। यह विकास की चरम अवस्था होती है।

परिपक्वता की अवस्था प्राप्त हो जाने के पश्चात अर्थव्यवस्था अपनी उत्पादन शक्तियां निम्नलिखित तीन दिशाओं में से किसी भी दिशा में लगा सकती हैं।

प्रथम, बाह्य प्रभाव व शक्ति प्राप्त करने का प्रयास करना अर्थात अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शक्ति का विस्तार करना।

द्वितीय, सामाजिक सुरक्षा, श्रम कल्याण तथा आय के समान वितरण के द्वारा कल्याणकारी सुरक्षा, श्रम कल्याण तथा आय के समान वितरण के द्वारा कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना।

तृतीय व्यक्तिगत उपभोग को बढ़ावा व प्राथमिकता देना और इस दृष्टि से राष्ट्रीय साधनों को बड़ी मात्रा में टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन पर लगाया जाना।

कोई देश उपरोक्त मार्गों में से किस मार्ग को अपनाएगा, यह निर्णय उस देश की सांस्कृतिक, सामाजिक व राजनीतिक दशाओं पर अधिक निर्भर रहता है। उदाहरण के तौर पर, रूस ने अंतर्राष्ट्रीय शक्ति के विस्तार को चुना है तो अमेरिका द्वारा व्यक्तिगत उपभोग को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया जाता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से, संयुक्त राज्य अमेरिका 1920 में अत्यधिक उपभोग की अवस्था में प्रवेश करने वाला पहला देश था, उसके बाद यह गौरव ग्रेट ब्रिटेन को 1930 में प्राप्त हुआ तथा 1950 में जापान व पश्चिमी यूरोप के कुछ देशों द्वारा यह अवस्था प्राप्त की गयी।

प्रो. किंडलबर्जर का कहना है कि विकास की यह अवस्थाएं एक प्रकार से Gompertz 'S' की शकल की भांति है। जैसा कि रेखाचित्र से स्पष्ट होता है। इसमें

विकास का कार्य पहले बहुत धीरे से प्रारंभ होता है। फिर क्रमशः जोर पकड़ता है और इसके बाद काफी तेजी के साथ बढ़ता रहता है और अंत में एक निश्चित सीमा पर आकर विकास पथ शिथिल होने लगता है। बर्जर महोदय का कहना है कि वास्तव में रोस्टोव की विकास प्रक्रिया 'S' रूप में मनुष्य के शरीर के विकास की भांति है जो शिशु से किशोर अवस्था तक एक गति से चलती है और फिर यौवन अवस्था की ओर तेजी के साथ अग्रसर होती है।

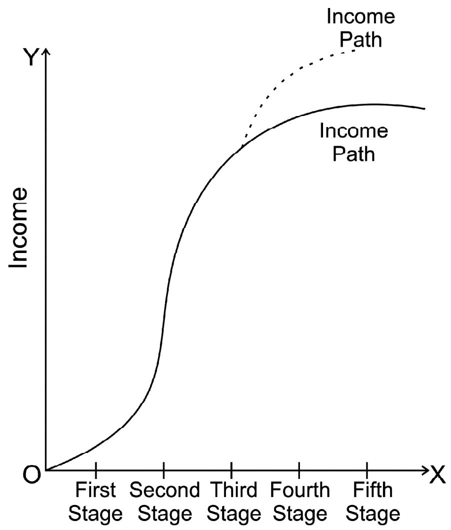

आर्थिक विकास की अवस्थाओं की आलोचना

इसमें कोई संदेह नहीं कि रोस्टोव द्वारा आर्थिक विकास की अवस्थाओं का विश्लेषण अत्यंत क्रमबद्ध व तर्कपूर्ण ढंग से किया गया है परंतु कुछ अर्थशास्त्रियों, विशेषकर मेयर एवं बाल्डविन, साइमन, कुजनेट्स, केरनक्रास, डस्मौण्ड, प्रो. सैन ने रोस्टोव के दृष्टिकोण को त्रुटिपूर्ण माना है। प्रो. बैंजमीन हिंगीन्स, रोस्टोव महोदय के समर्थक माने जाते हैं और उन्होंने इस विश्लेषण को सही और औचित्यपूर्ण ठहराया है। रोस्टोव के दृष्टिकोण की निम्न आधार पर आलोचना की गई है।

1. **इतिहास को निश्चित अवस्थाओं में बांटना संभव नहीं**– प्रो. मेयर का कहना है कि इतिहास की निश्चित अवस्थाओं में न तो बांटना संभव है और न ही यह जरूरी है कि सभी देश एक ही प्रकार की अवस्थाओं में से होकर गुजरें। उनके शब्दों में, "यह कहना कि प्रत्येक अर्थव्यवस्था सदैव विकास के एक–ही भाग को अपनाती है और उसका एक–सा भूत तथा भविष्य होता है, अवस्थाओं के क्रम का आवश्यकता से अधिक सरलीकरण करना है।" प्रो. हबाकुक ने ऐतिहासिक दलीत देते हुए कहा है कि अमेरिका, कनाडा, न्यूजीलैंड तथा ऑस्ट्रेलिया परंपरागत समाज की अवस्था में से बिना गुजरे ही पूर्व–दशाओं की अवस्था में प्रवेश कर गए थे।
2. **अवस्थाओं का क्रम भिन्न हो सकता है**– गरशेनक्रान के अनुसार, ''प्रत्येक देश आर्थिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरता अवश्य है परंतु यह आवश्यक नहीं कि एक देश रोस्टोव द्वारा वर्णित अवस्थाओं में से हो होकर गुजरे। अवस्थाओं का क्रम अनियमित हो सकता है।''

टिप्पणी

3. **अवस्थाओं में परस्पर–व्यापिता**– कुजनेट्स तथा केयरनक्रास का कहना है कि रोस्टोव द्वारा वर्णित आर्थिक विकास की अवस्थाएं एक–दूसरे से भिन्न न होकर परस्पर–व्यापी हैं। एक अवस्था की विशेषताएं दूसरी अवस्था में भी देखने को मिलती हैं।
4. **अवस्था का पता लगाने में कठिनाई**– कौन सा देश विकास की किस अवस्था में है इसकी जांच करने हेतु पर्याप्त सांख्यिकीय सूचनाओं का उपलब्ध होना संभव नहीं है। दूसरा, इस बात का कैसे पता लगाया जाए कि किसी देश में अमुक अवस्था का काल पूरा हो चुका है और एक के बाद दूसरी अवस्था कब प्रारंभ होगी।
5. **आत्म पोषित विकास श्रमोत्पादक विचार है**– कुजनेट्स के अनुसार आत्माओं या आत्म–निर्भर विकास का विचार श्रमोत्पादक है। प्रथम, विशेषताओं की दृष्टि से यह आत्म–स्फूर्ति की अवस्था के ही समान है क्योंकि दोनों अवस्थाओं के बीच की विभाजन–रेखा स्पष्ट नहीं है। दूसरा ''कोई भी विकास शुद्ध रूप से आत्म निर्भर अथवा आत्म–सीमित नहीं हो सकता क्योंकि उसके स्वयं को सींख करने वाले कुछ प्रभाव सदैव बने रहते हैं। विकास तो एक निरंतर संघर्ष है जिसे आत्म–निर्भर कहना बहुत कठिन है।''
6. **अत्यधिक उपभोग अवस्था काल–क्रम के अनुसार नहीं**– आलोचकों का कहना है कि विश्व के कुछ देश जैसे ऑस्ट्रेलिया, कनाडा उन परिपक्वता की अवस्था में प्रवेश किये बिना ही अत्यधिक उपभोग की अवस्था प्राप्त कर चुके हैं जोकि रोस्टोव के अवस्था–कालक्रम के विरुद्ध है।

आत्म–स्फूर्ति की अवस्था की आलोचना

आत्म–स्फूर्ति की सर्वाधिक बहुचर्चित विवादास्प्रद अवस्था है। इस अवस्था की निम्न आधार पर आलोचना की गयी है–

(क) **आत्म–स्फूर्ति की तिथियां संदेहप्रद हैं**– रोस्टोव ने शुरू में भारत का आत्म–उत्थान वर्ष 1937 माना था जिसे बाद में 1952 कर दिया। इतिहासकारों का कहना है कि आत्म–स्फूर्ति की तिथियां संदेह उत्पन्न करती हैं और रोस्टोव द्वारा सुझायी गयी तिथियां सही हैं या गलत, इसका निर्धारण एक व्यापक अनुसंधान के बाद ही हो सकता है।

(ख) **आत्म–स्फूर्ति में विफलताओं की संभावना की अवहेलना**– रोस्टोव द्वारा प्रयुक्त शब्द take off का शाब्दिक अर्थ है उड़ान भरना या छलांग लगाना। प्रो. हबाकुक का कहना है कि ''उड़ान के दौरान टकराने या गिर पड़ने की अवस्थाओं को रोस्टोव ने बिल्कुल ध्यान में नहीं रखा है।''

(ग) **निवेश की वृद्धि–दर का आगणन काल्पनिक है**– आत्म–स्फूर्ति की पहली शर्त के अनुसार निवेश की दर का राष्ट्रीय आय के 10 प्रतिशत से अधिक बढ़ना है किंतु कुजनेट्स का इस संबंध में कहना है कि रोस्टोव का सीमा निर्धारण का यह दावा मात्र उसकी कल्पना है, जिसका कोई संख्यात्मक आधार नहीं है।

(घ) **बचत–आय अनुपात संबंधी तर्क**– रोस्टोव के सिद्धांत के अनुसार बचत आय अनुपात, औद्योगीकरण से पहले बढ़ जाता है जबकि विभिन्न देशों के आंकड़े यह सिद्ध करते हैं कि बचत–आय अनुपात औद्योगीकरण के बाद और वह भी धीरे–धीरे बढ़ता है।

(ङ) **अग्रगामी क्षेत्र संबंधी तर्क**– रोस्टोव ने इस क्षेत्र में कुछ चुने हुए उद्योगों को शामिल किया है। केयरनक्रॉस ने इस पर आपत्ति करते हुए कहा है कि उद्योगों के इस चयन का आधार क्या है। दूसरा आर्थिक विकास कुछ गिने–चुने क्षेत्रों से ही नहीं हो जाता, और यदि यह सच है तो इसकी पुष्टि इतिहास द्वारा नहीं होती है।

(च) **सम–अर्थीय शर्तें**– आत्म–स्फूर्ति की तीसरी शर्त है एक ऐसे सांस्कृतिक ढांचे का अस्तित्व या आविर्भाव, जो विकास को बहिर्गामी रूप दे सके अर्थात जिसमें घरेलू स्त्रोतों से पूंजी जुटाने की क्षमता उत्पन्न हो सके। किंतु सही अर्थों में इन शर्तों को पहली शर्त का पुनर्कथन मात्र ही कहा जा सकता है।

कुछ भी हो, उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद आर्थिक विकास की इस समस्या का विधिवत ढंग से विश्लेषण करने का श्रेय प्रो. रोस्टोव को ही दिया जाता है। प्रो.जी. मेयर ने तो स्पष्टतया कहा है कि "A great deal of what Rostow says is helpful in spite of rather than because of the stage approach."

अल्पविकसित देशों के लिए उत्कर्ष का महत्व एवं सीमाएं

महत्व– अल्पविकसित देशों के औद्योगीकरण के लिए उत्कर्ष का सिद्धांत बहुत ही उपयुक्त है। उत्कर्ष की तीनों आवश्यक शर्तों में से पहली दो, क्रमशः राष्ट्रीय आय के 10 प्रतिशत से ऊपर पूंजी निर्माण तथा एक या अधिक प्रमुख क्षेत्रों का विकास, अल्पविकसित देशों के औद्योगीकरण की प्रक्रिया में सहायक है। जहां तक पहली शर्तों का संबंध है, इस प्रतिशतता की प्राप्ति के बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता। परंतु दूसरी शर्त को किसी देश की परिस्थितियों के अनुकूल ढाला जा सकता है। उदाहरणार्थ प्रमुख क्षेत्र कृषि में हो सकते हैं या निर्यात के लिए प्राथमिक वस्तुओं के उत्पादन में हो सकते हैं। अल्पविकसित देशों के प्रसंग में तीसरी शर्त अधिक महत्वपूर्ण है, जहां मौद्रिक तथा राजनैतिक संस्थाएं और प्रौद्योगिकी तथा कुशलताएं एक निम्न स्तर पर होती है, जिनके कारण वे आधुनिक क्षेत्र के विकास की गति मंद कर देती हैं।

सीमाएं– अल्पविकसित देशों के लिए उत्कर्ष की निम्नलिखित सीमाएं हैं–

1. **पूंजी–उत्पादन अनुपात स्थिर नहीं होता**– प्रो. मिन्ट के अनुसार अल्पविकसित देशों की कुल पूंजी आवश्यकताओं का हिसाब लगाते समय प्रो. रोस्टोव पूंजी उत्पादन अनुपात को स्थिर मान लेता है। इसका अभिप्राय यह है कि पैमाने के स्थिर प्रतिफल हैं। उन्नत अर्थव्यवस्थाओं के बारे में यह धारणा सही है। परंतु अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं की विशिष्टता कृषि तथा प्राथमिक उत्पादन की की प्रधानता है। अपरिवर्तित तकनीकों की ओर बढ़ती हुई जनसंख्या के दिए होने पर, उनके प्राकृतिक साधनों से समस्त अर्थव्यवस्था के विस्तार के लिए पैमाने के घटते प्रतिफल की स्थितियां उत्पन्न होती है।

2. **बेरोजगारी को दूर करने के बारे में चुप है**– प्रो. दास गुप्ता का कथन है कि ''बेरोजगारी के संचित रुकावट को हटाना न्यूनतम है जिसको कि उत्कर्ष अवश्य पूरा करे।'' उनके अनुसार, ''जब एक बार पूर्ण रोजगार की अवस्था प्राप्त हो जाती है तो अर्थव्यवस्था उस स्तर पर पहुचती है, जहां वृद्धि आत्म निर्भर तथा उत्कर्ष होती है।'' भारत का प्रश्न लिया जाए, तो वे कहते हैं कि ''रोजगार के मापदंड से निर्णय लिया जाए, तो समस्त निवेश के बावजूद हमारी अर्थव्यवस्था पीछे हटती प्रतीत होती है।'' इसलिए अत्यधिक जनसंख्या वाले देश के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि बेरोजगारी दूर करना उत्कर्ष की स्थितियों में से एक माना जाए।
3. **अस्पष्टता का तत्व**– इसके अतिरिक्त, जब इसे अल्पविकसित देश पर लागू करते हैं तो उत्कर्ष के इस सिद्वान्त में अस्पष्टता का तत्व रहता है। उत्कर्ष की अवधि में, राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने पर औसत उपभोग प्रवृत्ति को घटाए बिना निवेश बढ़ता है। प्रो. दास गुप्ता के अनुसार, ''यह तर्कसंगत व्याख्या नहीं प्रतीत होती। क्योंकि, हो सकता है कि बहुत ही विकसित अर्थव्यवस्था में भी बचत की औसत दर स्थिर न रहे।
4. **आर्थिक विकास स्वतः प्रेरित नहीं होता**– उत्कर्ष की धारणा स्वयं प्रवर्तिता के तत्व का संकेत करती है, जो अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के प्रसंग में कोई महत्व नहीं रखती। प्रो. जॉन पी. लुइस के अनुसार, ''उत्कर्ष तात्कालिक प्रक्रिया नहीं है। यह ऐसा व्यायाम है जिसके लिए समय चाहिए और जिससे उस समय पीछे मुड़ना या सही सलामत रुकना भी, संभव नहीं जब एक बार निश्चित रफ्तार पकड़ ली गई हो और विमान भूमि का एक भाग पार कर लिया गया हो।''
5. **वैमानिक धारणा सही नहीं**– प्रो. बिकानिक उत्कर्ष के प्रतीकात्मक प्रस्तुतीकरण से सहमत नहीं हैं क्योंकि यह आर्थिक विकास की बहुत कठिन चौखट पर रेंगने के समान है। इस पर से पेट के बल रेंग कर जाना पड़ता है, इस पर से उड़कर नहीं जाया जा सकता। यह उड़ान नहीं है बल्कि बहुत दुखदायी प्रक्रिया है जिसमें से प्रत्येक देश को गुजरना पड़ता है।
6. **धीमा औद्योगीकरण**– विकासशील देशों के लिए औद्योगीकरण की आवश्यकता बहुत अधिक है यह द्रुतगति से देश के आर्थिक विकास के लिए परमावश्यक है, वास्तव में विभिन्न प्रकार के उद्योगों के अभाव में देश का आर्थिक विकास का कार्य अधूरा ही रहेगा। उद्योगों के समुचित विकास के बिना लोगों की आय में अर्थपूर्ण एवं नियमित रूप से वृद्धि लाना संभव नहीं है। औद्योगीकरण के फलस्वरूप अनेक प्रकार के महत्वपूर्ण लाभ प्राप्त होते हैं। इनके आधार पर देश के लिए उद्योगों की आवश्यकता या महत्व की कल्पना आसानी से की जा सकती है।

औद्योगीकरण देश की अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने, उसके स्तर को ऊपर उठाने तथा उसमें संतुलन लाने में सहायक होता है, औद्योगीकरण द्वारा ही निर्धनता के दुश्चक्र को तोड़ा जा सकता है। औद्योगीकरण के सहारे विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों में संतुलन स्थापित किया जा सकता है तथा अर्थव्यवस्था को ऊंचे स्तर पर ले जाया जा सकता है तथा गरीबी और बेकारी की समस्या को स्थायी रूप से खत्म किया जा सकता है। क्योंकि

सभी अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाएं कृषि प्रधान होती हैं, इसलिए कृषि सुधार तथा उसके पुनर्गठन के लिए भी औद्योगीकरण आवश्यक है। कृषि के समुचित विकास के लिए औद्योगीकरण का होना आवश्यक है। कृषि–उत्पादिता में वृद्धि लाने के लिए रासायनिक खाद, बिजली, उन्नत किस्म के कृषि–उपकरण आदि की आवश्यकता पड़ती है, ये साधन औद्योगिक विकास के बिना देश के भीतर उपलब्ध नहीं होते। औद्योगिक उन्नति से देश में श्रम की मांग बढ़ती है, इससे बेकारी दूर होती है तथा लोगों की आय में वृद्धि होती है। ज्यों–ज्यों उद्योग धंधों का विकास होगा, अधिकाधिक लोगों को काम दिलाना संभव हो जाएगा और खेती तथा अन्य अपेक्षाकृत कम लाभकारी कार्यों में लगे हुए फालतू लोग, उद्योग, व्यापार, परिवहन, व्यवसाय आदि की ओर खिंच जाएंगे। इस प्रकार औद्योगीकरण से न केवल रोजगार के अवसर बढ़ेंगे, बल्कि देश का व्यावसायिक ढांचा भी प्रकार का हो सकेगा। ऐसा होने से देश के प्राकृतिक तथा मानवीय साधनों का समुचित विकास हो सकेगा और आर्थिक विकास गतिमान हो सकेगा।

औद्योगीकरण से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के ढांचे में व्यापक परिवर्तन आ जाता है। इसके प्रभाव से उत्पादन–प्रक्रिया में परिवर्तनों का तांता लगा रहता है। फिर इन परिवर्तनों की सफलता के लिए परिवहन, चालान शक्ति, बैंकिंग प्रबंध तथा व्यवस्था आदि अनेक क्षेत्रों में विकास लाया जाना आवश्यक बन जाता है। साथ ही औद्योगीकरण से सामाजिक मूल्यों तथा तौर–तरीकों में आवश्यक परिवर्तन लाने, शिक्षा व स्वास्थ्य की सुविधाओं की व्यवस्था तथा शहरीकरण की दिशा में विशेष सहायता मिलती है। इस प्रकार व्यक्ति तथा समाज के बहुमुखी विकास में औद्योगीकरण का योगदान बहुत महत्वपूर्ण ठहरता है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि देश के विकास तथा सुख–समृद्धि के लिए औद्योगीकरण कितना लाभप्रद और आवश्यक है। वैसे तो यह सदा ही वांछनीय है किंतु आज की परिस्थितियों में अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में आय का स्तर बहुत नीचा है इन देशों में बेकारी फैली हुई है, कृषि पर असह्य बोझ लदा हुआ है और जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है, अतः यह और भी आवश्यक बन गया है। इससे देश की ठीक प्रकार से सुरक्षा हो सकेगी। अर्थव्यवस्था को ऊंचे स्तर पर ले जाकर उसमें समुचित संतुलन लाना संभव हो सकेगा। वास्तव में हमारे जैसे विकासशील देश के लिए आर्थिक विकास और औद्योगीकरण बहुत बड़ी सीमा तक एक ही चीज ठहरते हैं।

यद्यपि औद्योगीकरण की उपलब्धियां इन अर्थव्यवस्थाओं के लिए काफी उत्साहवर्द्धक रही हैं, किंतु फिर भी इन देशों की औद्योगीकरण से संबंधित कुछ प्रमुख समस्याएं निम्नलिखित हैं जिनके कारण ये अर्थव्यवस्थाएं तीव्र औद्योगिक विकास नहीं कर पा रही हैं।

अल्पविकसित देशों में मंद औद्योगीकरण के कारण

अल्पविकसित देशों में विकास से संबंधित कुछ प्रमुख समस्याएं निम्नलिखित हैं जिनके कारण तीव्र औद्योगिक विकास नहीं हो सका है।

1. **अनुशासनहीनता की समस्या**– औद्योगीकरण की महत्वपूर्ण समस्याओं में से एक समस्या श्रमिकों की अनुशासनहीनता की समस्य है। औद्योगीकरण श्रमिकों

टिप्पणी

को संगठित होने का अवसर देता है। जिसका परिणाम यह होता है कि सदा ही श्रमिकों व मालिकों में रस्साकशी बनी रहती है।

2. **ऊर्जा की समस्या**— जब किसी देश में औद्योगीकरण होता है तो वहां ऊर्जा की मांग बढ़ जाती है लेकिन ऊर्जा की पूर्ति मांग के अनुरूप न बढ़ने के फलस्वरूप उद्योगों के लिए ऊर्जा की पूर्ति नहीं हो पाती है। अतः उनके सामने ऊर्जा की समस्या पैदा हो जाती है जिससे उन्हें पूरे समय कारखाने न चलाकर कुछ घंटे ही चलाने के लिए बाध्य होना पड़ता है।
3. **ऊंची लागतें**— देश के उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं की लागत अधिक है। फलतः अंतर्राष्ट्रीय बाजार में हमारी वस्तुओं की कीमतें अंतर्राष्ट्रीय कीमत की तुलना में अधिक है, इसके लिए आंशिक रूप से स्वस्थ प्रतियोगिता और आयातों पर कठोर नियंत्रणों के कारण देश के बड़े उद्यमियों को विदेशी प्रतियोगिता का सामना नहीं करना पड़ता।
4. **पूंजी का अभाव**— आधुनिक औद्योगीकरण में भारी मात्रा में पूंजी की आवश्यकता होती है जिसका इन देशों में सदा अभाव रहता है। यहां प्रति व्यक्ति आय कम ही रही है। जिससे बचत एवं पूंजी—निवेश की मात्रा भी कम रही है। अतः औद्योगिक पूंजी के अभाव में अल्पविकसित देश आधिक औद्योगीकरण नहीं कर पाये हैं।
5. **विदेशी विनिमय की सभ्यता**— कच्चा माल, मशीनों, उपकरनों, संघटकों आदि के आयात के लिए पर्याप्त मात्रा में विदेशी विनिमय न मिलने के कारण भी उद्योग अपनी क्षमता क पूर्ण उपयोग करने में सफल नहीं होते हैं।
6. **योग्य साहसियों का अभाव**— अल्पविकसित देशों की धीमी गति के कारण योग्य साहसियों का अभाव भी रहा है अल्पविकसित देशों में साहसियों का कार्य विदेशी व्यक्तियों एवं देश के कुछ धनवान व्यक्तियों द्वारा किया गया था, जिन्होंने आगे चलकर अपने आपको प्रबंध अभिकर्ता के रूप में बदल दिया था जिन्हें उनके प्रति बढ़ते हुए अविश्वास के कारण समाप्त कर दिया गया है और इस प्रकार आज भी देश में योग्य साहसियों का अभाव है जो विश्वास की स्थापना कर सकें।
7. **औद्योगिक विकास की अनियंत्रित दर**— अल्पविकसित देशों में औद्योगिक विकास की गति न केवल धीमी रही वरन् इसमें निरंतर उतार—चढ़ाव होते रहते हैं।
8. **रोजगार की समस्या की उपेक्षा**— औद्योगीकरण से रोजगार की समस्या पर कोई तीव्र प्रभाव नहीं पड़ा है। प्रो. गुन्नर मिर्डल के शब्दों में, ''औद्योगीकरण के रोजगार पर प्रभाव आगामी कई दशकों में बहुत अधिक नहीं हो सकते।''
9. **औद्योगिक अशांति**— इन देशों में औद्योगिक अशांति व्याप्त है। श्रमिक वर्ग की यह शिकायत है कि उन्हें उनकी सेवाओं के बदले में उचित पुरस्कार नहीं मिलता। औद्योगीकरण अशांति, हड़तालों और तालाबंदी का रूप धारण कर लेता है।

10. **छोटे तथा मध्यम क्षेत्रों की उपेक्षा**– इन देशों में औद्योगीकरण का एक दोष यह है कि यहां बड़े पैमाने के उद्योगों का तीव्र विस्तार हुआ है, जबकि छोटे व मध्यम क्षेत्र की उपेक्षा की गयी है।
11. **औद्योगिक रुग्णता की समस्या**– इन देशों में रुग्णता की समस्या भी अत्यंत गंभीर है। 31 मार्च, 2001 की स्थिति के अनुसार अनूसूचित, वाणिज्यक बैंकों से भारतीय रिजर्व बैंक, द्वारा संकलित की गयी सूचना के अनुसार 2.53 लाख रुग्ण (कमजोर) औद्योगिक इकाइयां थीं जिनमें से लघु उद्योग क्षेत्र में 2.5 लाख इकाइयां संघर्ष की स्थिति में हैं।
12. **स्थापित क्षमता का कम उपयोग**– अनेक उद्योगों में उत्पादन क्षमता का काफी बड़ा भाग अप्रयुक्त पड़ा है। क्षमता के अल्प उपयोग की मात्रा कहीं–कहीं तो 70 से 90 प्रतिशत बैठती है। इन उद्योगों में कई आधारभूत एवं पूंजीगत माल उद्योग भी हैं। इनका राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है। क्षमता के अल्प उपयोग के अनेक कारण हैं, जैसे– बिजली, लागत का कम अनुमान तथा असंतुलनों इत्यादि की समस्या उत्पन्न हुई है।
13. **दोषपूर्ण पूर्व नियोजन**– अनेक योजनाओं के निर्माण में दोषपूर्ण पूर्व नियोजन किया गया है। जिसके कारण योजनाओं के क्रियान्वयन में विलंब, लागत का कम अनुमान तथा असंतुलनों इत्यादि की समस्या उत्पन्न हुई है।
14. **वांछित दिशा में विनियोग न होना**– औद्योगिक क्षेत्र में एक प्रवृत्ति यह भी दिखायी देती है कि पूंजीगत उन अनेक उद्योगों में भारी पूंजी का विनियोग कर रहे हैं जिनका योजनाओं द्वारा निर्धारित प्राथमिकता क्रम में नीचा स्थान है। यही नहीं, आर्थिक अतिरेक का उपयोग उद्योगों में नहीं किया जाता बल्कि उपभोग पर व्यय किया जाता है। अथवा फिर सट्टेबाजी में लगा दिया जाता है अतः औद्योगिक क्षेत्र में समुचित मात्रा में और वांछित दिशा में विनियोग नहीं होते।
15. **प्रादेशिक असमानताएं**– सामाजिक न्याय की दृष्टि से प्रादेशिक असमानताएं समाप्त होना आवश्यक है लेकिन इन देशों में औद्योगिक दृष्टि से प्रादेशिक असमानताएं कम नहीं हुईं बल्कि और बढ़ गयी है।
16. **आर्थिक शक्ति के केंद्रण में वृद्धि**– यद्यपि सरकार की घोषित नीति सरकार को नियंत्रित करने और आर्थिक शक्ति के केंद्रण को रोकने की थी फिर भी योजनावधि में एकाधिकारी तत्वों की शक्ति में वृद्धि हुई है। इसके लिए सरकार की औद्योगिक लाइसेंस नीति तथा औद्योगिक वित्त प्रदान करने वाली राष्ट्रीयकृत संस्थाओं की साख नीति का उत्तरदायित्व कम नहीं है। सरकार की वर्तमान औद्योगिक नीति को देखते हुए आगामी वर्षों में भारतीय उद्योगों पर विदेशी कंपनियों और देशों के एकाधिकारियो का नियंत्रण बढ़ने की संभावना है।
17. **सरकारी क्षेत्र के उद्योगों की असफलता**– इन देशों के औद्योगिक विकास की एक उल्लेखनीय विशेषता सरकारी क्षेत्र के उद्योगों का तेजी से विस्तार सार्वजनिक उपक्रम इकाइयां कार्य–कुशलता एवं लाभदायकता का उचित स्तर प्राप्त करने में असफल रही है।

18. **विभिन्न क्षेत्रों में समन्वय का अभाव**– इन देशों के औद्योगिक विकास में यह कमी भी रही है कि विभिन्न क्षेत्रों में आवश्यक समन्वय का अभाव रहा है। उदाहरण के लिए, कृषि पर आधारित उद्योगों की दशा में कृषि उत्पादन और उद्योगों की आवश्कताओ के मध्य समन्वय पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। देश में कूलर, फ्रिज इत्यादि विलासिता की वस्तुओं का पर्याप्त उत्पादन होने लगा है लेकिन उनके लिए आवश्यक विद्युत पूर्ति की समस्या रही है।
19. **औद्योगिक वस्तुओं की ऊंची लागतें**– इन देशों के उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं की लागत अधिक है। फलतः अंतराष्ट्रीय कीमतों की तुलना में अधिक है, इसके लिए आंशिक रूप से स्वस्थ प्रतियोगिता का अभाव भी जिम्मेदार है। ऊंचे तटकर, प्रतिबंध और आयातों पर कठोर नियंत्रणों के कारण देश के बड़े उद्यमियों को विदेशी प्रतियोगिता का सामना नहीं करना पड़ता।

औद्योगिक पिछड़ेपन को दूर करने हेतु सुझाव

भारत के औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं–

1. **आधारभूत आर्थिक व सामाजिक संरचना का निर्माण**– औद्योगिक विकास के लिए भी आधारभूत ढांचे या संरचना का महत्वपूर्ण स्थान है। औद्योगिक उत्पादन के लिए केवल मशीनों व उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है। बल्कि कुशल जनशक्ति व प्रबंध, ऊर्जा, बैंकिंग, बीमा सुविधाएं, विपणन सुविधाएं व संचार सुविधाओं की भी आवश्यकता पड़ती है। ये सुविधाएं ही विकास के आधारभूत ढांचे के अंग होते हैं। अतः देश में इन सुविधाओं का जितना अधिक विकास होगा, उतना ही अधिक देश का तीव्र गति से औद्योगिक विकास होगा।
2. **उद्यमी क्षमता का विकास**– औद्योगीकरण की गति को त्वरित करने की दिशा में साहसी या उद्यमी की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः यह आवश्यक है कि एवं प्रशिक्षण दिया जाना, औद्योगिक नव–प्रवर्तन नियमों का निर्माण किया जाना तथा सरकार द्वारा उद्यमी संबंधी भूमिका का वहन करना आदि सम्मिलित है।
3. **पूंजी की उपलब्धता**– तीव्र औद्योगिक विकास के लिए विनियोग की दरों में वृद्धि की जानी चाहिए जिसके लिए पूंजी की उपलब्धता अति आवश्यक है। जहां तक संभव हो, विभिन्न वित्तीय नीतियों के द्वारा घरेलू पूंजी को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए और यदि आवश्यक हो तो विदेशी पूजी भी आमंत्रित की जा सकती है परंतु विदेशी पूंजी का उपयोग बड़ी सतर्कता से उत्पादक विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।
4. **वित्तीय स्थिरता**– इन देशों में संगठित तथा कार्य कुशल बैंकिंग व्यवस्था होनी चाहिए, संगठित मुद्रा बाजार पूर्ण तथा पूंजी बाजार दोनों होने चाहिए जिनके द्वारा उद्योग तथा कृषि आदि कों अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन कर्जे उचित ब्याज पर प्राप्त हो सकें। आर्थिक विकास के फलस्वरूप कीमतों में वृद्धि को एक निश्चित सीमा तक ही रखा जाए, वास्तव में, वित्तीय स्थिरता आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है।

5. **रुग्ण इकाइयों की पुनर्स्थापना**– रुग्ण इकाइयों की पुनर्स्थापना के प्रयास किये जाने चाहिए। यदि संभव न हो तो इन्हें बंद करने के लिए निर्णय लिए जाने चाहिए।
6. **प्रतिबंधों की समाप्ति**– स्थापन क्षमता के पूर्ण उपयोग, लागतों में कमी, गुणात्मकता में सुधार और प्रतियोगी संस्कृति को अमल में लाया जाना चाहिए। भौतिक प्रतिबंधों को पूर्णतया समाप्त नहीं किया जाना चाहिए।
7. **मानवीय पूंजी का कौशल निर्माण**– मानवीय पूंजी का अभिप्राय है कि जनसंख्या के दिमागों तथा हाथों में निहित ज्ञान तथा हुनर रूपी मानवीय पूंजी का तब निर्माण होता है जब लोगों को शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रशिक्षण आदि की सुविधाएं प्रदान करने के लिए विनियोग किया जाता है। इस विनियोग से भौतिक पूंजी के विनियोग की तुलना में अधिक प्रतिफल प्राप्त होता है।
8. **आधुनिकीकरण**– आधुनिकीकरण और तकनीकी उन्नयन द्वारा भी औद्योगिक विकास को तीव्रतर बनाया जा सकता है। इसके लिए राजकोषीय नीति की युक्तिसंगतता, शोध व अनुसंधान पर निवेश वृद्धि और सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं द्वारा अधिक मदद की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है।
9. **श्रम संबंधों में सुधार**– औद्योगीकरण के लिए पूंजी एवं श्रम ताल–मेल होना बहुत आवश्यक है। प्रबंधक को चाहिए कि वह शिक्षण प्रशिक्षण एवं श्रम कल्याण संबंधी सुविधाओं के माध्यम से श्रमिकों की कार्य कुशलता में वृद्धि करे।
10. **प्रबंध का व्यवसायीकरण**– इन देशों में प्रबंध का ढांचा परंपरागत रूप से चल रहा है। अतः औद्योगिक प्रबंध को सुधारने हेतु ऐसे व्यावसायिक प्रबंधकों की नियुक्ति करना आवश्यक है जो आधुनिक प्रबंध तकनीक के विशेषज्ञ हों।
11. **औद्योगिक अनुसंधान**– इन देशों में औद्योगिक अनुसंधान पर कम ध्यान दिया जाता है जिससे उत्पादन के साधन बेकार चले जाते हैं और पर्याप्त लाभ प्राप्त नहीं हो पाता है।

अपनी प्रगति जांचिए

7. हिल्डे ब्रान्ड ने आर्थिक विकास की कितनी अवस्थाओं का प्रतिपादन किया है?

   (क) दो (ख) तीन

   (ग) चार (घ) पांच

8. प्रो. रोस्टोव ने भारत की आत्म स्फूर्ति की अवस्था का कौन–सा वर्ष निर्धारित किया?

   (क) 1947 (ख) 1950

   (ग) 1951 (घ) 1952

2.6 आर्थिक निवेश के मापदंड

टिप्पणी

निवेश मानकों से तात्पर्य निवेश के नियोजन से है विकसित अर्थव्यवस्थाओं में निवेशकर्ता निर्णय योग्यता के लिए बाजार शक्तियों पर विश्वास करते हैं उनके निर्णय कुशलता की कसौटी के साथ सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने का प्रयास करते है। निवेश मानकों के सम्बन्ध में प्रो. नर्क्से, प्रो. बैंकैनन, ए. ई. काहन और प्रो. चेमरी के विचार अधिक महत्वपूर्ण है।

अर्धविकसित देशों में उत्पादन योग्यता साधन सीमित होते हैं। उनका बंटवारा एक समस्या है। साधनों का आबंटन अव्यवस्थित तरीके से नहीं किया जा सकता। आर्थिक विकास की वृद्धि के लिए आवश्यक है कि निवेश का आयोजन सुविचारित और समय पर होना चाहिए ताकि अधिकतम प्रतिफल प्राप्त किये जा सके वास्तव में साधनों के उपयोग, विवेकपूर्ण बंटवारा और विनियोग की नीतियों पर किसी अर्थव्यवस्था का विकास निर्भर करता है।

निवेश मापदंड की परिभाषा : निवेश मापदंड से तात्पर्य उस मार्ग से है जिसके माध्यम से अर्धविकसित राष्ट्रों में नियोजन अधिकारी द्वारा आबंटन योजना के उददे्श्य के अनुसार अलग–2 क्षेत्रों और परियोजनाओं में किया जाता हूं'' अर्थात एक नियोजन विशेषज्ञ के द्वारा ससांधनों बंटवारा अलग–2 क्षेत्रों में उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप किया जाता है जिससे सभी क्षेत्रो का विकास सुचारु रूप से किया जा सके।

प्रो. आस्कर लेंज के अनुसार : अर्थव्यवस्था की उत्पादक क्षमता में तीव्रतर वृद्धि करने के लिए पर्याप्त मात्रा में उत्पादक निवेश को ऐसे क्षेत्रों में प्रवाह करने से है जहां योजनाओं के निर्धारित लक्ष्य प्राप्त किये जा सके ।

इस प्रकार एक नियोजित अर्थव्यवस्था में आर्थिक क्रिया कलापों में हिस्सा लेकर साधनों का आदर्शतय बँटवारा किया जा सकता है।

निवेश के आबंटन में चयन की समस्या : के बटवारें में चयन को लेकर विभिन्न प्रकार की समस्या सामने आती है।

1. निवेश का बंटवारा कितनी समयावधि के लिए आवश्यक होना चाहिए?
2. निवेश आबंटन में किन परियोजनाओं और क्षेत्रों को प्रधानता दी जाए?
3. विभिन्न क्षेत्रों और परियोजनाओं में निवेश करने के लिए कौन सी तकनीक का प्रयोग किया जाए?
4. विभिन्न योजनाओं में कितना प्रतिशत निवेश करना है?
5. अलग–अलग क्षेत्रों में आरम्भ की गई विभिन्न योजनाओ पर कितना निवेश करना है

निवेश के आबंटन के उददे्श्य – साधनों के आबंटन का उददे्श्य विशेष रूप से देश के विकास से सम्बन्धित है जो निम्नलिखित है।

1. आर्थिक वृद्धि दर को बढ़ाना साथ ही आय की असमानताओं का कम करना का प्रयास करना।

2. उत्पादन की उच्चतम स्तर तक पहुंचाने के साथ साथ रोजगार वृद्धि के उददेश्य को पूर्ण करना।
3. समाजवादी राज्य की स्थापना।
4. राष्ट्रीय उत्पाद की दर में वृद्धि के साथ आय में वृद्धि करना जिससे प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि की सम्मान बने।
5. आत्मनिर्भरता प्राप्त करना मुख्य उददेश्य होना जिससे प्रत्येक क्षेत्र आर्थिक रूप से सुदृढ़ हो सके।
6. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से भुगतान संतुलन को अनुकूलतम बनाया जा सके।
7. देश की सन्तुलित आर्थिक विकास की दर को तीव्र किया जा सके।
8. उत्पादन स्तर में बढ़ोतरी करके समाज के जीवन स्तर को ऊंचा करना ।

अब यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि निवेश का आबंटन किन उददेश्यों को पूरा करने के लिए किया जाए यह आयोजन की प्राथमिकताओं पर निर्भर करता है।

(क) यदि औद्योगिक विकास को प्राथमिकता दी जाती है तो भारी पूंजीगत उद्योगों को ज्यादा प्राथमिकता दी जाती है। इससे उद्योगों की ओर अधिक निवेश का बंटवारा होगा उत्पादन में वृद्धि होगी लेकिन रोजगार में कम वृद्धि होगी।

(ख) यदि औद्योगिक विकास के लिए ही छोटे और घरेलू उद्योगों को अधिक प्राथमिकता दी जाती है तो रोजगार में वृद्धि होगी। आर्थिक असमानता और गरीबी में भी कमी होगी।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है अर्धविकसित देशों में पर्याप्त उत्पादकीय निवेश आबंटन के द्वारा अर्थव्यवस्था के उददेश्यों की प्राथमिकताओं के अनुरूप आर्थिक विकास को तीव्रतर बनाया जा सकता है।

निवेश आबंटन का महत्व : राष्ट्र के विकास के लिए संसाधनों का कुशलतम उपयोग ही नहीं बल्कि साधनों का व्यवस्थित आबंटन भी आवश्यक होता है देश के आर्थिक विकास में निवेश के बंटवारे का विशेष योगदान है।

1. **प्राथमिकताओं के चयन के लिए**– अर्थव्यवस्था की विभिन्न समस्याओं का अवलोकन करके प्राथमिकताओं के निर्धारण के द्वारा साधनों का बंटवारा हो सकता है
2. **चहुंमुखी विकास**– देश की समस्याओं के समाधान हेतु उपलब्ध साधनों की गतिशीलता की आवश्यकता होती है इसलिए तीव्र आर्थिक विकास के लिए न्यायपूर्ण वितरण सम्भव हो पाता है।
3. **सामाजिक कल्याण करने के लिए**– नियोजित विकास के लिए सार्वजनिक हित और कल्याण को ध्यान में रखते हुए संसाधनों का बंटवारा किया जाता है।
4. **विभिन्न क्षेत्रों की अन्तनिर्भरता**– समाज के सभी क्षेत्र एक दूसरे पर निर्भर करते हैं इसलिए इस बात को ध्यान में रखते हुए निवेश का आबंटन करना महत्वपूर्ण है।

टिप्पणी

5. **दुर्लभ संसाधनों का सर्वश्रेष्ठ प्रयोग**– अर्धविकसित देश में साधन सीमित होते है और विकास योग्य आवश्यकताएं अनन्त होती हैं इसलिए निवेश के आबंटन के द्वारा ही दुर्लभ ससांधनों का सुचारु रूप से उपयोग सम्भव हो सकता है।
6. **चयन की समस्या के लिए आवश्यक है कि**– विकास से सम्बन्धित आर्थिक समस्याओं और आवश्यकताओं का चुनाव उचित प्रकार से किया जाए यह निवेश के आबंटन से ही संभव है।
7. **भावी पीढ़ी के कल्याण के लिए**– सरकार की भूमिका एक ट्रस्टी की तरह होती है जो निवेश का आबंटन भावी पीढ़ी के हितों की पूर्ति के लिए लिये करती है, जिससे समाज का कल्याण होता है।

निवेश का मापदंड : एक नियोजित अर्थव्यवस्था में सीमित निवेश के साधनों का समुचित और विवेकपूर्ण तरीके से आबंटन आवश्यक होता है इस विषय पर अपने विचारों को अनेक अर्थशास्त्रियों ने व्यक्त किया है। अलग–अलग अर्थशास्त्रियों ने व्यक्त किया है? अलग–अलग अर्थशास्त्रियों के अलग मापदंड है जिनकी अग्रलिखित व्याख्या की गई है।

1. **पुनर्विनियोजन मापदंड** : पुनर्विनियोजन मापदंड की प्रस्तुतीकरण प्रो. लीबेन्स्टीन और प्रो. गेलेन्सन ने अपने लेख Ecomonic Backwardness and Ecomonic Development में अपने विचारों को व्यक्त किया है इस सिद्धान्त को सीमान्त प्रति व्यक्ति निवेश गुणांक या अतिरिक्त की दर के मापदंड के नाम से भी जाना जाता है।

1. इस मापदंड के अनुसार जितनी अधिक पूंजी का पुनर्विनियोजन किया जाएगा उतना ही अधिक आर्थिक विकास तीव्र होगा।
2. प्रो. लीबेन्सटीन और गलेन्सन के अनुसार प्रति व्यक्ति उत्पादन को भविष्य में उच्चतम किया जाना चाहिए इसके लिए हमें बचतों की दर उच्चतम करना होगा जिससे धन का पुनर्विनियोजन हो सके।
3. पुनर्विनियोजन को बढ़ावा देने लिए लाभ को अधिकतम करना होगा और मजदूरी की मांग को कम करना होगा क्योंकि मजदूरी तो वर्तमान आवश्यकताओं पर व्यय हो जाती है जबकि लाभी की मात्रा को निवेश करने के लिए सम्भाल कर रख लिया जाता है।
4. आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न के माध्यम से राष्ट्रीय आय में लाभों की प्रतिशत वृद्धि और प्रति व्यक्ति उपभोग को नियन्त्रित किया जा सकता है।
5. अतिरिक्त में वृद्धि करने के लिए पूंजी गहन तकनीकों का पक्षपाती होना आवश्यक है। जिससे लाभों का प्रतिशत बढ़ेगा इस लाभों के द्वारा राष्ट्रीय आय का बड़ा अनुपात निवेश के लिए उपलब्ध हो जाएगा।
6. दिए गए परिमाणात्मक और गुणात्मक माप श्रम पूंजी अनुपात ही प्रति व्यक्ति उत्पादन को निश्चित करेगा इसके लिए लीवेन्स्टीन और गलेन्सन ने निम्न सूत्र को व्यक्त किया है–

$$r = \frac{p-e, w}{c}$$

P प्रति मशीन उत्पादकता r = विनियोजन की अतिरेक की अतिरेक दर

e प्रति मशील श्रमिकों की सख्या w = वास्ताविक मजदूरी दर

C प्रति मशीन लागत

टिप्पणी

लीबेन्स्टीन एवं गलेन्सन के अनुसार : पूंजी गहन तकनीक के द्वारा श्रम कर पूंजी से अनुपात प्रति व्यक्ति उत्पादक सम्भावना को और प्रति व्यक्ति विनियोज्य अतिरेक को बढ़ायेगा।

1. प्रो. ओट्टो एकस्टीन के अनुसार : नियोजित निवेश के लिए पुनःनियोजन मापदंड को आपनाने की अपेक्षा आय के वितरण के लिए राजकोषीय नीतियों पर निर्भर रहा जाए जो पुनर्निवेश के लिए बचतों को उपलब्ध करायेगा।
2. यह मापदंड पूंजी के ह्रास की अवहेलना करता है जबकि पूंजी के अधिक प्रयोग से पुनर्निवेश अधिशेष में कमी आ जाती है।
3. यह मापदंड अर्धविकसित राष्ट्रों में सामाजिक हित के उददेश्यों की उपेक्षा करता है पूंजी श्रम तकनीक का प्रयोग रोजगार के अवसरों में कमी करता है आर्थिक असमानताओं का बढना समाज की अवनति करता है।
4. भुगतान शेष प्रतिकूल होगा क्योंकि पूंजी प्रधान तकनीक द्वारा गत वस्तुओं के आयात को बढायेगा तो आयात ज्यादा निर्यात कम होगे।
5. पुनर्विनियोजित मापदंड के कारण सीमान्त उत्पादकता असंतुलित होगी क्योंकि एक सीमा तक तो पूंजी की उत्पादकता बढ़ती है लेकिन बाद में उसमें गिरावट आती जाती है।
6. यह धारणा गलत है कि मजदूरी को उपयोग पर व्यय कर लेते हैं जो श्रम को नहीं देते उस पुनर्विनियोजित कर लिया जाता है।
7. यह मापदंड भविष्य को अधिक महत्व देता है इसलिए प्रजातान्त्रिक राष्ट्रों के अनुकूल नहीं क्योंकि समाज हित की उपेक्षा नहीं की जा सकती।
8. पूंजी श्रम तकनीक को स्वीकारने से कुशल श्रम बल में कमी उद्यमीय योग्यता का अभाव पूंजी की अपर्याप्तता के कारण व्यावहारिक समस्याओं का सामना करना होता है।

2. पूंजी—प्रतिस्थापन मापदंड

इस मापदंड की प्रो. पलिक और प्रो. बुकेनैन ने व्याख्या की है –

1. यह मापदंड उपलब्ध दुर्लभ साधनों के सर्वश्रेष्ठ उपयोग का पक्षपाती है क्योंकि अर्धविकसित देषों में पूंजी की दुर्लभता होती है। इसलिए विशिष्ट तकनीक का चयन करके प्रति इकाई उत्पादन को उच्चतम करने का प्रयास किया जाता है।
2. यह मापदंड विभिन्न परियोजनाओं के साधनों के अनुकूल है जो रोजगार के अवसर में बढोतरी करने में सहायक होता है जिससे अर्धविकसित देशों की आय बढ़ती है और आर्थिक विकास होता है।
3. उत्पादन को अधिकतम करने के लिए पूंजी प्रतिस्थापन दर को बढ़ाना आवश्यक है।

4. यह मापदंड अर्धविकसित देशों के लिए अधिक लाभदायक है।
5. इस मापदंड को आवर्त की दर की कसौटी के नाम से भी जाना जाता है।

आलोचनाएं – इस मापदंड की आलोचनाएं निम्न प्रकार से हैं –

1. निवेश लोचहीनता सम्भव है क्योकि पूंजी की दर अधिक होने से पूंजी की घिसावट दर भी उतनी ही अधिक होगी तो निवेश दर में लोचहीनता अनिवार्य है।
2. श्रम प्रधान परियोजनाओं को आर्थिक विकास की शुरुआती अवस्था में प्रयोग नहीं करना चाहिए वरना उत्पादकता घट जाएगी और आर्थिक विकास में रुकावट होगी।
3. केवल अल्पकाल में ही कम पूंजी प्रधान वाली योजनाओं से रोजगार बढ़ता है। लेकिन दीर्घकाल में तो कम श्रम बल का प्रयोग होगा यदि पूंजी प्रधान योजनाओं पर अधिक बल देते हैं।
4. यह मापदंड पूरक लाभों की अवहेलना करता है क्योंकि कई बार ऐसा भी हो सकता है कि पूंजी उत्पाद अनुपात अधिक होता है, तब हो सकता है कि पूरक लाभ, ऊंची पूंजी की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण हो।
5. समय तत्व की व्याख्या नहीं करता इसकी अवहेलना करता है। हो सकता है कि अल्पकाल में पूंजी उत्पादक कम हो और दीर्घकाल में अधिक।

इस प्रकार यह मापदंड इस बात पर अधिक बल देता है कि श्रम आपूर्ति के अधिक व पूंजी होने से व पूंजी की अपर्याप्तता होने के कारण कम पूंजी प्रधान परियोजनाए चालू करनी चाहिए आधारित संरचना का निर्माण और आर्थिक विकसित दर को बढाने के लिए निवेश नीति का सहारा लेना आवश्यक है।

3. सामाजिक सीमान्त उत्पादकता मापदंड

प्रो. काहन ने सर्वप्रथम 1951 Investment Capital in a Development Programme में और इनके पश्चात प्रो. चैनरी ने 1963 Allocation of investment criterion में सिद्धान्त का प्रतिपादन किया इनका मत था कि सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त के क्रियान्वयन के लिए निवेश का ऑबटन एक आदर्श मार्ग दर्शक है।

1. प्रो. काहन और चैनरी के अनुसार किसी भी परियोजना में दी गई आगतों के साथ–साथ अधिक पूंजी का प्रयोग किया जाता है तो एक बिन्द के बाद उसका सीमान्त उत्पादन गिरने लगता है। यह गिरावट तब तक जारी रहती है जब तक कि पूंजी की सीमान्त उत्पादकता अन्य क्षेत्रों में बराबर नहीं हो जाती है।
2. इस मापदंड का आशय है कि दुर्लभ और सीमित संसाधनों निवेश का बंटवारा इस प्रकार किया जाए कि राष्ट्रीय उत्पाद उच्च हो सके।
3. निवेश का आबंटन देश के विभिन्न क्षेत्रों में और उद्योगों में तरीके से किया जाए कि प्रयोग किये ससांधनों की सामाजिक सीमान्त उत्पादकता बराबर हो जाए।
4. यह मापदंड समग्र अर्थव्यवस्था पर लागू होता है।

5. प्रो. काहन के मतानुसार : यह मापदंड राष्ट्रीय उत्पादन में सीमान्त इकाई के कुल शुद्ध योगदान की व्याख्या करता है तथा उसकी लागतों के उतने हिस्से पर कोई विचार नहीं करता जो निजी उद्यमी को प्राप्त होते हैं।

6. प्रो. चैनरी ने इस मापदंड को समीकरण के रूप में व्यक्त किया है। निवेश परियोजनाओं के चयन के लिए उनकी संख्या, लागत श्रेणी और नगद कोषों के भण्डार पर निर्भर करता है।

$$SMP = \frac{X + E - L - M - 0}{K}$$

SMP = सामाजिक सीमान्त उत्पादकता

X = उत्पादन का बढ़ता हुआ बाजार मूल्य

E = उत्पादन के मूल्यों का योग जो शुद्ध बचतो के कारण प्राप्त होता है।

L = श्रम लागत

M = माल लागत

O = घिसावट सहित उपरिव्यय लागतें

K = निवेशित पूंजी भण्डार

प्रो. चैनरी के अनुसार : अर्धविकसित देशों में विदेशी मुद्रा घरेलू मुद्रा की तुलना में अधिक बहुमूल्य होती है इसलिए विनिमय दर के वास्तविक तथा अधिकृत मूल्य में काफी अन्तर पाया जाता है।

7. दिए गए निवेश का आबंटन ऐसा हो जिससे पूंजी उत्पाद अनुपात न्यूनतम हो।
8. श्रम निवेश अनुपात उच्चतम होना चाहिए जिससे इस पूंजी से अधिकांश श्रमिकों को इस्तेमाल किया जा सके।

आलोचनाएं :

1. यह मापदंड भविष्य में आय वृद्धि पर होने वाले वर्तमान निवेश के गुणक प्रभाव की अवहेलना करता है बल एवं प्रभाव को ही ध्यान में रखता है।
2. दीर्घकाल में संसाधनों की उत्पादकता की गणना करना मुश्किल है क्योंकि अल्पकाल में तो मांग पूर्ति शक्तियों में परिवर्तन के हिसाब से समायोजन कर लेते हैं पर दीर्घकाल में गणना सम्भव नहीं है।
3. उत्पादन की तकनीक निश्चित नहीं होती यह समयानुसार, परिस्थितिवश निवेश की मात्रानुसार बदलता रहता है।
4. सामाजिक उत्पादकता का मापदंड अनिश्चित और अस्पष्ट है क्योंकि भविष्य या वर्तमान दोनों समय के लाभों और लागतों की गणना करना कठिन है। दूसरे बाजार कीमतें साधनों के वितरण की पथ प्रदर्शक नहीं होती है।
5. आर्थिक क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तनों की अवहेलना करता है वैसे भी आर्थिक क्षेत्र में एक दूसरे के परस्पर सम्बन्धित होते हैं। अल्पकाल में हो सकता है कि निवेश के आबंटन को कोई प्रभाव न हो लेकिन दीर्घकाल में यह सम्भव नहीं है।

6. समयतत्व के अन्तर को स्पष्ट नहीं करता जबकि उद्योगों की स्थापना के प्रारम्भ में लागत अधिक, कम उत्पादन, लाभ की दर में वृद्धि धीमी होती है और निवेश की सीमान्त उत्पादकता भी परिवर्तित होती है।

टिप्पणी

7. उत्पादन तकनीक के साथ–2 वर्तमान निवेश के प्रभावों की अवहेलना करता है जनसंख्या की बचत और उपयोग व्यय में होने वाले परिवर्तनों की भी अवहेलना करता है।

4. समय तत्व या काल श्रेणी मापदंड

प्रो. ऐ.के. सेन ने 1967 Some notes on the choice of capital investing in development planning में काल श्रेणी मापदंड को प्रस्तुत किया यह मापदंड एक दी हुई निश्चित समयाविध के अन्तर्गत उत्पादन को उच्चतम करने का प्रयास करता है।

1. प्रो. सेन का मानना है कि आर्थिक विकास की गति को तीव्र करने के लिए केवल निवेश व्यय ही महत्वपूर्ण नहीं होता बल्कि समयावधि भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जिससे परिणामस्वरूप योजनाओं के लाभ प्राप्त होते हैं। इसलिए समय तत्व की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।
2. प्राप्त आंकड़ों का तुलनात्मक अध्ययन करके उस तकनीक के चयन करना चाहिए जो निश्चित समयाविध में उच्चतम लाभ प्रदान करती है।
3. यदि किसी राष्ट्र में दो वैकल्पिक निवेश योजनाओं में श्रम गहन तकनीक और पूंजी गहन तकनीक का चयन करता हो तो बचत की दर पर और पूंजी उत्पाद अनुपात पर एक निश्चित समयावधि में दोनों परियोजनाओं में मिलने वाले वार्षिक प्रतिफल की गणना की जा सकती है।

इस प्रकार किन्हीं दो तकनीकों से पुनः प्राप्ति अवधि ज्ञात की जा सकती है इसलिए तकनीकों के चयन के समय हमें पुनः प्राप्ति अवधि (Period of Recovery) की तुलना करना चाहिए इसके लिए निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिए।

$R = C$ कोई भी तकनीक का चयन सम्भव

$R > C$ तकनीक L का चुनाव करना चाहिए।

$R > C$ तकनीक H का चुनाव करना चाहिए

प्रो. सेन के अनुसार : अर्धविकसित देशों को सदैव पूंजी गहन तकनीकों को प्राथमिकता देनी चाहिए भविष्य के ऊपर वर्तमान का अधिमान छिपा रहता है। यह छोटे निवेश को स्पष्ट करता है।

दीर्घकाल के आयोजन पर उपभोग और रोजगार की भावी विकास दर की गणना की जा सकती है। इस प्रकार भविष्य में पुनर्निवेश के उच्चतम दर को सम्भव बनाने के लिए उपरिपूंजी व्यय के लिए मजदूरी लागतों से अधिक उत्पादन का अतिरेक प्रदान करने की क्षमता होनी चाहिए।

आलोचनाएं : प्रो. सेन ने स्वयं इस मापदंड की आलोचनाएं स्वीकार की हैं।

समय सीमा को निर्धारण का ऐच्छिक होना समयावधि का चयन स्वेच्छा से किया जाता है।

1. निवेश अवधि का निर्धारण तब करना पड़ता है जब समस्याएं उत्पन्न होने लगती हैं जब निवेश की अवधि खत्म होने को हो तो कुल उत्पादन वृद्धि के लिए श्रम गहन तकनीक का प्रयोग किया जाएगा तो पूंजी निर्माण नहीं हो पाएगी।
2. यदि समय श्रेणी को प्रभावित करने वाली तथा मजदूरी की दर तकनीकों परिवर्तन उपभोगता वृद्धि सभी बदल रहे हैं तो भविष्य में निवेश और उत्पादन सम्बन्धी अनुमान गलत होगें।

प्रो. के.एन. प्रसाद के अनुसार : सैन के मापदंड में कोई नवीनता नहीं है। प्रगति काल कम है तो इस मापदंड को साधन उपलब्धता और यदि प्रगति काल अधिक है तो पुनर्निवेश मापदंड के नाम से जाना जा सकता है।

2.6.1 पूंजी – उत्पाद अनुपात

पूंजी–उत्पाद अनुपात से अभिप्राय पूंजी की उन इकाइयों से है जो किसी वस्तु की एक इकाई विशेष को उत्पन्न करने के लिए आवश्यक है। दूसरे शब्दों में पूंजी–उत्पाद अनुपात की धारणा अर्थशास्त्र में अपेक्षाकृत आर्थिक विश्लेषण की एक ऐसी नई विधि है जो इस बात को स्पष्ट करती है कि आय की एक इकाई बढ़ाने के लिए पूंजी की कितनी मात्रा की आवश्यकता होगी। उदाहरण के तौर पर जब यह कहा जाए कि एक अर्थव्यवस्था में पूंजी–उत्पाद अनुपात 3:1 है। तो इसका अर्थ यह होगा कि आय में 1 रुपए की वृद्धि करने के लिए 3 रुपए पूंजी का विनियोग करना आवश्यक है।

संक्षेप में विनियोग और उत्पादन के बीच पाए जाने वाले संबंध को पूंजी –उत्पाद अनुपात कहते हैं।

साधारणतया पूंजी उत्पाद अनुपात दो प्रकार का होता है–

1. औसत पूंजी –उत्पाद अनुपात।
2. सीमांत पूंजी –उत्पाद अनुपात।

औसत पूंजी –उत्पाद अनुपात एक दी हुई अवधि में 'पूंजी ' के विद्यमान स्टॉक और उपलब्ध उत्पादन की मात्रा के परिणामात्मक संबंध को दर्शाता है अर्थात

औसत पूंजी – उत्पाद अनुपात $= \frac{C}{O} \frac{\text{कुल पूंजीगत स्टॉक}}{\text{कलु उत्पादन}}$

सीमांत पूंजी – उत्पाद अनुपात किसी अवधि विशेष में पूंजी के स्टॉक में होने वाली वृद्धि (ΔK) के फलस्वरूप आय में होने वाली वृद्धि (ΔY) के संबंध को बताता है–

अर्थात $\left\{\begin{matrix}\Delta K \\ \Delta Y\end{matrix}\right\} \frac{\text{पूंजी में वृद्धि}}{\text{उत्पादन में वृद्धि}}$

पूंजी उत्पाद अनुपात को निर्धारित करने वाले घटक

पूंजी उत्पाद अनुपात को निर्धारित करने वाले घटक इस प्रकार हैं–

1. **विनियोग की दर**– जब देश में विनियोग की दर ऊंची होती है तो फलस्वरूप तकनीकी व्यवस्था अपेक्षाकृत अच्छी होने लगती है जिससे पूंजी–उत्पाद अनुपात कम हो जाता है। विपरीत होने पर स्थिति विपरीत होगी।

टिप्पणी

2. **विनियोग की प्रकृति**– प्रत्यक्ष अर्थात उपभोक्ता वस्तुओं (कृषि और औद्योगिक क्षेत्र) में अधिक विनियोग करने पर पूंजी–उत्पाद अनुपात कम होगा। इसके विपरित पूंजीगत वस्तुओं और जन–उपयोगी सेवाओं में विनियोग का प्रतिशत अधिक रखने पर पूंजी उत्पाद अनुपात अधिक होगा। उसका कारण यह है कि इन उद्योगों में विनियोगों का प्रतिफल काफी देर बाद प्राप्त होता है।
3. **जनसंख्या का घनत्व**– जनसंख्या का घनत्व अधिक होने पर पूंजी उत्पाद अनुपात कम होगा। इसके विपरीत जनसंख्या का घनत्व कम होने पर यह अधिक होगा।
4. **पूंजी–उपयोग की सीमाएं**– यदि उपलब्ध पूंजीगत साज–सज्जा (मशीनें आदि) का अच्छा और पूर्ण उपयोग हो रहा है तो पूंजी उत्पाद अनुपात कम होता है अन्यथा अधिक होता है।
5. **रोजगार की स्थिति**– यदि देश में बेरोजगारी की स्थिति लगभग शून्य है, तो उपलब्ध पूंजी का इस प्रकार प्रयोग किया जाएगा कि राष्ट्रीय आय में अधिकतम वृद्धि हो सके। ऐसी दशा में पूंजी –उत्पाद अनुपात कम होगा। इसके विपरीत, यदि देश में व्यापक बेरोजगारी विद्यमान है तो आय का अधिकांश भाग लोगों को रोजगार दिलाने में प्रयुक्त होगा जिससे विकास की दर गिर जाएगी और पूंजी उत्पाद कम हो जाएगा।
6. **उपादानों के मूल्यों में परिवर्तन**– उत्पत्ति के साधनों जैसे मजदूरी ब्याज की दर, कच्ची सामग्री आदि के मूल्य में वृद्धि होने से विकास व विनियोग की लागत बढ़ जाती है जिसके फलस्वरूप पूंजी उत्पाद अनुपात ऊंचा होता है।
7. **अन्य कारक**– पूंजी –उत्पाद अनुपात को निर्धारित करने वाले अन्य कारक इस प्रकार हैं– 1. विकास की अवस्था 2. प्राकृतिक साधनों की उपलब्धता 3. प्राविधिक विकास 4. संगठनात्मक कार्य कुशलता 5. मांग का ढांचा 6. शिक्षा व प्रशिक्षण का स्तर 7. आयात–निर्यात नीति।

उच्च पूंजी उत्पाद अनुपात बनाम निम्न पूंजी उत्पाद अनुपात

अर्थशास्त्रियों में इस संबंध में गहरा मतभेद है कि अल्पविकसित देशों में पूंजी उत्पाद अनुपात अधिक होना चाहिए या कम। इस दृष्टि से दिए जाने वाले तर्क निम्न दो प्रकार से दिए जा सकते है–

ऊंची–पूंजी उत्पाद के पक्ष में तर्क

अल्प विकसित देशों में ऊंची–पूंजी उत्पाद के पक्ष में निम्न तर्क दिए जा सकते हैं–

1. इन देशों में पूंजी की कमी के कारण उत्पादन के परंपरागत तरीकों का इस्तेमाल करना पड़ता है। दूसरे शब्दों में, श्रम प्रधान तकनीक अपनाने पर उत्पादन लागत बढ़ जाती है और यह अनुपात स्वतः ही ऊपर उठने लगता है।
2. अल्पविकसित देशों में अकुशल श्रमशक्ति और उत्पादन की पुरानी विधियों के कारण पूंजी का अपव्यय अधिक होता है, फलस्वरूप पूंजी–उत्पाद अनुपात अधिक बना रहता है।

3. अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में तकनीकी ज्ञान का अभाव होता है तथा उत्पादन प्रणाली भी पुरानी तकनीकों पर आधारित तथा दोषपूर्ण होती है। फलतः ऊंचे पूंजी–उत्पाद अनुपात को बनाए रखना आवश्यक है।
4. इन देशों में सामाजिक आधार संरचना का अभाव होता है फलतः यातायात, विद्युत, सड़कें, रेले, आवास, शिक्षा आदि पर भारी मात्रा में खर्च करना पड़ता है, एक तो ये सभी विकास कार्य अधिक पूंजी प्रधान होते हैं, दूसरे इनसे मिलने वाला प्रतिफल भी दर से मिलता है इसलिए पूंजी –उत्पाद अनुपात अधिक रहता है।
5. इन देशों के प्राकृतिक साधनों का पूर्ण विदोहन न हो सकने के कारण पूंजी का अधिक प्रयोग किया जाता है।
6. अल्पविकसित देश जैसे–जैसे विकास की ओर अग्रसर होते हैं लोगों की आय में वृद्धि होने से उनकी मांग में भी परिवर्तन आ जाता है।
7. जिन देशों में प्राकृतिक साधन कम होते हैं वहां इनकी पूर्ति, अतिरिक्त पूंजी द्वारा किये जाने से भी पूंजी –उत्पाद अनुपात बढ़ जाता है।

निम्न पूंजी–उत्पाद अनुपात के पक्ष में तर्क

उपर्युक्त विचार के विपरीत कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि अल्प विकसित देशों में निम्न कारणों से पूंजी उत्पाद अनुपात कम पाया जाता है–

1. इन देशों में अधिक प्राथमिकता लघु व कुटीर उद्योगों को दी जाती है इसलिए पूंजी–उत्पाद अनुपात कम पाया जाता है।
2. पूंजी की कमी के कारण श्रम–प्रधान परियोजनाओं को अधिक महत्व दिया जाता है।
3. अल्पविकसित देशों में जब प्राकृतिक तथा मानवीय साधनों का पूर्ण उपयोग होता है तो प्रारंभ में लागत कम आती है अर्थात बढ़ते प्रतिफल का नियम लागू होता है फलस्वरूप कम पूंजी की आवश्यकता होती है।
4. बेरोजगारी की समस्या को कम करने के लिए इन देशों में श्रम–प्रधान तकनीक अपनाई जाती है। इसलिए श्रम–प्रधान परियोजनाओं में पूंजी उत्पाद अनुपात सदैव कम रहता है।
5. अल्पविकसित देशों में पूंजी का पूर्ण उपयोग न होने के कारण ह्रास की दर कम होती है अर्थात मशीनों की जीवन अवधि अधिक होती है जिससे पूंजी–उत्पाद अनुपात कम बना रहता है।

2.6.2 पूंजी – श्रम अनुपात

पूर्ण रोजगार बनाए रखने हेतु अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त श्रम शक्ति का पूर्ण रोजगार आवश्यक है तथा इस पूर्ण रोजगार से प्रत्येक उद्योग में स्थिर पूंजी श्रम अनुपात के कारण श्रम गहन वस्तु का उत्पादन निश्चय ही बढ़ेगा। चूंकि प्रत्येक वस्तु के उत्पादन में प्रत्येक साधन की न्यूनतम मात्रा प्रयुक्त करनी आवश्यक है अतः पूंजी की स्थिर पूर्ति खपाने हेतु श्रम गहन वस्तु में आवश्यक अतिरिक्त पूंजी, पूंजी गहन वस्तु के उत्पादन से हटायी जायेगी जिसका अभिप्राय यह है कि पूंजी गहन वस्तु का उत्पादन घटेगा।

टिप्पणी

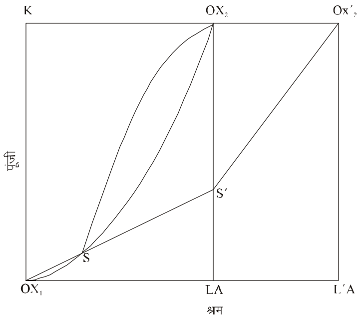

चित्र में OX_1—LA राष्ट्र में उपलब्ध कुल श्रम की मात्रा है तथा OX_1—K कुल पूंजी की मात्रा। OX_1 वस्तु के मूल OX_1 से X_1 वस्तु का उत्पादन मापा गया है तथा OX_2 मूल से X_2 वस्तु का उत्पादन।

मान लीजिए कि OX_1—S—OX_2 अधिकतम कुशलता पथ पर प्रारंभिक उत्पादन बिंदु S है, अतः विस्तार पथ OX_1—S तथा OX_2—S का ढाल क्रमशः X_1 तथा X_2 वस्तुओं के उत्पादन में S बिंदु पर प्रयुक्त पूंजी श्रम अनुपात दर्शाता है। OX_1—S विस्तार पथ OX_2—S विस्तार पथ से कम ढालू है अर्थात् X_1 वस्तु X_2 वस्तु की तुलना में श्रम गहन है। S बिंदु पर X_1 वस्तु का उत्पादन OX_1—S है X_2 वस्तु का उत्पादन OX_2—S है।

मान लीजिए कि इस राष्ट्र में श्रमिकों की पूर्ति में LA—L'A वृद्धि होकर राष्ट्र की कुल श्रम शक्ति OX_1—L'A हो जाती है। चूंकि प्रत्येक वस्तु के उत्पादन में पूंजी श्रम अनुपात पूर्ववत् ही बना रहता है अतः साधन पूर्ति में वृद्धि के पश्चात नया उत्पादन बिंदु S' होगा। नया उत्पादन बिंदु S'_1OX_1—S विस्तार पथ को आगे बढ़ाकर तथा OX'_2—S विस्तार पथ OX_2—S के समानान्तर खींचकर प्राप्त किया गया है। श्रम पूर्ति में वृद्धि के बाद वाले बॉक्स में मात्र S' ही ऐसा बिंदु है जिस पर दोनों वस्तुओं के उत्पादन में पूंजी श्रम अनुपात ठीक नहीं है जो S पर था।

हमारी रेखीय उत्पादन फलन की मान्यता के कारण वस्तु उत्पादन में परिवर्तन को मूल बिंदु में खींचे गए विस्तार पथ पर मापा जा सकता है। चित्र में OX_1—S' दूरी OX_1—S दूरी से अधिक है अतः श्रम साधन की पूर्ति में वृद्धि के परिणामस्वरूप श्रम गहन वस्तु X_1 के उत्पादन में वृद्धि हुई है। इसी प्रकार OX'_2—S' दूरी OX_2—S दूरी से कम है। अतः गहन वस्तु X_2 का उत्पादन घट गया है।

अपनी प्रगति जांचिए

9. पूंजी–प्रतिस्थापन मापदंड को और किस नाम से जाना जाता है?
   (क) आवर्त दर कसौटी (ख) सामाजिक उत्पादकता मापदंड
   (ग) सीमान्त मापदंड (घ) काल–श्रेणी मापदंड
10. के.एन. प्रसाद ने साधन और प्रगति काल की प्रचुरता की स्थिति में काल–श्रेणी मापदंड के लिए क्या नाम दिया है?
   (क) साधन उपलब्धता मापदंड (ख) पुनर्निवेश मापदंड
   (ग) तत्व मापदंड (घ) कोई नहीं

2.7 मानव संसाधन विकास

मानव संसाधन विकास तथा जनसंख्या के स्वरूप व समस्याओं को विस्तारपूर्वक निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

मानवीय संसाधन का स्वरूप

प्राकृतिक साधन किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिए अति महत्वपूर्ण हैं परंतु प्राकृतिक साधन निर्जीव होते हैं और किसी भी देश का आर्थिक विकास उसके मानवीय संसाधन, उनकी योग्यता और कुशलता पर निर्भर करता है। पूंजी, प्राकृतिक साधन, विदेशी सहायता व अंतर्राष्ट्रीय व्यापार आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं परंतु इसमें से कोई भी मानव संसाधन के बराबर नहीं है।

मानवीय संसाधन का तात्पर्य किसी भी देश की जनसंख्या, उसकी शिक्षा, कुशलता, दूरदर्शिता तथा उत्पादकता से होता है। मानवीय शक्ति का अनुमान जनसंख्या के आधार पर नहीं लगाया जा सकता है उसके लिए जरूरी है उनके गुणों को जानना। पूंजी एवं कच्चे माल का समुचित प्रयोग मानव शक्ति द्वारा ही संभव है। उत्पादित वस्तुओं की बिक्री जनसंख्या के आकार एवं उसकी क्रय शक्ति पर निर्भर करती है। जनसंख्या के बढ़ने से मांग बढ़ती है और मांग के बढ़ने से उत्पादन बढ़ता है परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक जनसंख्या का बढ़ना अच्छा है क्योंकि सीमा से अधिक जनसंख्या समस्याएं उत्पन्न करने लगती हैं। बढ़ी हुई जनसंख्या अतिरिक्त उत्पादन का उपभोग कर लेती हैं जिसके कारण अनेक समस्याओं जैसे– बेरोजगारी, निर्धनता, निम्न जीवन स्तर, बचत एवं विनियोग की दर में गिरावट आ जाती है। इसकी वृद्धि से प्रति व्यक्ति खाद्यान्न, चिकित्सा सुविधाएं, शिक्षा एवं अन्य आधारभूत सुविधाओं में कमी आ जाती है अर्थात इन सब बातों का परिणाम आर्थिक विकास पर ऋणात्मक प्रभाव के रूप में दिखाई देता है।

भारत जैसे विकासशील देशों में जनसंख्या वृद्धि एक ज्वलंत समस्या है। देश के अंदर प्राकृतिक साधन और कच्चा माल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है परंतु गरीबी तथा बेरोजगारी के कारण पर्याप्त मात्रा में पूंजी का विनियोग नहीं हो पाता है, उस पर मानव शक्ति की अधिकता हमारे देश के आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न कर रही है।

भारत में मानवीय संसाधन की संरचना एवं विशेषताएं

भारत में मानवीय संसाधनों की संरचना एवं विशेषताओं का अध्ययन इस प्रकार किया जा सकता है–

1. **जनसंख्या आकार एवं वृद्धि दरें**– भारत का भू–क्षेत्र संपूर्ण विश्व का लगभग 2.4% है किंतु उसे विश्व की कुल जनसंख्या के 16.7% भाग का पालन पोषण करना पड़ता है। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में भारत की जनसंख्या 23.6 करोड़ थी जो कि 2001 में (102.7) करोड़ हो गयी। भारत की जनसंख्या वृद्धि दर को चार अवधियों में रखा गया है–

   1891–1921– अवरुद्ध जनसंख्या

   1921–1951– मर्यादित वृद्धि

टिप्पणी

1951–1981– तीव्र ऊंची वृद्धि दर

1981–2011– उच्च वृद्धि परंतु कम होने के स्पष्ट लक्षण।

2. **जन्म एवं मृत्यु दरें**– जनसंख्या की वृद्धि दर जन्म तथा मृत्यु दर पर निर्भर करती है।

   (क) जन्म दर– जन्म दर से अर्थ एक वर्ष में प्रति हजार जनसंख्या के पीछे बच्चों के जन्म से है, भारत में जन्म दर में बराबर कमी होती रहती है। 1910–11 में 49.2 प्रति हजार दर थी जो 1961–71 में 41.7 प्रति हजार हो गई। परिवार नियोजन के कार्यक्रम अपनाने से इसमें कमी हुई जिसके कारण 1990–91 के मध्य 29.5 प्रति हजार रही और अब वर्तमान 2009–10 में 22.5 प्रति हजार हैं। यह दर अब भी अन्य देशों की तुलना में बहुत ऊंची है। औसत जन्म दर ऑस्ट्रेलिया में 15 प्रति हजार, जर्मनी में 10 प्रति हजार, ब्रिटेन में 13 प्रति हजार, अमेरिका में 16 प्रति हजार, कनाडा में 15 प्रति हजार तथा फ्रांस में 13 प्रति हजार है।

   भारत में ऊंची जन्म दर होने का कारण सामाजिक विश्वास, पारिवारिक मान्यता बाल विवाह की अनिवार्यता, ईश्वरीय देन, मनोरंजन साधनों का अभाव, गर्म जलवायु तथा परिवार नियोजन सुविधाओं का ग्रामीण क्षेत्रों में अभाव।

   (ख) मृत्यु दर– मृत्यु दर से अभिप्राय एक वर्ष में प्रति हजार जनसंख्या के पीछे मृत्युओं की संख्या से है। इस दर में काफी कमी आई है। 1911–20 के मध्य 47.7 दर थी जो 1950–51 में 27.4, 1990–91 में 12.5 तथा वर्तमान में 2009–10 में 7.3 है। मृत्यु दर इतनी कम होने के बावजूद अन्य देशों की तुलना में यह दर काफी ऊंची है।

   इसके कम होने के कारण– अकाल तथा महामारियों का कम होना, चिकित्सा सुविधाओं का विस्तार, स्त्रियों की शिक्षा में वृद्धि, विवाह की आयु में वृद्धि, मनोरंजन साधनों का विस्तार, नगरीकरण, अंधविश्वासों का कम होना तथा जीवन स्तर में वृद्धि होना।

3. **जनसंख्या का घनत्व**– किसी क्षेत्र में एक वर्ग किलोमीटर में जितने व्यक्ति रहते हैं वह जनसंख्या का घनत्व कहलाता है। जनसंख्या घनत्व एक देश की कुल भूमि में कुल जनसंख्या का भाग देने पर जो भागफल आता है वह घनत्व होता है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में जनसंख्या घनत्व प्रति वर्ग कि.मी. 382 व्यक्ति है जबकि 1909 की गणना के समय यह केवल 77 था।

4. **भारत में नगरीकरण और आर्थिक विकास**– ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या के प्रवसन से ही नगरीकरण का विकास होता है। भारत की जनसंख्या में भारी वृद्धि होने के साथ–साथ नगरीय जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। 1991 में देश की 25.72% आबादी शहरों में रहती थी और 2001 में यह प्रतिशत बढ़कर 27.78 हो गया।

भारत में जनसंख्या के शहरीकरण संबंधी आंकड़ों से पता चलता है कि सन् 1991 में भारत की शहरी जनसंख्या, कुल जनसंख्या के चौथाई भाग के लगभग

थी जबकि 1921 में नवां भाग तथा 1951 में छठा भाग थी। आंकड़ों से शहरीकरण की एक और प्रवृत्ति सामने आती है। सन् 1921से 2001 के मध्य कुल जनसंख्या में जहां तीन गुना वृद्धि हुई है वहीं शहरी जनसंख्या लगभग 10 गुना बढ़ी है। वर्तमान समय में देश में 10 व्यक्तियों में से तीन व्यक्ति शहर में रहते हैं जबकि 70 वर्ष पहले 9 व्यक्तियों में से एक व्यक्ति शहर में रहता है।

2001 की जनगणना के अनुसार भारत में 6 लाख 38 हजार, 588 गांव व 5,161 शहर हैं। यहां औसत जनसंख्या प्रति शहर 55,291 व प्रति गांव 1,161 है। यद्यपि भारत में नगरीय जनसंख्या बढ़ी है फिर भी विदेशों की तुलना में कम है।

5. **लिंग संरचना**– किसी भी देश की जनसंख्या में स्त्री अनुपात या लिंग अनुपात काफी महत्वपूर्ण होता है जो कि जन्म तथा मृत्यु दर को प्रभावित करता है। हमारे देश में कुल जनसंख्या में पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या कम है। स्त्री–पुरुष अनुपात की गणना 1,000 के आधार पर की जाती है। 2011 की गणना के आधार पर भारत में प्रति 1,000 पुरुषों के पीछे 940 स्त्रियां हैं। स्त्रियों के अनुपात में गिरावट के दो कारण हैं–(क) प्रसव अवस्था में स्त्रियों की मृत्यु दर का ऊंचा होना। (ख) भारत में लड़कियों विशेष रूप से गांवों में लड़कियों के स्वास्थ्य पर ध्यान न देना। भारत के अनेक राज्यों में केवल केरल एक ऐसा राज्य है जहां पर यह अनुपात 1000 पुरुषों पर 1084 स्त्रियां हैं, 2011 की जनगणना के अनुसार भारत का यह अनुपात अन्य देशों से काफी कम है।

6. **आयु संरचना**– किसी भी देश की जनसंख्या में आयु संरचना का महत्वपूर्ण लाभ होता है। आयु संरचना से स्कूल जाने वाली जनसंख्या, श्रम करने वाली जनसंख्या विवाह योग्य तथा मतदाताओं की संख्या का ज्ञान होता है। भारत में 14 वर्ष तक के बच्चों का प्रतिशत 35 है। वर्ष की 7% जनसंख्या 60 आयु या उससे अधिक आयु वाली है। 43% जनसंख्या बच्चों तथा बूढ़ों की है तथा शेष 57% की आयु 15 वर्ष से लेकर 59 वर्ष तक की है।

   भारत में 14 वर्ष तक के बच्चों के प्रतिशत की तुलना में अन्य देशों में यह प्रतिशत कम है जैसे फ्रांस 24.77%, अमेरिका 21.5%, ब्रिटेन 29.6% है।

7. **साक्षरता अनुपात**– जिस देश में साक्षरता अनुपात जितना अधिक होगा उतनी ही उस देश के विकास में सुविधा मिलेगी। यद्यपि भारत में साक्षरता में वृद्धि हो रही है फिर भी अभी स्थिति संतोषजनक नहीं है। 1951 की जनगणना के अनुसार भारत में साक्षरता अनुपात 18.33% था जो 1991 में 52.21% तथा 2011 में 74.04% हो गया है अर्थात 50 वर्षों में साक्षरता चार गुना बढ़ी है। भारत में केरल में सबसे ज्यादा 93.91% साक्षरता है तथा बिहार में सबसे कम 63.82 है।

8. **प्रत्याशित आयु**– प्रत्याशित आयु का अर्थ जीवित रहने की आयु से है जिसे देश के निवासी जन्म के समय आशा करते हैं। अर्थात एक बच्चे की जितने वर्ष तक जीने की आशा की जाती है वह प्रत्याशित आयु या औसत आयु कहलाती है। आज से लगभग 100 साल पहले भारत में प्रत्याशित आयु 24 वर्ष थी और अब लगातार वृद्धि होती जा रही है। भारत की प्रत्याशित आयु अन्य विकसित देशों की तुलना में काफी कम है जैसे जापान 81, स्विट्जरलैंड 80, कनाडा 79, अफ्रीका 77, ब्रिटेन 77 एवं चीन 70 वर्ष है।

टिप्पणी

9. **जनसंख्या का व्यावसायिक वितरण**– जनसंख्या का व्यावसायिक वितरण जनसंख्या के उस अनुपात को बताता है जिसमें जनसंख्या विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में लगी रहती है। कुल जनसंख्या में कार्यशील जनसंख्या का अनुपात विभिन्न देशों से भिन्न है। इसका कारण प्रत्याशित आयु, रोजगार अवसरों की उपलब्धि, कार्य के प्रति जनता का दृष्टिकोण आदि है।

   भारत की कार्यशील जनसंख्या वर्तमान में 39.2% है। यह प्रतिशत पिछले दशकों में घटता बढ़ता रहा। 1901 में कार्यशील जनसंख्या 46.6% थी जबकि 1931 में 42.4% व 1961 में 43% थी।

   अन्य देशों की तुलना में हमारा प्रतिशत 39.2% बहुत कम है जर्मनी की 73%, जापान की 50%, इग्लैंड की 45% तथा फ्रांस की 43% जनसंख्या कार्यशील है।

   भारत में जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है और यह अनुमान लगाया जा रहा है कि प्रत्येक वर्ष 60 लाख व्यक्ति श्रम बाजार में आ जाते हैं। इसके कारण रोजगार के लिए व्यक्तियों की संख्या बढ़ जाती है। इसलिए उद्योग और सेवाओं के क्षेत्र में वृद्धि होनी चाहिए।

भारत में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारण

जनसंख्या में वृद्धि के तीन प्रमुख कारण माने जाते हैं– 1. जन्म 2. मृत्यु 3. देशांतरण।

व्यक्तिगत कारणों एवं राजनैतिक कारणों की वजह से देशांतरण आसानी से नहीं होता है, इसलिए किसी भी देश में जनसंख्या वृद्धि प्रमुखतः जन्म एवं मृत्यु पर निर्भर करती है।

1. ऊंची जन्म दर

जन्म दर से अर्थ एक वर्ष में प्रति हजार जनसंख्या के पीछे बच्चों के जन्म से है। वर्तमान में यह दर 22.5% है जो अन्य देशों से काफी ज्यादा है। ऑस्ट्रेलिया में यह दर 15%, जर्मनी में 10%, ब्रिटेन में 13% व अमेरिका में 16% है।

भारत में ऊंची जन्म दर के कारण– तीन प्रमुख कारण हैं–

(अ) सामाजिक एवं धार्मिक कारण– 1. विवाह की अनिवार्यता, 2. बाल विवाह, 3. धार्मिक एवं सामाजिक अंधविश्वास, 4. संयुक्त परिवार प्रथा, 5. ऊंची प्रजनन दर, 6. स्त्रियों की निम्न सामाजिक स्थिति, 7. मनोरंजन के साधनों का अभाव, 8. निम्न जीवन स्तर, 9. ईश्वरीय देन, 10. पारिवारिक मान्यता।

(ब) आर्थिक कारण– 1. निर्धनता, 2. आयु संरचना, 3. कृषि पर निर्भरता, 4. शरणार्थियों का आगमन एवं विदेशों से भारतीयों को निकाला जाना।

(स) अन्य कारण– 1. गरम जलवायु, 2. शिक्षा का अभाव, 3. ग्रामीण क्षेत्रों में संतान निरोधक सुविधाओं की कमी।

2. घटती हुई मृत्यु दर

भारत में घटती हुई मृत्यु दर के लिए निम्न कारण उत्तरदायी हैं– (क) चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं में सुधार (ख) अकालों एवं महामारियों में कमी (ग) शिशु मृत्यु दर

में कमी (घ) रहन–सहन का उच्च स्तर (ङ) स्त्रियों की शिक्षा में वृद्धि (च) विवाह आयु में वृद्धि (ज) मनोरंजन के साधनों में वृद्धि (झ) अंधविश्वास में कमी (ञ) शहरों में वृद्धि।

टिप्पणी

बढ़ती हुई जनसंख्या भारत की प्रगति में बाधा बन रही है। बढ़ी हुई जनसंख्या बढ़े हुए सभी संसाधनों का प्रयोग कर लेती है अर्थात प्रगति की अपेक्षा जनसंख्या अधिक बढ़ जाती है जिसके कारण प्रगति दिखाई नहीं देती है। प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने कहा था कि "जनसंख्या के तीव्र गति से बढ़ते रहने से आयोजित विकास करना बहुत कुछ ऐसी भूमि पर मकान खड़ा करने के समान है जिसे बाढ़ का पानी बराबर बहाकर ले जा रहा है।"

भारत में जनसंख्या नीति

जनसंख्या नीति से तात्पर्य उस सरकारी मान्यता से है जिसके अनुसार जनसंख्या के आकार एवं संरचना को अपनाया जाता है। इसी उपाय से जनसंख्या को कम या ज्यादा करने के लिए प्रोत्साहित या हतोत्साहित किया जाता है। सभी देशों की परिस्थितियां भिन्न–भिन्न होती हैं इसलिए यह नीति एक जैसी नहीं होती हैं। इसमें समय–समय पर आवश्यकतानुसार परिवर्तन होते रहते हैं।

परिवार नियोजन एवं पंचवर्षीय योजना

इस नीति को और अधिक विस्तृत करने के उद्देश्य से इसका नाम 'परिवार नियोजन' से बदलकर 'परिवार कल्याण' कर दिया है। भारत विश्व में पहला देश है जिसने परिवार नियोजन कार्यक्रम को सरकारी स्तर पर अपनाया है। यद्यपि भारत पहला देश है जिसने 1952 में परिवार नियोजन कार्यक्रम को अपनाया परंतु जनसंख्या वृद्धि पर गंभीर चिंतन तीसरी योजना से करना प्रारंभ किया और जनसंख्या वृद्धि की दर को उचित समय अवधि के अंदर सीमित करने का निर्णय लिया। इसके बाद विभिन्न नीति संबंधी प्रलेखों में लक्ष्य निर्धारित किये गए। निश्चित लक्ष्य और वास्तविक लक्ष्य का सारांश

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात जनसंख्या संबंधी नीति जन्म दर नियंत्रण रखने की रही है और इसी पर बार–बार जोर भी दिया गया है।

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति–2000

देश की राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन सरकार ने 15 फरवरी, 2000 को राष्ट्रीय जनसंख्या नीति की घोषणा की जिसका उद्देश्य था– 1. वर्ष 2045 तक जनसंख्या को स्थिर करना। 2. दो बच्चों के सिद्धांत को अपनाना। 3. जनसंख्या नियंत्रण को बढ़ावा देना और इसके लिए प्रेरित करना।

इस नीति के मुख्य लक्षण निम्न हैं–

1. लोकसभा में संसद सदस्यों की वर्तमान संख्या 543 को वर्ष 2026 तक न बढ़ाया जाए।
2. प्रति 1000 जीवित जन्में बच्चों के लिए शिशु मृत्यु दर को 30 से कम करना।
3. मातृ मृत्यु दर को 1,00,000 जीवित जन्मों के लिए 100 से भी कम करना।
4. सन् 2005 तक जनसंख्या वृद्धि की शून्य दर प्राप्त करना।

टिप्पणी

5. सन् 2010 तक जन्म दर को कम करके 21 प्रति हजार तक लाना।
6. कुल प्रजननता दर (T.F.R) को 2010 तक 2.1 करना।
7. सर्वव्यापक प्रेक्षरण।
8. एड्स (Aids) के बारे में सूचना उपलब्ध करना।
9. संक्रमित रोगों पर प्रतिबंध और नियंत्रण करना।
10. दो बच्चों के छोटे परिवार के मानक को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना।
11. 80% प्रसवों के लिए प्रशिक्षित स्टाफ तथा नियमित डिस्पेंसरियों, अस्पतालों और चिकित्सा संस्थानों का प्रयोग करना।
12. गर्भपात की सुरक्षित सुविधाओं को बढ़ाना।
13. शिशु विवाह पर प्रतिबंध लगाना।
14. लड़कियों की विवाह आयु को 18 वर्ष से बढ़ाकर 20 वर्ष तक करना।
15. ऐसी महिलाएं जो 21 वर्ष की उम्र में विवाह करें तथा दूसरे बच्चों के जन्म के बाद गर्भधारण न करने के उपायों का पालन करें उनको पुरस्कृत किया जाना।
16. गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोग यदि दो बच्चों के बाद नसबंदी करवा लेते हैं तो उनको स्वास्थ्य बीमा उपलब्ध कराना।

राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग का गठन

जनसंख्या नीति के कार्यान्वयन पर निगरानी रखने के लिए प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय आयोग सन् 2000 में गठित किया गया। 11 अप्रैल 2005 को राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग का पुनर्गठन किया गया जिसका अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता है और इसके 40 सदस्य हैं। स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री और योजना आयोग के उपाध्यक्ष इस आयोग के अध्यक्ष हैं। इस गठन का उद्देश्य जनसंख्या को नियंत्रण में रखना है। ऐसी उम्मीद की जा रही है कि सरकार 2045 तक जनसंख्या स्थिरीकरण (Population Stabilisation) के उद्देश्य को प्राप्त कर लेगी।

भारत में जनसंख्या नीति में सुधार के लिए सुझाव

भारत में जनसंख्या नीति को अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई है। आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि केवल 44% दंपत्ति ही परिवार कल्याण नियोजन को अपना रहे हैं। जनसंख्या नीति को प्रभावी बनाने तथा जनसंख्या समस्या से छुटकारा पाने के लिए निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं– 1. शिक्षा सुविधाओं का विस्तार, 2. सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों में वृद्धि, 3. यौन शिक्षा में वृद्धि, 4. नियमों का कठोरता से पालन, 5. गर्भ निरोधक साधनों का मुफ्त वितरण, 6. नसबंदी के बाद देखभाल जिससे मनोवैज्ञानिक संतुष्टि तथा परेशानी का सामना न करना पड़े, 7. परिवार कल्याण केंद्रों की स्थापना, 8. चल चिकित्सालयों में वृद्धि, 9. रेडियो, टेलीविजन, फिल्मों, मेले, नुमायशों के माध्यम से प्रचार करना, 10. कृषि एवं उद्योगों में उत्पादन वृद्धि।

जनसांख्यिकीय संक्रमण सिद्धांत

जनसांख्यिकीय संक्रमण सिद्धांत (Theory of Demographic Transition) के अनुसार प्रत्येक देश की जनसंख्या को तीन अवस्थाओं से निकलना पड़ता है। ये निम्न हैं–

टिप्पणी

1. **ऊंची जन्म एवं मृत्यु दर**– प्रथम अवस्था में जन्म एवं मृत्यु दोनों ही दरें ऊंची होती हैं, इसलिए जनसंख्या स्थिर रहती है। अल्पविकसित देशों में आय तथा जीवन स्तर नीचा होता है। संतुलित भोजन का अभाव, चिकित्सा सुविधाओं का प्राप्त न होना, आवास व्यवस्था, अशिक्षित होना, अंधविश्वास आदि के कारण मृत्यु दर ऊंची होती है तथा जन्म दर को ऊंची करने में आर्थिक एवं सामाजिक कारण उत्तरदायी होते हैं।
2. **मृत्यु दर कम एवं जन्म दर ऊंची**– द्वितीय अवस्था में आर्थिक विकास की प्रक्रिया के प्रारंभ हो जाने के कारण मृत्यु दर कम हो जाती है परंतु राष्ट्रीय आय के बढ़ने से प्रति व्यक्ति आय बढ़ जाती है, चिकित्सा सुविधाएं बढ़ जाती हैं। संतुलित आहार की सुविधा प्राप्त हो जाती है, अकाल कम तथा भुखमरी दूर हो जाती है, इन सभी के कारण मृत्यु दर कम हो जाती है, परंतु जन्म दर वैसी ही बनी रहती है क्योंकि रीति–रिवाज, धार्मिक विश्वास, शिक्षा के प्रति व्यक्तियों का दृष्टिकोण परिवर्तित नहीं होता है। इस अवस्था में जन्म दर 35 से 40 प्रति हजार तथा मृत्यु दर लगभग 15 प्रति हजार हो जाती है यानी जनसंख्या 2% से अधिक दर से बढ़ने लगती है। यह अवस्था जनसंख्या विस्फोट की अवस्था कहलाती है। भारत इसी अवस्था में चल रहा है।
3. **नीची जन्म एवं मृत्यु दर**– जब किसी भी देश में औद्योगीकरण एवं शहरीकरण एक साथ चलने लगते हैं तो वहां जन्म दर में कमी आ जाती है। पश्चिमी देश इस बात का उदाहरण है। औद्योगीकरण और शहरीकरण से जन्म दर के नीचे आने के कारण–शिक्षा का बढ़ना, धार्मिक अंधविश्वास कम होना, वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाना, परिवार नियोजन की जानकारी रखना है। आर्थिक विकास के बढ़ने से महिलाएं भी घर से बाहर निकलकर कार्य करना प्रारंभ कर देती हैं जिससे उत्पादकता बढ़ती है, प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है, रहन–सहन का स्तर ऊंचा होता है और जन्म दर कम हो जाती है यानी आर्थिक विकास के साथ–साथ सामाजिक जीवन में होने वाले परिवर्तन जन्म दर को कम करते हैं। कोई भी देश जब इस अवस्था को प्राप्त कर लेता है तो जनसंख्या विस्फोट की अवस्था से बाहर निकल जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए

11. भारत की जनसंख्या में मर्यादित वृद्धि दर की अवधि कब से कब तक वर्गीकृत की गई है?

    (क) 1891–1921 (ख) 1921–1951

    (ग) 1951–1981 (घ) 1981–2011

12. फरवरी 2000 को घोषित 'राष्ट्रीय जनसंख्या नीति' का क्या उद्देश्य था?

    (क) जनसंख्या स्थिर करना (ख) दो बच्चों का सिद्धांत अपनाना

    (ग) जनसंख्या नियंत्रण को बढ़ावा देना (घ) सभी

2.8 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

टिप्पणी

1. (घ)
2. (क)
3. (ख)
4. (ग)
5. (क)
6. (ग)
7. (ख)
8. (घ)
9. (क)
10. (ख)
11. (ख)
12. (घ)

2.9 सारांश

स्मिथ के अनुसार : कृषि क्षेत्र के विकास होने पर भी निर्माण कार्यों और वाणिज्य में भी वृद्धि होती है। कृषि क्षेत्रों में यदि अधिशेष प्राप्त होता है तो निर्मित वस्तुओं और सेवाओं की मांग बढ़ती है जिससे निर्माणकारी उद्यमों की स्थापना होती है। साथ ही कृषि का विकास होता है। उत्पादन में वृद्धि होती है उत्पादन तकनीक की विधियां प्रयोग में लायी जाती हैं। इसलिए पूंजी संचय में वृद्धि के साथ विकास भी बढ़ता जाता है।

एडम स्मिथ ने इस संबंध में किसान, व्यापारियों और उत्पादकों को विकास के एजेन्ट कहा है क्योंकि पूंजी संचय, विकास इन्हीं के द्वारा किया जा सकता है जिसके कारण आर्थिक विकास तीव्र गति से बढ़ता है।

कार्ल मार्क्स ने आर्थिक विकास के विचारों को अपनी पुस्तक "DAS CAPITAL" में प्रस्तुत किया है। उनके विचारों का समाज पर इतना प्रभाव पड़ा कि बहुत लोग उनके अनुयायी बन गए और अपने सिद्धांतों के कारण उन्हें ईसा मसीह की तरह स्थान प्राप्त होने लगा। मार्क्स ने भविष्यवाणी की थी कि पूंजीवाद का अंत निश्चित है इसी आधार पर साम्यवाद का आरंभ हुआ। यद्यपि मार्क्स कोई अर्थशास्त्री नहीं था और उसके विचारों में दर्शनशास्त्र का भी प्रभाव दिखाई देता है। हम यहां मार्क्स के आर्थिक विकास के सिद्धांत का अध्ययन करेंगे। मार्क्स का विकास का सिद्धांत कुछ ऐसी मान्यताओं से संबंधित है जिसमें उत्पादन प्रक्रिया पूंजी संचय और प्रद्योगिकीय प्रगति सम्मिलित है साथ ही यह सिद्धांत समाज के गत्यात्मक व्यवहार का भी अध्ययन करता है।

टिप्पणी

मार्क्स का सिद्धांत प्रत्यक्ष रूप से अल्पविकसित देशों के लिए लाभकारी नहीं है परंतु मार्क्स का योजनाबद्ध तरीके से किया गया विकास अल्पविकसित देशों के लिए विकास मार्ग दिखाता है क्योंकि यदि समाज के वर्गों में संघर्ष की भावना घर कर गई तो निश्चित रूप से श्रमिकों का एकाधिकारी जो जाएगा इसलिए योजनाबद्ध तरीके से किया गया विकास ही पिछड़े देशों के विकास में सहायक होगा।

शुम्पीटर पूंजीवादी प्रणाली के पक्षधर थे, उनका पूरा सिद्धांत आर्थिक विकास की प्रक्रिया की कैसे व्याख्या की जाए पर आधारित है। शुम्पीटर की अवधारणा के मुख्य बिंदु नव प्रवर्तन और उद्यमी है जो आर्थिक विकास की प्रक्रिया में दो शक्तिशाली उपकरण की तरह प्रयोग किये गए हैं।

अमेरिकन अर्थशास्त्री प्रो. डब्ल्यू डब्ल्यू रोस्टोव ने आर्थिक विकास की अवस्थाओं का सबसे वैज्ञानिक व तर्कपूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उन्होंने ऐतिहासिक आधार पर यह बताने का प्रयास किया है कि एक राष्ट्र किस प्रकार अविकसित अर्थव्यवस्था से विकसित अर्थव्यवस्था को प्राप्त करता है।

अर्धविकसित देशों में उत्पादन योग्यता साधन सीमित होते हैं। उनका बंटवारा एक समस्या है। साधनों का आबंटन अव्यवस्थित तरीके से नहीं किया जा सकता। आर्थिक विकास की वृद्धि के लिए आवश्यक है कि निवेश का आयोजन सुविचारित और समय पर होना चाहिए ताकि अधिकतम प्रतिफल प्राप्त किये जा सके वास्तव में साधनों के उपयोग, विवेकपूर्ण बंटवारा और विनियोग की नीतियों पर किसी अर्थव्यवस्था का विकास निर्भर करता है।

मानवीय संसाधन का तात्पर्य किसी भी देश की जनसंख्या, उसकी शिक्षा, कुशलता, दूरदर्शिता तथा उत्पादकता से होता है। मानवीय शक्ति का अनुमान जनसंख्या के आधार पर नहीं लगाया जा सकता है उसके लिए जरूरी है उनके गुणों को जानना। पूंजी एवं कच्चे माल का समुचित प्रयोग मानव शक्ति द्वारा ही संभव है। उत्पादित वस्तुओं की बिक्री जनसंख्या के आकार एवं उसकी क्रय शक्ति पर निर्भर करती है। जनसंख्या के बढ़ने से मांग बढ़ती है और मांग के बढ़ने से उत्पादन बढ़ता है परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक जनसंख्या का बढ़ना अच्छा है क्योंकि सीमा से अधिक जनसंख्या समस्याएं उत्पन्न करने लगती हैं। बढ़ी हुई जनसंख्या अतिरिक्त उत्पादन का उपभोग कर लेती हैं जिसके कारण अनेक समस्याओं जैसे– बेरोजगारी, निर्धनता, निम्न जीवन स्तर, बचत एवं विनियोग की दर में गिरावट आ जाती है। इसकी वृद्धि से प्रति व्यक्ति खाद्यान्न, चिकित्सा सुविधाएं, शिक्षा एवं अन्य आधारभूत सुविधाओं में कमी आ जाती है अर्थात इन सब बातों का परिणाम आर्थिक विकास पर ऋणात्मक प्रभाव के रूप में दिखाई देता है।

2.10 मुख्य शब्दावली

- **प्रोजेक्ट** : परियोजना।
- **मौद्रिक** : मुद्रा सम्बन्धी।

- **साख** : जमा धन
- **नवप्रवर्तन** : नयापन

टिप्पणी

2.11 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. एडम स्मिथ ने अपने आर्थिक विकास के सिद्धांत में ब्याज का निर्धारण किस प्रकार किया है?
2. मार्क्स के विकास सिद्धांत को किन–किन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है? नामोल्लेख करें।
3. शुम्पीटर ने प्रेरित और स्वायत्त निवेश में किस प्रकार अन्तर स्पष्ट किया है?
4. कार्ल मार्क्स ने आर्थिक विकास की किन–किन अवस्थाओं का प्रतिपादन किया है?
5. जनसंख्या घनत्व का क्या तात्पर्य है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. एडम स्मिथ के विकास सिद्धांत की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. शुम्पीटर के आर्थिक विकास सिद्धांत का विश्लेषण कीजिए।
3. प्रो. रोस्टोव के द्वारा प्रतिपादित आर्थिक विकास की अवस्थाओं के सिद्धांत की समीक्षा कीजिए।
4. अल्पविकसित देशों में मंद औद्योगीकरण के कारणों की गवेषणा कीजिए।
5. भारत में मानव संसाधन की संरचना एवं प्रबंधन पर प्रकाश डालिए।

2.12 सहायक पाठ्य सामग्री

M L Jhingan. *Economics of Growth and Development.*

Hayami Y. *Development Economics,* Oxfor University Press.

Karpagam M. *Environmental Economics.*

योगेश शर्मा, 'पर्यावरण एवं मानव संसाधन विकास', पॉइन्ट पब्लिशर, जयपुर।

वी.सी. सिन्हा, 'विकास एवं पर्यावरणीय अर्थशास्त्र', एस.बी.पी.डी. पब्लिशर हाउस, आगरा।

पी.सी.त्रिवेदी / गरिमा गुप्ता, 'पर्यावरण अध्ययन', आविष्कार पब्लिकेशन, जयपुर।

दीप्ति शर्मा / महेन्द्र कुमार, 'पर्यावरण एवं संविकास', अर्जुन पब्लिशिंग, दिल्ली।

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी के नवीनतम प्रकाशन

इकाई 3 संतुलित बनाम असंतुलित विकास

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 संतुलित और असंतुलित विकास की अवधारणा
3.3 रोडान सिद्धांत
3.4 ए. लुईस सिद्धांत
3.5 हर्षमैन सिद्धांत
3.6 लीबिंसटीन सिद्धांत
3.7 गुन्नार मिर्डल सिद्धांत
3.8 हैरोड–डोमर मॉडल
3.9 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.10 सारांश
3.11 मुख्य शब्दावली
3.12 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.13 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

आर्थिक संवृद्धि और विकास के दूसरे भाग में हमने विकास की ओर उन्मुख उन सिद्धांतों का वर्णन किया है जिनके माध्यम से अर्द्धविकसित देशों में संसाधनों के कुशलतम प्रयोग की दिशा निर्धारित की जा सकती है और साथ ही यह जाना जा सकता है कि आर्थिक विकास को कैसे तीव्रतर किया जाए, संतुलित विकास कैसे करें। इन सबके लिए आर्थर लुईस, रोजेन्स्टीन रोडान आदि अर्थशास्त्रियों के विचारों को उद्धृत किया गया है। ये सभी अर्थशास्त्री औद्योगीकरण को बढ़ावा देने के लिए उत्पादन की कुशलतम विधियों का प्रयोग कर निर्माण उद्योगों के क्रम को जारी रखने के पक्ष में हैं जिनसे विभिन्न आर्थिक क्रियाओं में संतुलन रखा जा सकता है। विकास की गति इतनी तीव्र होनी चाहिए कि देश निर्धनता के चक्रव्यूह से बाहर आ सके। इसके लिए न्यूनतम लागत, न्यूनतम प्रयास करके भी विकास का निर्देश है। प्रो. लीबिंसटीन का मानना है कि विकास के कार्यक्रमों का सफलतापूर्वक क्रियान्वयन करने के लिए संसाधनों का न्यूनतम मात्रा में प्रयोग करना चाहिए जिससे अर्थव्यवस्था भी आत्मनिर्भरता के स्तर पर आ जाए। वहीं प्रो. रोडान ने इस बात पर बल दिया है कि अर्द्धविकसित देशों में पिछड़ेपन की जंजीरों को तोड़ने के लिए बड़े पैमाने पर निवेश की आवश्यकता है। इसलिए विकास प्रक्रिया में आने वाली बाधाओं से बाहर निकलते हुए, देश को प्रगतिशील बनाने के लिए बड़े धक्के के सिद्धांत में एक ऐसी व्यूह रचना तैयार की कि अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का विकास न करके कम से कम कुछ ही क्षेत्रों का विकास हो। क्योंकि अर्द्धविकसित देश में संगठन की अकुशलता, प्रबन्ध की अयोग्यता और पूंजी की अपर्याप्तता के कारण शीघ्र विकास संभव नहीं हो पाता। इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुए प्रो. आर. आर. नेल्सन के निम्न संतुलन पाश सिद्धांत की व्याख्या की गई है जिसमें

टिप्पणी

राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर में, वृद्धि करके पूंजी निर्माण को बढ़ाने का प्रयास किया गया है। लेकिन जब जनसंख्या वृद्धि दर ऊँची हो जाएगी तो वह अर्थव्यवस्था को पीछे की ओर धकेलेगी जिससे प्रति व्यक्ति आय कम होगी व अर्थव्यवस्था स्थिर साम्य स्तर पर पहुँच जाएगी।

हैरोड डोमर द्वारा एक निर्बाध हस्तक्षेपरहित अर्थव्यवस्था की दशाओं की व्याख्या की गई है जिससे बंद अर्थव्यवस्था में भी निवेश प्रक्रिया को प्रोत्साहित करके राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- अर्थव्यवस्था के संतुलित और असंतुलित विकास की अवधारणा को समझ पाएंगे;
- रोडान के 'बड़े धक्के का सिद्धांत' का समीक्षात्मक अध्ययन कर पाएंगे;
- ऑर्थर लुईस के द्विक्षेत्रीय अर्थव्यवस्था के सिद्धांत को समझ पाएंगे;
- हर्षमैन की 'असंतुलित विकास की ब्यूहरचना' से अवगत होंगे;
- लीबिंसटीन के न्यूनतम प्रयत्न सिद्धांत से परिचित होंगे;
- गुन्नार मिर्डल के सिद्धांत से अवगत होंगे;
- हैरोड–डोमर के विकास मॉडलों की समीक्षा कर पाएंगे।

3.2 संतुलित और असंतुलित विकास की अवधारणा

संतुलित विकास का सिद्धान्त मुख्य रूप से रगनार नर्क्से और आर्थर लुईस, रोजेन्स्टीन रोडान के विकास सिद्धान्तों का समर्थन करता है। इसके लिए सभी अर्थशास्त्रियों ने अपने–अपने तरीके से संतुलित विकास की अवधारणा को प्रतिपादित किया है।

1. **संकुचित दृष्टिकोण** – रोजेन्स्टीन रोडान ने 1943 में एक लेख "पूर्वी और दक्षिणी पूर्वी यूरोप के औद्योगीकरण की समस्याएं" में संतुलित विकास के संकीर्ण विचारों को प्रस्तुत किया उनका विचार था कि उत्पादन की कार्य कुशल विधियों का प्रयोग करने के बाद भी एक उद्यमी अकेला उद्योग के चलाने में असमर्थ होता है। इसलिए उद्योग के विकास के लिए विभिन्न उपभोक्ता वस्तुओं के निर्माण के उद्योगों का सिलसिला जारी करना शुरू किया जाना चाहिए जिससे सामाजिक दृष्टिकोण से उद्योगों की यह पूरकता लाभदायक निवेश की ओर अग्रसर हो सके। इसका तात्पर्य है कि एक उद्यम में कार्य करने वाला श्रमिक अपनी आय में से उन उद्यम में उत्पादित वस्तुओं को ही नहीं खरीदेगा बल्कि अपनी आय का अन्य उपभोक्ता वस्तुओं पर भी व्यय करेगा जिससे सभी उद्योगों का विकास होगा। बाजार का आकार बड़ा होगा, रोजगारों का सृजन होगा, जिससे क्रय शक्ति में वृद्धि होगी।
2. **द्वितीय विचार धारा** – यह सिद्धान्त उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योगों में और सामाजिक उपरि पूंजी में एक साथ निवेश का समर्थन करता है। अल्पविकसित

देशों के लिए यह अनिवार्य तत्व है क्योंकि उन राष्ट्रों में आधारभूत संरचना का अभाव होता है।

3. **व्यापक विचारधारा** – यह विचार इस बात पर बल देता है कि उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र, पूंजीगत वस्तु क्षेत्र और सामाजिक उपरिपूंजी को एक साथ संगठित किया जाए जिससे औद्योगीकरण तीव्र हो, बाजार विकसित हो, उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जा सके।
4. **चतुर्थ विचारधारा** – यह सिद्धान्त उद्योगों और कृषि क्षेत्रों के संतुलित वृद्धि का पक्षपाती है। यह दोनों क्षेत्रों के बाजार को विकसित करेगा।

उपर्युक्त विश्लेषण यह स्पष्ट करता है सभी अर्थशास्त्रियों की यह मान्यता है कि अल्पविकसित राष्ट्रों का विकास तीव्रता से होना चाहिए जिससे निर्धनता के खतरनाक चक्रव्यूह से बाहर आया जाए। इसके लिए यह तरीका है कि विकास की दर को बढ़ाने के लिए कम प्रयास, कम लागत, कम पूंजी का प्रयोग करना पड़े इस उद्‌देश्य की प्राप्ति के लिए सन्तुलित विकास आवश्यक है।

संतुलित विकास का अर्थ – संतुलन का अर्थ है → 'समान' इस प्रकार विकास का तात्पर्य है अर्थव्यवस्था की विभिन्न आर्थिक क्रियाएं जैसे आय–व्यय वितरण में संतुलन रखना।

रेडावे के अनुसार : ''संतुलित विकास का अर्थ अर्थव्यवस्था में उत्पादन उपभोग, निवेश के बीच साम्य स्थापित करना।''

संतुलित विकास की परिभाषा

1. प्रो. लुईस के विचार : सभी राष्ट्रों की अर्थव्यवस्थाओं के विकास के लिए सभी क्षेत्रों जैसे प्राथमिक और द्वितीय क्षेत्र से निर्यात और घरेलू उपभोग क्षेत्रों के मध्य एक साथ और समान दर पर विकास के बीच संतुलन स्थापित किया जाए।
2. प्रो. घोष के अनुसार : अर्थव्यवस्था के समस्त क्षेत्रों और आर्थिक क्रियाओं आय व्यय और निवेश में एक ही दर से विकास हो।
3. संतुलित वृद्धि का अर्थ राष्ट्रों के आर्थिक क्रियाकलाओं में संयोजन स्थापित करना जिससे एक साथ तीव्र गति से, अर्थव्यवस्था की क्रियाओं जेसे उपभोग, उत्पादन वितरण में वृद्धि प्राप्त हो।
4. संतुलित विकास का अर्थ – ''अर्थव्यवस्था के विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों में एक ही अनुपात में और एक साथ विकास करना।''

इस प्रकार उपर्युक्त लिखित विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि संतुलित विकास के लिए निम्न महत्वपूर्ण तत्वों का होना आवश्यक है–

(i) उपभोक्ताओं की मांग में विस्तार
(ii) सामाजिक उपरिनिवेश में संतुलन
(iii) उपभोग जन्य वस्तुओं और पूंजीगत वस्तुओं की उत्पादक क्रियाएं
(iv) पूंजीगत वस्तुओं के उद्योगों के बीच (जिनमें अन्तिम वस्तुओं मध्यवर्ती वस्तुओं और कच्चे माल) साम्य स्थापित करना।

टिप्पणी

संतुलित विकास की विशेषताएं

1. रोजगार के अवसरों में वृद्धि
2. श्रम विभाजन की कुशलता
3. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा
4. बाजार का विस्तार करना
5. सामाजिक लाभ में वृद्धि
6. दरिद्रता के दुष्चक्र का अन्त करना।

संतुलित विकास के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या (Criticism of the Theory of Balance Growth) : संतुलित वृद्धि सिद्धान्त की अनेक आलोचकों जैसे प्रो. हर्षमैन, फ्लेमिंग सिंगर, कुरिहारा, रूगीना ने अपने–अपने तरीके से आलोचना की।

1. **साधनों में विषमता :** विभिन्न अल्पविकसित देशों में साधनों में विषमता होती है किसी देश में पूंजी तथा योग्य उद्यमी की कमी है किसी देश में श्रम की बहुतायता है। इसलिए संतुलित विकास में ये एक बड़ी समस्या है।
2. **वर्धमान प्रतिफल के नियम की मान्यता सही नहीं है :** यह नियम पहले से ही मान लेता है कि संतुलित विकास के लिए वर्द्धमान प्रतिफल का नियम लागू होता है। पर ऐसा नहीं है, क्योंकि वृद्धि नियम के कारण अल्पविकसित राष्ट्र एक ही क्षेत्र का विकास नहीं करना चाहेगा। अन्य क्षेत्रों जैसे तेल के कारखानों, स्टील प्लांट आदि को भी चुनना पड़ेगा।
3. **साधनों की दुर्लभता :** साधनों की दुर्लभता को कैसे कम करें? यह भी एक समस्या है।

   प्रो. जे.बी. से के अनुसार : पूर्ति अपनी मांग स्वतः ही उत्पन्न कर लेती है।'' उत्पादन के साधनों में पूंजी एक ऐसा साधन है जिसकी उत्पत्ति नहीं की जा सकती। यदि एक साथ कई–कई उद्यामों में पूंजी निवेश करना हो तो साधनों की मांग में प्रतिस्पर्धा होगी साधनों की पूर्ति बेलोचदार होगी। यह सिद्धान्त गलत सिद्ध हो जाता है।

   प्रो. सिंगर, नर्क्से की धारणा को गलत सिद्ध करते हुए कहते हैं यदि उपलब्ध साधनों के माध्यम से, उपलब्ध श्रम शक्ति का प्रयोग करके पूंजी स्टॉक में वृद्धि करने का प्रयास किया जाएगा तब भी पूंजी वृद्धि के स्टॉक के आबँटन की समस्या रहेगी।
4. **अल्परोजगार की धारणा केवल विकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए है –** क्योंकि अल्प विकसित देशों में मशीनों, उद्यमियों का अभाव होने के कारण एक साथ बड़े पैमाने पर निवेश नहीं किया जा सकता। अल्प विकसित देशों में आर्थिक क्रियाएं स्थित होती हैं। आधरभूत संरचना का पूंजी मानव पूंजी का पर्याप्त मात्रा में नहीं पायी जाती है।
5. **विकास के लिए असफल :** यह सिद्धान्त केवल विकास की एक अवस्था से दूसरी अवस्था में प्रवेश को ही समझाता है वह विकास की उच्चतर दर को दर्शाता है। इसलिए यह केवल विकास का दोहरा प्रतिमान है।

टिप्पणी

6. **विकास** : ऐतिहासिक दृष्टिकोण का आधार गलत है : ऐतिहासिक रूप से संतुलित नहीं बल्कि अपर्याप्तता रुकावटों, बाधाओं के कारण ही विकास की सम्भावनाएं उत्पन्न होती हैं और नये–नये आविष्कारों का जन्म होता है लेकिन यदि संतुलित वृद्धि पर अर्थव्यवस्थाएं निर्भर करती हैं तो वे विकास को प्रोत्साहन न देकर उनका अन्त कर देती है। इसलिए विकास का आधार असंतुलित विकास ही हो सकता है।
7. **आर्थिक दृष्टि से अलाभकारी** : एक साथ बहुत उद्योगों की स्थापना करने से मौद्रिक और वास्तविक लागतें बढ़ जाती हैं जिससे आर्थिक रूप से लाभ नहीं मिलता इसलिए श्रम कुशलता, वित्त का प्रभाव, कच्चे माल की अपर्याप्तता के कारण संतुलित विकास नहीं हो पाता।
8. **आवश्यक कुशलता एवं पर्याप्त साधनों का अभाव** : यदि अल्पविकसित राष्ट्रों में आवश्यक कौशल और पर्याप्त साधना होगें तो वह शुरू से ही अविकसित नहीं होगा। उद्यमियों को एक साथ योग्य और कुशलत नहीं बना सकते इसके लिए बहुत ज्यादा परिश्रम और विवेक, कौशल की आवश्यकता होती है।

असंतुलित वृद्धि की अवधारणा को हर्षमैन की असंतुलित विकास की व्यूहरचना (Hirschman Strategy of Unbalanced Grwoth) के नाम से जाना जाता है यद्यपि असंतुलित विकास के सिद्धान्त के प्रस्तुतीकरण का श्रेय अल्बर्ट ओ. हर्षमैन हंस सिंगर, मैकरस फ्लैमिंग और पॉल स्ट्रीटन को जाता है लेकिन प्रो. हर्षमैन ने असंतुलित वृद्धि सिद्धान्त का निरूपण सन्तुलित ढंग से किया। प्रो. हर्षमैन का यह सिद्धान्त सन्तुलित वृद्धि के सिद्धान्त से बिल्कुल अलग है इनका मानना है कि राष्ट्र के सभी क्षेत्रों में विकास न करके केवल कुछ ही क्षेत्रों का विकास किया जाना चाहिए क्योंकि अल्पविकसित देशों में पूँजी की अपर्याप्तता, श्रमिक और संगठन की अकुशलता और प्रबन्ध की अयोग्यता और संगठन का अभाव होता है जिसके कारण विकास तीव्र गति से नहीं हो पाता इसलिए अर्थव्यवस्था के कुछ ही क्षेत्रों में निवेश करना चाहिए जिससे विकास की गति को तीव्र किया जा सके। विकास में तीव्रता के कारण उद्योग को आन्तरिक और बाह्य बचतें प्राप्त होती हैं जिससे अन्य क्षेत्रों का विकास स्वतः ही हो जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. "संतुलित विकास का अर्थ है अर्थव्यवस्था में उत्पादन, उपभोग, निवेश के बीच साम्य स्थापित करना।" अर्थव्यवस्था के विषय में यह कथन किसका है?

   (क) रेडावे (ख) लुईस

   (ग) रोजेन्स्टीन (घ) मिर्डल

2. निम्न में से कौन–सा कारक संतुलित आर्थिक विकास के मार्ग में बाधक है?

   (क) रोजगार में वृद्धि (ख) मांग में विस्तार

   (ग) सामाजिक लाभ में वृद्धि (घ) अल्पविकसित देशों में साधनों की विषमता

टिप्पणी

3.3 रोडान सिद्धांत

प्रो. रोजेस्टीन रोडान ने अपने लेख, बड़े धक्के का सिद्धान्त (Notes on the Theory of Big Push) में इस बात पर बल दिया है कि अल्पविकसित देशों में पिछड़ेपन की बेड़ियाँ तोड़ने के लिए बड़े पैमाने पर निवेश करना आवश्यक है जिससे आर्थिक विकास में वृद्धि की जा सके। बड़े धक्के का प्रतिपादन प्रो. पी.एन. रोजेन्स्टीन रोडान के द्वारा किया गया। अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के विकास में आने वाली बाधाओं से बाहर निकलते हुए और उसे प्रगतिशील बनाने के लिए बड़े सिद्धान्त की व्यापक विवचेना की जिसमें कहा गया कि यदि विकास के कार्यक्रम को तीव्रता से सफल बनाना है तो संसाधनों के इष्टतम बिन्दु तक उनका प्रयोग करना चाहिए। प्रो. रोजेन्स्टीन के अनुसार इस बात की अवधारणा है कि विकास नीतियों को धीरे–धीरे अपनाने की बजाय बड़े धक्के से ही शीघ्रातिशीघ्र विकास किया जा सकता है। यदि इन देशों को बड़े पैमाने के लाभ प्राप्त करने है तो बड़े पैमाने पर उत्पादन कार्यक्रम को आरम्भ करना चाहिए साथ ही विनियोग को भी बड़े पैमाने पर किया जाना चाहिए। अर्थव्यवस्था की स्थिरता और गतिहीनता को दूर करने के लिए न्यूनतम प्रयत्न के बड़े धक्के की आवश्यकता है इसलिए एक साथ कई योजनाओं का क्रियान्वयन किया जाना चाहिए यह सिद्धान्त इस बात पर निर्भर करता है कि अर्थव्यवस्था में किस प्रकार के विकास को किस गति से क्रियान्वित किया जाए। आत्मनिर्भरता की अवस्था को प्राप्त करने के लिए किसी भी अल्पविकसित अर्थव्यवस्था को बहुत प्रयास की आवश्यकता है। इस प्रकार यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि धीमी–धीमी गति से चलने से अर्थव्यवस्थाओं की रुकावटों को दूर नहीं किया जा सकता बल्कि अर्थव्यवस्था को गतिशील बनाये रखने के लिए एक अनिवार्य और न्यूनतम मात्रा में विनियोग करने की आवश्यकता है जिससे अर्थव्यवस्था को स्थिर अवस्था में एक झटके से बाहर निकाला जा सके। इसके लिए बाह्य बचतों को प्राप्त करना अनिवार्य हैं बाह्य बचतें तभी प्राप्त हो सकती है जब आधुनिक और तकनीकी रूप से स्वतन्त्र उद्योगों की एक साथ स्थापना की जाए क्योंकि विनियोग की न्यूनतम मात्रा से अविभाज्यताएं तथा बाह्य बचतों को सफलतापूर्वक प्राप्ति होती है जो आर्थिक विकास को तीव्र करने में सहायक है।

बड़े धक्के के सिद्धान्त की परिभाषा

प्रो. रोडान के अनुसार : ''यदि विकास के कार्यक्रमों को सफल बनाना है तो साधनों के न्यूनतम स्तर को विनियोग करना अनिवार्य है एक पिछड़ी अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर बनाना ऐसा है, जैसे हवाई जहाज को धरती से आकाश में उड़ाने का कार्य करना क्योंकि एक निश्चित गति के बिना हवाई जहाज का हवा में उड़ना असंभव है इसलिए इसे सफलता पूर्वक उड़ाने के लिए न्यूनतम गति को बनाए रखना पड़ता है।''

प्रो. मायर एवं वाल्डविन : ''विकास कार्यक्रम का कम से कम एक न्यूनतम आकार होना चाहिए जिससे अर्थव्यवस्थाओं की असमानताओं और अविभाज्यताओं को निम्न किया जा सके, अमितव्ययताओं को प्रभावहीन किया जा सके और कुछ ऐसी शक्तियों का सामना किया जा सके जो विकास की प्रक्रिया के प्रारम्भ में उत्पन्न होती है।''

विकास प्रक्रिया का आधार : इस प्रकार आर्थिक विकास की प्रक्रिया को प्रारम्भ करने के तीन आधार हैं–

टिप्पणी

1. अविभाज्यताओं को कम करना
2. बाह्य बचतों को प्राप्त करना
3. निवेश की न्यूनतम मात्रा का होना

उपरोक्त तीनों बातों के कारण कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। आर्थिक विकास के लिए यह सिद्धान्त सहायता प्रदान करता है। प्रो. रोजेन्स्टीन के अनुसार : अल्पविकसित देशों में धक्के के सिद्धान्त की आवश्यकता से कम से कम तीन अविभाज्यताओं की उत्पत्ति होती है। इन्होंने तीन भिन्न प्रकार की अविभाज्यताओं और बाह्य बचतों में अन्तर स्पष्ट किया है–

1. उत्पादन फलन में अविभाज्यताएं
2. मांग की अविभाज्यता/मांग की पूरकता
3. बचतों की आपूर्ति में अविभाज्यता

अल्पविकसित देशों में विकास में वृद्धि करने में उपुर्यक्त अविभाज्यताओं का काफी योगदान है।

1. **उत्पादन फलन में अविभाज्यताएं** (Indivisibilities in the Production Function) : उत्पादन फलन के अविभाज्यताएं विशेष रूप से सामाजिक उपरि पूंजी की पूर्ति की अविभाज्यता से सम्बन्धित है। प्रो. रोडान के अनुसार उत्पादन में वृद्धि का आधार उच्चतम स्तर के विनियोग करने से है जिससे बड़े पैमाने के उद्योगों के विकास में सहायता मिलती है। आन्तरिक और कार्यशील रखने से मितव्ययताएं प्राप्त होती हैं। इसलिए सदैव उद्योगों को विकास के मार्ग पर लाने का प्रयास जरूरी है, अपूर्ण कार्यों में किया गया निवेश फलदायक नहीं हो सकता। बड़ी मात्रा में निवेश करने का मुख्य कारण यह है कि यह व्यय समय–समय पर विभाजनशील नहीं होता इसके निम्न कारण हैं।

   1. पूंजी व्यय के ऐतिहासिक क्रम को नहीं बदला जा सकता।
   2. यह व्यय अधिक मात्रा में और उच्च स्तर तक किया जाना चाहिए वरना तकनीकी लाभ नहीं प्राप्त होगा।
   3. इस प्रकार का निवेश उत्तरार्ध में ही लाभ प्रदान करता है।
   4. न्यूनतम मात्रा में सामाजिक उपरिव्यय ही विकास के लिए उत्तम प्रयास है। इस प्रकार प्रो. रोडान के अनुसार सामाजिक उपरि पूंजी व्यय की चार अविभाज्यताएं जो आर्थिक विकास को प्रदान करती हैं।

      (i) ये अल्पकाल में अपरिवर्तनशील रहती हैं इसलिए यह आवश्यक है ये व्यय प्रत्यक्ष रूप से उत्पादक निवेश से पहले ही हों।

      (ii) यह व्यय निश्चित न्यूनतम रूप से आर्थिक विकास को सुडौल बनाते हैं और गठीला बनाते हैं।

      (iii) यह दीर्घकालीन अवधि के लिए प्रयोग होते हैं जिनके लाभ थोड़े देर में प्राप्त होते हैं।

टिप्पणी

(iv) इसमें भिन्न सार्वजनिक उपयोगिता का एक निश्चित न्यूनतम अह्रास्य (अपरिवर्तनीयता) उद्योग का सम्मिश्रण है।

सामाजिक उपरि पूंजी की आपूर्ति की अविभाज्यताएं अल्पविकसित देशों के विकास में रुकावट है इसलिए शीघ्र फल प्राप्त करने के लिए प्रत्यक्षतः उत्पादक निवेशों को चालू रखने के लिए सामाजिक उपरि पूंजी में प्रारम्भिक निवेश के उच्च स्तर को बनाये रखा जाए।

निर्गतों इस प्रकार प्रो. रोजन्स्टीन रोडान के अनुसार यह कहा जा सकता है कि "आगतो निर्गों तथा विकास गतिविधियों की अविभाज्यताओं से वृद्धमान प्रतिफल प्राप्त होते हैं।"

प्रो. रोडान के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरीका ने वृद्धिमान प्रतिफल के कारण ही पूंजी उत्पाद अनुपात को कम करने में सहायता की। सामाजिक उपरि पूंजी की सेवाओं में आर्थिक आधारिक उद्योग (जैसे विद्युत यातायात संचार) अप्रत्यक्ष उद्योग है जो दीर्घकाल में पूर्ण होते हैं पर इनका आयात सम्भव नहीं है। ये पर्याप्त मात्रा में प्रारम्भिक निवेश राशि की अपेक्षा रखती है जिससे इनमें विभिन्न सार्वजनिक उपयोगिताओं का अह्रास्य न्यूनतम उद्योग मिश्रण (Irreducible Minimum Industry Mix) है। इसके लिये यह आवश्यक है कि अल्पविकसित देशों की विकास प्रक्रिया में अपने कुल निवेश का 30–40 प्रतिशत इन क्षेत्रों में व्यय करना पड़ेगा लेकिन इनका प्रयोग शीघ्र फलदायक प्रत्यक्षः उत्पादक निवेशों (Directly Production Investment) में होना चाहिए।

2. **मांग की अविभाज्यता** (Indivisibility of Demand) – मांग की अविभाज्यता से इस बात की आशा की जाती है कि अल्पविकसित राष्ट्रों में पारस्परिक निर्भरता वालों उद्यमों की स्थापना होनी चाहिए क्योंकि व्यक्तिगत विनियोग में जोखिम की सम्भावना अधिक होती है उसमें अनिश्चितता रहती है कि लाभ की मात्रा अधिक होगी या कम, बाजार के विपणन की सुविधा उस वस्तु को मिलेगी या नहीं। निवेश सम्बन्धी निर्णय एक दूसरे उद्यमो पर निर्भर रहती है। इससे दो प्रकार से लाभ प्राप्त होता है।

   1. विनिमय के आधार पर बाजार के आकार का विस्तार होगा।
   2. पूंजीगत विनियोग में जोखिम की सम्भावना कम होगी।

   निवेश के निर्णय अविभाज्य होते हैं और एक दूसरे पर निर्भर होते हैं लेकिन अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में बाजार का आकार छोटा होने से निवेश को प्रेरित नहीं करती। प्रतिव्यक्ति आय में कमी और लोगों की क्रयशक्ति के कम होने के कारण भी छोटे बाजार अस्तित्व में रहते हैं। विकास की तीव्रता कम हो जाती है।

   MRS : Marginal Rate of Saving

   ARS : Average Rate of Saving

   प्रो. रोडान के अनुसार : एक अकेली फैक्टरी जिसमें पर्याप्त और आधुनिक उत्पादन तकनीक का प्रयोग किया जाता है यदि वह आत्म निर्भर है और यदि वह असफल होती है तो उसका कारण उसके उत्पादन की बिक्री न होने के लिए

बाजार का छोटा आकार ही उत्तरदायी है। इस प्रकार रोडान के अनुसार : ''एक साथ बड़े पैमाने पर उद्यमों की स्थापना करने से उसमें कार्यरत श्रमिक दूसरे उद्यमों को वस्तुओं का उपभोक्ता बन जाता है इस प्रकार सभी उद्यमी के उत्पादन की बिक्री आसानी से हो सकती है और बाजार का विस्तार भी हो जाता है''

इस प्रकार अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के आर्थिक विकास की प्रक्रिया के लिए प्रबल प्रयास (बड़े धक्के) का परिपालन आवश्यक है। उपर्युक्त विश्लेषण पूरी तरह से बन्द अर्थव्यवस्थाओं पर लागू होता है। एक बंद अर्थव्यवस्था में विश्व बाजार अतिरिक्त घरेलू बाजार का प्रतिस्थानापन हो सकता है लेकिन प्रो. रोडान का तर्क है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कम दबाव की आवश्यकता होती है यह प्रबल प्रयास की आवश्यकता को निरस्त करता है अर्थात अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विस्तार के कारण न्यूनतम मात्रा के निवेश की ही आवश्यकता होती है इसलिए यहाँ पर बड़े धक्के उच्च निवेश या उच्च निवेश की आवश्यकता नहीं होती।

3. **बचतों की पूर्ति में अविभाज्यताएं** (Indivisibility in the Supply of Savings) : प्रो. रोडान का विचार है कि यह अविभाज्यता इसलिए उत्पन्न होती है क्योंकि आय का उच्चतम स्तर प्राप्त करने पर ही बचतों का उच्चतम् स्तर प्राप्त कर सकते हैं लेकिन अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में आय के निम्न स्तर के कारण बचतों के उच्च स्तर को प्राप्त करना बहुत कठिन है।

इसलिए गरीब देशों के लिए आवश्यक है कि निवेश में बढ़ोतरी के साथ आय में वृद्धि की जाए जिसके फलस्वरूप बचत की सीमान्त दर, बचत की औसत दर से अधिक होनी चाहिए अर्थात आय में वृद्धि होने पर MRS में ARS की अपेक्षा तेजी से वृद्धि होनी चाहिए।

प्रो. रोडान के शब्दों में : आय स्तर में निम्नता और अल्प बचत की दर के दुश्चक्र से बाहर निकलने के लिए आवश्यक है कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में अधिक मात्रा में व्यय किया जाए ताकि आय की मात्रा में प्रचुरता से वृद्धि हो सके। MRS > ARS की अवस्था रहे जो विभिन्न दुश्चक्रों से बाहर निकालने में सहायक होगी और आर्थिक विकास के मार्ग को प्रशस्त करेगी। यद्यपि MRS > ARS की अवस्था एक आदर्शतम स्थिति है लेकिन ऐतिहासिक क्रम बताता है कि कभी भी MRS > ARS की अवस्था नहीं रही है।

रोडान के शब्दों में : ''आर्थिक विकास की सफलता के लिए एक ऐसी नीति का निर्माण आवश्यक है जो उत्साह तथा प्रयत्न में अन्ततः अविभाज्यक होती है।'' जब विकास की प्रक्रिया आरम्भ होती है तो संतुलित वृद्धि का मार्ग प्रत्यक्ष निम्न बातों के कारण गतिशील होता है। (1) सामाजिक उपरि पूंजी तथा प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं में संतुलन (2) पूंजी वस्तु उद्योगों तथा उपभोक्ता वस्तु उद्योगों में संतुलन।

उपभोक्ताओं की बढ़ती मांग में पूरकता के कारण विभिन्न उपभोक्ता वस्तु उद्योगों में संतुलन के लिए विस्तार पूर्वक कार्यक्रमों का निर्माण अनिवार्य होना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि आर्थिक विकास को अधिक गतिशील बनाने के लिए और विकास के मार्ग में आने वाली रुकावटों को दूर करने के लिए

टिप्पणी

अल्पविकसित देशों में उपर्युक्त वातावरण के निर्माण की आवश्यकता है छोटे–छोटे प्रयास करने से आर्थिक विकास के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार नहीं हो सकता इसके लिए प्रबल प्रयास अर्थात न्यूनतम आवश्यक प्रयास की आवश्यकता होती है।

समीक्षात्मक मूल्यांकन

रोजेन्स्टीन रोडान के बड़े धक्के के सिद्धान्त की महत्ता केवल प्रभावशाली प्रयत्नों की आवश्यकता पर ही केन्द्रित है। उनका सिद्धान्त उत्पादन फलन में अविभाज्यताओं और पूरकता की अधिक वास्तविक अवधारणाओं पर निर्भर करता है। यह सिद्धान्त संतुलन के मार्ग का निरीक्षण करता है। विशेष रूप से यह सिद्धान्त अपूर्ण बाजारों से सम्बन्धित विनियोग का सिद्धान्त है और ये सिद्धान्त उच्च न्यूनतम मात्रा में निवेश के द्वारा अर्थव्यवस्थाओं को आदर्शतम स्थिति में लाने का प्रयास करता है। फिर भी अनेक अर्थशास्त्रियों ने विभिन्न आधारों पर बड़े धक्के के सिद्धान्त की आलोचना की है –

1. **तकनीकों के महत्त्व की अवहेलना** (Neglect of the Importance of Techniques) : सैल्सों फर्टेडो ने इस बात पर तर्क दिया कि पूंजी निर्माण को प्रोत्साहित करने के लिए नई–नई तकनीक की आवश्यकता होती है लेकिन इस सिद्धान्त ने तकनीकों की महत्ता की अवहेलना भी है जबकि सत्य यह है कि पूंजी निर्माण नई तकनीकों का सम्मिश्रण है और आर्थिक विकास का मुख्य उपकरण है। आज के संदर्भ में विकास प्रोद्योगिकी तकनीकों की वृद्धि पर निर्भर करता है न कि उत्पादन प्रक्रिया में प्रयुक्त प्रत्यक्ष पूंजी निर्माण पर
2. **बाह्य बचते** (External Economics) : रोडन का मानना है कि विदेशी व्यापार के विकास से बाह्य बचतें प्राप्त की जा सकती हैं यह सिद्धान्त बड़े पैमाने के उत्पादन की बाह्य बचतों पर निर्भर है। ये अधिक विनियोग को आवश्यक नहीं मानते जबकि ये बचतें केवल लागत को कम करती हैं उत्पादन में वृद्धि नहीं कर पाती इसलिए गरीब देशों के लिए यह उपयोगी नहीं है।

   प्रो. जैकब वाइनर के अनुसार : अल्पविकसित राष्ट्र स्वतन्त्र रह कर भी विश्व व्यापार से बाह्य बचतों को पर्याप्त मात्रा में प्राप्त कर लेती है।
3. **मिश्रित अर्थव्यवस्था में कठिनाई** (Difficulties in Mixed Economy) : आज के आधुनिक युग में लगभग सभी अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में मिश्रित अर्थव्यवस्था अस्तित्व में है और यदि ये निजी और सार्वजनिक क्षेत्र दोनों एक दूसरे के पूरक हैं तो किसी भी प्रकार की कोई कठिनाई नहीं है। यदि दोनों क्षेत्रों के बीच प्रतिस्पर्धा का वातावरण है तो आर्थिक विकास की रणनीति के क्रियान्वयन में भयंकर कठिनाई होगी। प्रो. एच. मिन्ट के अनुसार : शीत युद्ध की स्थिति इन दोनों क्षेत्रों में उत्पन्न होगी जो अल्पविकसित देशों के लिए हानिकारक होगी।
4. **अविभाज्यता पर अत्यधिक बल** (Too Much Emphasis on Indivisibilities) : बड़े धक्के का सिद्धान्त दोनों अविभाज्यताओं चाहे वह पूर्ति की पक्ष की हो या मांग पक्ष की पर अत्यधिक महत्व दिया है जो केवल सामाजिक सुधारों की विस्तृत अवधारणा पर ही ध्यान देता है।

टिप्पणी

5. **कृषि क्षेत्र में निवेश की अवहेलना** (Neglect Investment in the Agricultural Sector) : इसका मुख्य अवगुण यही है कि कृषि क्षेत्र के उद्योगों के अतिरिक्त अन्य सभी उद्योगों व उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योगों के महत्व पर बल देता है जबकि कृषि प्रथाओं को सुधार करने में प्रबल प्रयास का सिद्धान्त अधिक महत्वपूर्ण हो सकता है, क्योंकि कृषि का विकास होगा अन्य उद्यमों जैसे, अच्छे उपकरण, सिंचाई आदि पर ध्यान देने पर। अन्यथा कृषि क्षेत्र की अवहेलना विकास की गति को मन्द कर देगी।
6. **साधनों की अपर्याप्ता :** (Inadequacy of Resources) अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में साधनों का अभाव होता है जिसके अन्तर्गत साधनों की सीमितता पाई जाती है ऐसी स्थिति में इन राष्ट्रों में बड़े धक्के का सिद्धान्त विकास में कोई सहायता नहीं कर पाता।
7. **स्फीतिकारी दबावों का पाया जाना** (Existence of Inflationary Pressures) : अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के अन्तर्गत उच्च न्यूनतम मात्रा का निवेश करना भी बहुत महंगा पड़ता है सामाजिक उपरि पूंजी का पूंजी उत्पाद भी अधिक होता है और वह दीर्घकालीन अवधि के लिए होता है इसलिए विकास का कार्य करना बहुत मुश्किल होता है आवश्यक उपरि पूंजी का उत्पादन भी अधिक होता है और वह दीर्घ कालीन अवधि के लिए होता है आवश्यक उपरि पूंजी को प्रदान करने के लिए पर्याप्त वित्तीय साधन भी नहीं होते जिस पर उपरि पूंजी की रचना की जा सकती है उपभोक्ता वस्तुओं की दुर्लभता के कारण स्फीतिकारी दबावों का कार्यकाल भी लम्बा होगा आर्थिक विकास की प्रक्रिया को कठिन बना देगें।
8. **ऐतिहासिक रूप से प्रोत्साहन नहीं** (Not Supported by History) : प्रो. रोडान का सिद्धान्त वर्तमान काल में शीघ्र प्रगति के रास्ते चलने का एक कदम भर है लेकिन इसमें ऐसी व्याख्या नहीं की गई कि विकास क्या है? कैसे होता है? प्रो. हेगन के अनुसार : ऐतिहासिक दृष्टि से 'प्रबल प्रयास' की उपस्थिति या अनुपस्थिति कहीं भी कभी भी वृद्धि की मुख्य विशेषता नहीं रही है।
9. **यह सिद्धान्त अवास्तविक है** (Unrealistic Theory) : यह व्याख्या अवास्तविक है क्योंकि आय के निम्न स्तर, पूंजीगत साधनों की अपर्याप्तता बचत के स्तर में कमी होने के कारण अधिक मात्रा में निवेश नहीं किया जा सकता है।
10. **केवल उद्योगों और आर्थिक संरचना पर अधिक बल** (Great Emphasis or Industries and Economic Structure) : यह केवल आर्थिक संरचना और उद्योगों को बढ़ावा देने की बात करता है अन्य क्षेत्रों के विकास पर बल नहीं देता है।

निष्कर्ष

वर्तमान समय में बड़े धक्के के सिद्धान्त को उपयुक्त माना जा सकता है क्योंकि यदि अल्पविकसित देश धीरे–धीरे विकास करेगें तो विकसित देशों की तुलना में बहुत पीछे रह जाएंगे इसलिए बड़े धक्के के सिद्धान्त को आधार मानते हुए आयात में कमी, निर्यात को प्रोत्साहन, विदेशी निवेश प्राप्त करके, कृषि के विकास में तकनीक का समावेश करके और उद्योगों में निवेश करके आर्थिक विकास में प्रगति की जा सकती है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

3. 'बड़े धक्के का सिद्धांत' के प्रतिपादक कौन थे?
   (क) ऑर्थर लुईस (ख) रोजेन्स्टीन रोडान
   (ग) एडम स्मिथ (घ) मिर्डल
4. प्रो. रोजेन्स्टीन ने अल्पविकसित देशों में धक्के के सिद्धांत की आवश्यकता से कितने प्रकार की अविभाज्यताओं का होना बताया है?
   (क) एक (ख) दो
   (ग) तीन (घ) चार

3.4 ए. लुईस सिद्धांत

आर्थर लुईस ने बड़े ही व्यवस्थित रूप में अपने विचारों को अपने एक लेख Economic development with Unlimited Supply of Labour में उर्द्धत किया। लुईस का विकास सिद्धान्त द्विक्षेत्रीय अर्थव्यवस्था का सिद्धान्त है। लुईस ने अल्पविकसित देशों की अर्थवयवस्था को दो वर्गों मे विभाजित किया एक पूंजीवादी क्षेत्र दूसरा निर्वाह क्षेत्र, अन्य क्लासिकल अर्थशास्त्रियों की तरह लुईस का भी यह मानना था कि अल्पविकसित राष्ट्रों मे निर्वाह स्तर पर श्रम की पूर्ति असीमित होती है। विकास की स्थिति को प्राप्त करने के लिए निर्वाह क्षेत्र से हटकर पूंजीवादी क्षेत्रों में लगना होगा, ताकि पूंजी संचय हो, पूंजी पर नियन्त्रण पूंजीपतियों द्वारा ही हो सकता है। क्योंकि श्रम की सेवाओं को वह किराये पर लेता है। पूंजीवादी क्षेत्रों में केवल निर्माण कार्य ही नहीं बल्कि खान और खेती भी शामिल है क्योंकि इन क्षेत्रों में लाभ प्राप्त करने के लिए श्रमिकों का भाड़े पर उपयोग किया जाता है। निर्वाह क्षेत्र वाली अर्थव्यवस्थाएं अधिक जनसंख्या वाली होती हैं। प्राकृतिक साधन और पूंजी जनसंख्या की तुलना में कम होती है। लुईस का मानना था कि श्रम की पूर्ति असीमित होने के कारण श्रमिक की सीमान्ता उत्पादकता कई बार शून्य या ऋणात्मक भी होती है। इसीलिए प्रचलित मजदूरी पर ही श्रमिकों को निर्वाह क्षेत्र के स्थान से स्थानान्तरित करें और पूंजीवादी क्षेत्र में लगाकर उद्योगों की स्थापना करें और उद्योगों का विस्तार करें। उद्योगों के लिए कुशल और प्रशिक्षित श्रम की आवश्यकता होती है जिसको श्रमिकों को प्रशिक्षण की सुविधाएं देकर दूर कर सकते हैं।

1. **द्विक्षेत्रों का सम्बन्ध** – इस द्विक्षेत्रीय मॉडल का आधारभूत सम्बन्ध यह है कि जब पूंजीवादी क्षेत्र का विस्तार करना होता है तो निर्वाह क्षेत्र से मजदूरो को आकर्षित करके पूंजी क्षेत्र में स्थापित किया जाता है। परिणाम के रूप मे श्रमिक की प्रतिव्यक्ति उत्पादकता बढ़ती है और निर्वाह क्षेत्र से लेकर पूंजीवादी क्षेत्रो में वृद्धि होती है। श्रमिक की असीमित पूर्ति के प्रमुख घटकों मे वो लोग आते है जो खेती में (प्रन्छन्न बेरोजगारी) घरेलू सेवाएं, घरों की महिलाएं जनसंख्या मे होने वाली तीव्र वृद्धि मे सहायक है और एक प्रकार से अकुशल श्रमिको की पूर्ति में वृद्धि करने में सहयोग देते हैं। अकुशल श्रमिकों की पूर्ति में वृद्धि होने से

उत्पादकता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है तथा इस प्रकार उनकी संचय में भी अपेक्षित वृद्धि नहीं प्राप्त होती।

लुईस के अनुसार – ''आर्थिक सवृद्धि पूंजी संचय का फलन है।

2. **पूंजीवादी अधिशेष** – पूंजीवादी अधिशेष से तात्पर्य जीवन निर्वाह मजदूरी और पूंजीवादी मजदूरी में अन्तर से है।

   (i) यह निर्वाह के लिए आवश्यक न्यूनतम लागत पर आश्रित होता है।

   (ii) मजदूरी स्तर (न्यूनतम लागत) श्रमिक के औसत उत्पादन से कम नहीं हो सकता। हाँ यदि श्रमिक का व्यय अधिक है या उसे कोई मानसिक या शारीरिक कष्ट है तो यह श्रमिक के औसत उत्पादन से अधिक हो सकता है।

   (iii) निर्वाह मजदूरी, पूंजीवादी मजदूरी से अधिक होती है अब कितनी अधिक यह तो नहीं कहा जा सकता लेकिन समाज मे आने वाली परिस्थितियों से ही यह निश्चित होता है।

   (iv) निर्वाह क्षेत्रों की उत्पादकता को श्रमिकों की वास्तविक आय में वृद्धि करके बढ़ा सकते हैं श्रमिकों को चाहिए कि वे सौदेबाजी के द्वारा मजदूरी को बढ़वाने में अपनी सहायता स्वयं करे या श्रमसंघों का सहारा लें। कई बार मानव हित को ध्यान में रखते हुए या ऊँचा निर्वाह व्यय होने के कारण उद्यमी श्रमिक की वास्तविक मज़दूरी बढ़ा दे लेकिन फिर भी सौदेबाजी के द्वारा श्रमिकों को मजदूरी बढ़वाने में मदद अवश्य मिलती है क्योंकि पूंजीवादी क्षेत्रों में श्रम उत्पादकता अधिक होती है।

   (v) पूंजीवादी अधिशेष को यदि नयी पूंज़ी के लिए इस्तेमाल किया जाता है तो पूंजीवादी क्षेत्र का विस्तार होता है।

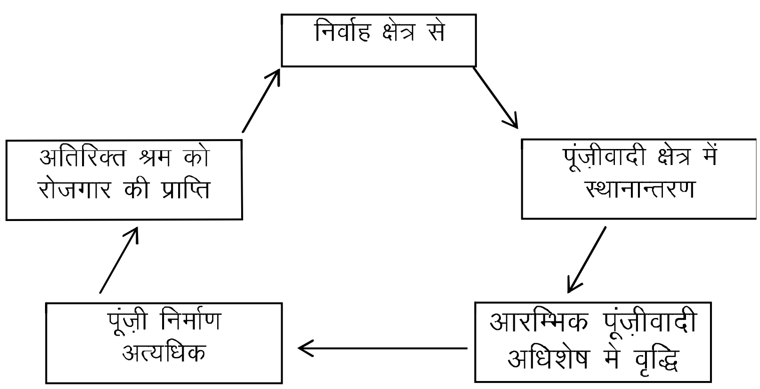

   (vi) यह प्रक्रिया तब तक चलती है जब तक नयी पूंजी सम्पतियों का पुनर्निवेश नहीं होता और पूंजी श्रम अनुपात में वृद्धि नहीं होती। इस प्रकार

प्राद्योगिकीय उन्नति

लाभ की मात्रा में वृद्धि   पूंजीवादी क्षेत्रों में रोज़गार वृद्धि

लुईस के मॉडल की विशेषताएं (Characteristics of Lewis Model)

1. **रोजगार में वृद्धि** – अल्पविकसित देशों में अधिक जनसंख्या के कारण लोगों को जीवन निर्वाह की न्यूनतम लागत पर रोजगार के लिए प्रेरित किया जाता है। शुरू में जीवन निर्वाह स्तर पर कार्य दिलवाना एक महत्वपूर्ण कार्य है।
2. **श्रम की सीमान्त उत्पादकता** – श्रम की सीमान्त उत्पादकता शून्य या ऋणात्मक हो सकती है लेकिन पिछड़ी अर्थव्यवस्थाओं में श्रम का प्रति इकाई मूल्य निर्वाह स्तर पर रहता है।

   श्रम की पूर्ति – श्रम की मांग और जीवन निर्वाह मजदूरी का निर्धारण।

   (i) श्रमिकों को एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भेज कर।

   (ii) नये–नये उद्योगों की स्थापना।

   (iii) पुरानी इकाइयों या उद्योगों का विस्तार करके।
3. **श्रम शक्तियों का एकत्रीकरण** – घरेलू कामकाजी स्त्रियाँ, बेरोजगारी (अल्परोजगार + प्रच्छन्न बेरोजगारी) और अतिरिक्त श्रम जो जनसंख्या के बढ़ने का परिणाम है। इसलिए उपयुक्त सभी का एकत्रीकरण आर्थिक विकास में सहयोग देता है।
4. **पूंजी निर्माण** – लुईस ने अपने विकास मॉडल में पूंजी निर्माण के दो स्रोतों की व्याख्या भी है।

   (क) लाभ (ख) मुद्रा की पूर्ति

   लाभ पूंजी निर्माण का मुख्य घटक है लाभों की मात्रा में से अधिक बचत करके पूंजी निर्माण को सुगम बनाया जाता है सीमित आय वाले, वेतन भोगी, निम्न वर्ग का पूंजी निर्माण में कम ही योगदान रहता है,

   लुईस के अनुसार : ''उपभोग जन्य वस्तु की मात्रा में कमी किये बिना और साख द्वारा भी पूंजी निर्माण किया जाता है।''

   मुद्रा की पूर्ति द्वारा पूंजी निर्माण संभव है पूँजी निर्माण प्रक्रिया में लगे हुए श्रमिकों का भुगतान अतिरिक्त मुद्रा से किया जाता है कुछ समय के लिए उपर्युक्त कारण से कीमतों में वृद्धि भी हो जाती है।
5. **विकास अनन्त काल तक सम्भव नहीं** – पूंजी निर्माण की दर बढ़ने से उत्पादन और रोजगार में वृद्धि होती है लाभ बढ़ते हैं इसको पुनर्निवेश या पुनः उत्पादन करके पूंजी निर्माण को बढ़ाया जा सकता है। विकास में निरन्तरता विद्यमान होती है। लेकिन विकास की प्रक्रिया अनन्त काल तक नहीं हो सकती है।
6. **राज्य और निजी पूंजीपतियों का योगदान** – अल्पविकसित देशों में (जहां अतिरिक्त श्रम अधिक मात्रा में उपलब्ध है) राष्ट्रीय आय का प्रयोग करने वाले लोगों में बचत का सर्वाधिक हिस्सा अधिक आय वर्ग द्वारा, वेतनभोगी एवं मजदूरी या निम्न आय वर्ग द्वारा नाममात्र के लिए बचाया जाता है। बाकी देश के अन्य लोग उपभोग में ही व्यस्त रहते हैं। इसलिए सभी राष्ट्र, राज्य पूंजीपति, निजी पूंजीपतियों द्वारा अर्जित लाभ में से पूंजी निर्माण करते हैं।

घरेलू पूंजीपति नई–नई तकनीक का प्रयोग व बाजार का विस्तार श्रम की उत्पादकता पूंजीवादी अतिरेक राज्य पूंजीपति पूंजी संचय अधिक करेगा क्योकि वह पूंजीवादी क्षेत्र और निर्वाह क्षेत्र दोनों के लाभों का उपयोग करता है।

टिप्पणी

लुईस के अनुसार– यदि पूंजी उत्पादकता के प्रयोग के अवसरों में तीव्र वृद्धि की जाए तो अधिशेष में तीव्रता से वृद्धि होती है साथ ही पूंजीवादी वर्ग भी तीव्र गति से बढ़ेगा।

7. **बैंक साख का योगदान** – पूंजी निर्माण बैंक साख से भी होता है।

   1. अल्पविकसित देशों में अपर्याप्त पूंजी कार्य के साधनों के कारण बैंक साख की सुविधाओं को प्रदान करते हैं। लेकिन यदि पूंजी निर्माण साख द्वारा होता है। तो मुद्रा स्फीति की दशा का सामना करना होगा, कीमतों में वृद्धि होगी।
   2. यदि अतिरिक्त श्रम को पूंजीवादी क्षेत्र में प्रयोग किया जाता है तो उनका भुगतान साख मुद्रा में से किया जाता है तो आय बढ़ने के कारण कीमत वृद्धि हो जाती है। जैसे ही पूंजीगत वस्तुएं, उपभोग जन्य वस्तुओं का उत्पादन करती है तो कीमत स्तर घट जाता है।

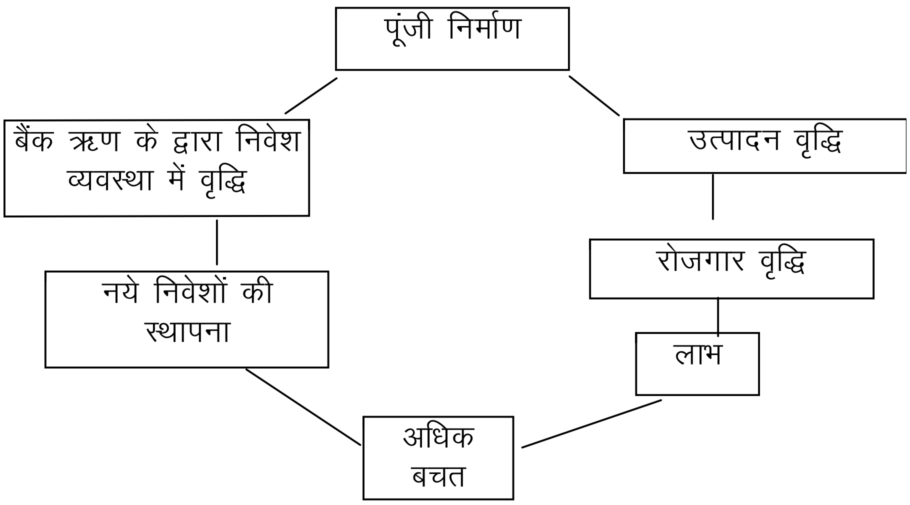

यह सरकार पर भी लागू होता है सरकार स्फीति अन्तराल में मुद्रा को करोपण के रूप में लेती है।

उत्पादन में वृद्धि → राष्ट्रीय आय तो वित्त व्यवस्था–सतुंलित होगी।

उत्पादन में वृद्धि → राष्ट्रीय आय में वृद्धि → वित्त व्यवस्था संतुलित

8. **विकास की प्रक्रिया** : लुईस के अनुसार– यह मॉडल बताता है कि स्थिर मजदूरी दर पर श्रम की पूर्ति असीमित है तो लाभ का भाग पुनर्निवेश किया जाता है। राष्ट्रीय आय की अपेक्षा लाभ क्रमिक रूप में होंगे पूंजी निर्माण भी बढ़ेंगे। यदि पूंजी निर्माण के कारण अतिरेक श्रम नहीं बचता है और पूंजीक्षेत्र इतना विकास करे कि निर्वाह क्षेत्र में जनसंख्या वृद्धि रुक जाये तो निर्वाह क्षेत्र में श्रम की औसत उत्पादकता बढ़ जायेगी।

यदि पूंजी वादी क्षेत्र का विकास होने पर व्यापार की दशा पूंजीवादी क्षेत्र के विपरीत हो और कच्चे माल खाद्यानों की कीमतों में बढ़ोतरी होने के कारण उद्यमी श्रमिकों को मजदूरी की उच्चतर दर का भुगतान करेगा।

निर्वाह क्षेत्रों में उत्पादन की नई–नई तकनीक का प्रयोग होने पर पूंजीवादी क्षेत्र के श्रमिकों की मजदूरी बढ़ जायेगी पूँजीवादी अधिशेष कम होगा।

यदि पूंजीवादी क्षेत्रों में श्रमिक ऊँची मजदूरी प्राप्त करने के लिए संघर्ष करें या सौदेबाजी द्वारा मजदूरी दर बढ़वाने में कामयाब हो जाए तो पूँजीवादी अधिशेष और पूंजी निर्माण कम होंगे।

9. **खुली अर्थव्यवस्था** – विकास प्रक्रिया में असंतुलन होने पर निम्न प्रकार के प्रोत्साहन आवश्यक हैं।

   (i) अप्रवास को बढ़ावा देना

   (ii) पूंजी निर्यात में वृद्धि करना

   (iii) पूंजी संचय की निरन्तरता

   लुईस के अनुसार : उपर्युक्त बातों को उपयोगी न मानते हुए विकास प्रक्रिया की सम्भावनाओं को रद्द करना उचित है क्योंकि

   (a) अकुशल श्रम का विकास और प्रवास सम्भव नहीं है।

   (b) पूंजी निर्यात तभी सम्भव है जब आयात को निर्यात से अधिक हो पूंजी निर्यात द्वारा घरेलू स्थिर पूंजी में कमी होगी जिससे श्रमिक की मांग में भी कमी होगी। पूंजी निर्यातक देशों में पूंजी का निर्यात मजदूरी दर को घटाएगा।

   (c) भुगतान शेष प्रतिकूल होगा।

   (d) आयातित वस्तुओं की लागत अधिक होगी तो उनकी कीमत भी अधिक होगी। मुद्रा मददूरी दर को कम कर देगी।

   इससे विकास के सिद्धान्त का अल्पविकसित देशों में क्रियान्वयन करने से भुगतान शेष में कठिनाइयाँ आएंगी। इसलिए लुईस के अनुसार : अल्पविकसित देशों में विनियम नियन्त्रण होना चाहिए।

आलोचनात्मक व्याख्या : लुईस के द्विक्षेत्रीय विकास मॉडल ने अल्पविकसित देशों का ध्यान अपनी तरफ आकर्षित किया है लेकिन निम्न आधार पर इसके सिद्धान्त की आलोचना की गई है।

1. **श्रम प्रधान तकनीक के बजाय पूंजी प्रधान तकनीक को अपनाना उचित नहीं** क्योंकि ये तकनीक दोनों क्षेत्र चाहे वह कृषि क्षेत्र हो या औद्योगिक श्रमिक को रिपलेस करती है।

2. **योग्य उद्यमियों का अभाव** – अर्थशास्त्रियों के द्वारा कहा गया है कि अल्पविकसित देशों में उद्यमियों की उचित पूर्ति नहीं की गई है। विकास की प्रक्रिया ऐसे वर्ग पर निर्भर करती है जो पूंजी संचय में प्रवीण है।

3. **पूंजी संचय श्रम बचतकारी है** – इसलिए लागू नहीं होता क्योंकि लुईस के अनुसार पूंजीवादी अधिशेष को उत्पादकीय पूंजी में पुनर्निवेश करा दिया जाता है।
4. **सभी देशों में श्रम की पूर्ति असीमित नहीं होती** – कम जनसंख्या वाले देशों के बारे में ये धारणा लागू नहीं होती जैसे अमेरीका, अफ्रीका।
5. **पूंजीवादी क्षेत्र में मजदूरी दर स्थिर नहीं होती** – यह तब तक स्थिर रहेगा जब तक निर्वाह क्षेत्र में श्रम की पूर्ति समाप्त नहीं हो जाती लेकिन ऐसा सम्भव नहीं है क्योंकि औद्योगिक क्षेत्रों में तो मजदूरी दर समय–समय पर बढ़ती है।
6. **समग्र मांग की उपेक्षा** – यह समग्र मांग की अवधारणा का विश्लेषण नहीं करता ये सिद्धान्त मानता है कि पूंजी क्षेत्रों में सभी उत्पादित माल का या तो उस क्षेत्र के द्वारा उपभोग कर लिया जाता है या बचे हुए को निर्यात करा दिया जाता है। ये जीवन निर्वाह क्षेत्र को भी बेचा जा सकता है।
7. **जीवन निर्वाह क्षेत्र से पूंजीवादी क्षेत्र में खिसकाव आसान नहीं** – क्योंकि श्रमिकों में गतिशीलता का अभाव होता है इस कारण ये अपने परिवारों से प्यार, लगाव के कारण वो उनको छोड़कर जाना ही पसन्द नहीं करते, ऊपर से पूंजीवादी क्षेत्रों में कीमतों का बढ़ना, आवास की समस्या महंगाई की समस्या आदि की अड़चनों का होगा।
8. **श्रम की सीमान्त उत्पादकता नगण्य नहीं होती** – क्योंकि यदि ऐसा है तो निर्वाह मजदूरी भी नगण्य होती वास्तव में प्रत्येक श्रमिक निर्वाह मजदूरी अवश्य प्राप्त करता है। किस्म के रूप में या नकद रूप में।
9. लुईस का यह कहना कि बचत केवल उच्च आय वाले ही करते हैं गलत है क्योंकि अमीर वर्ग अपनी शान शौकत, प्रतिष्ठा के लिए खर्च करता है जबकि वेतन भोगी या निम्न आय वाले बचत वृद्धि में सहायता करते हैं। सामाजिक कारणों से बचत करते हैं।
10. **स्फीतिक स्थिति स्वयं विनाशकारी नहीं** – लुईस के अनुसार "स्फीतिक स्थिति स्वयं में ही विनाश करने वाली होती है। उपभोग्य जन्य वस्तुओं के उत्पादन को तीव्र गति से नहीं बढ़ाया जा सकता। आय में वृद्धि से कीमतों में भी वृद्धि होती है।
11. **कर प्रशासन की अकुशलता** – लुईस के अनुसार : करारोपण से बढ़ती आय को एकत्रित करना सम्भव नहीं है क्योंकि प्रशासन कुशल नहीं होता कि वह पर्याप्त मात्रा में कर एकत्रित कर सके।

यह सिद्धान्त इस बात की व्याख्या करता है कि श्रम की अधिकता और पूंजी की कमी और अपर्याप्रता की दशा में पूंजी संचय कैसे होता है? स्फीतिक अन्तराल कैसे उत्पन्न होता है?

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. ऑर्थर लुईस के विकास सिद्धांत को और किस नाम से जानते हैं?
   (क) द्विक्षेत्रीय अर्थव्यवस्था का सिद्धांत (ख) स्फीति का सिद्धांत
   (ग) अवास्तविक सिद्धांत (घ) प्रोत्साहन का सिद्धांत
6. "आर्थिक संवृद्धि पूंजी संचय का फलन है।" किसकी मान्यता है?
   (क) स्मिथ (ख) रोडान
   (ग) लुईस (घ) मिर्डल

3.5 हर्षमैन सिद्धांत

प्रो. सिंगर के अनुसार : ''अल्पविकसित राष्ट्रों के लिए संन्तुलित विकास सिद्धान्त बाजार की समस्याओं को दूर करने में सहायक होता है लेकिन अल्पविकसित राष्ट्रों में इतने साधन और पूँजी नहीं होते जिससे इनको आसानी से अपनाया जा सके इसलिए राष्ट्रों के विकास के लिए असन्तुलित वृद्धि के सिद्धान्त को ही स्वीकार करना चाहिए।''

रोस्टोव के अनुसार : राष्ट्रों को उन्हीं क्षेत्रों में निवेश करना चाहिए जहां पर तकनीकी शिक्षा तकनीकी उत्पादकता की मात्रा प्रचुरता में हो जिससे लोगों के सामाजिक स्तर को बढ़ाने के लिए, आत्म निर्भरता की दशा में लाने के लिए, आधुनिक समाज के निर्माण के लिए उत्पादकीय निवेश दर में वृद्धि की जा सके। राष्ट्रों के असंतुलित विकास के कारण ही लाभ की दर बढ़ती है। पुनर्निवेश संभव किया जा सकता है। इसी कारण से राष्ट्र के विकास में तीव्रता लायी जा सकती है।'' इस प्रकार अर्थव्यवस्था के विकास के लिए सर्वप्रथम उद्योगों में निवेश को बढ़ावा दिया जाना चाहिए जिससे विकास में तीव्रता में तीव्रता लाई जा सके।

प्रो. हर्षमैन की असंतुलित विकास की व्यूह रचना :

(क) प्रो. हर्षमैन ने अपने सिद्धान्त को वैज्ञानिकता प्रदान की उनका मानना था कि विकास की गति को तीव्र करना सरल कार्य नहीं है क्योंकि विभिन्न क्षेत्रों में विकास की स्थिति भिन्न–भिन्न होती है। इसलिए उनमें सामंजस्य स्थापित करने के लिए प्रयास करना पड़ता है।

(ख) हर्षमैन के अनुसार : ऐसी रणनीति तैयार की जाए जिससे असंतुलन की दशा उत्पन्न हो। यही अल्प विकसित देशों की आर्थिक दशा को सुदृढ़ करने का सर्वोत्तम तरीका है। यही असंतुलन विकास के प्रयासों को प्रेरित करते हैं और एक उद्यम को दूसरे उद्यम में परिवर्तित करते हैं। जिसके कारण विकास की निरन्तरता बनी रहती है और आर्थिक विकास बना रहता हैं इस प्रकार हर्षमैन के विचार से विकास की क्रियाविधि असंतुलित वृद्धि की एक नींव है।

(ग) हर्षमैन के विचार से विकास असंतुलनों की मालाएं हैं जो अर्थव्यवस्था को असंतुलित व्यवहार को जीवित रखने में सहायता करती है और लाभ और हानि के रूप में अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण बनाये रखने में योगदान

देती हैं। यदि राष्ट्र का विकास करना है तो विकास नीति को क्रियान्वित करने में आने वाली कठिनाइयों, विषमताओं और असाम्याताओं को जीवित रखना होगा क्योंकि उतार–चढ़ाव वाली प्रगति असंतुलन को प्रेरित करता है और नये असंतुलन की व्युत्पत्ति। इस प्रकार यह क्रम उच्चतम बिंदु तक चलता रहता है।

(घ) हर्षमैन के सिद्धांत की व्यूहरचना की मुख्य विशेषताएँ : हर्षमैन के अनुसार जब अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास के लिए योजनाओं का निर्माण किया जाता है तो निम्न बातें सामने आती हैं।

1. जब पहली योजनाओं का निर्माण किया जाता है तो बाह्य बचतों की प्राप्ति होती है और उन बचतों के माध्यम से अगली योजनाओं में निवेश किया जाता है और नई बाह्य बचतों को नयी योजनाओं में निवेश कर लिया जाता है।
2. हर्षमैन का मानना है कि असंतुलन विकास गति को बताता है विकास की प्रत्येक अवस्था आगत और निर्गत के बीच में ही विद्यमान रहती हैं।
3. प्रो. हर्षमैन ने निवेश के क्रम को निर्धारित करने के लिए दो भागों में विभाजित किया है–

(अ) सामाजिक उपरि पूँजी (Social Overhead Capital (SOC)) : इसके अंतर्गत ऊर्जा, बिजली, यातायात और सिंचाई के साधनों को शामिल किया जाता है क्योंकि इन्हीं साधनों पर अल्पविकसित राष्ट्रों की औद्योगिक क्रियायें निर्भर करती है।

प्रो. हर्षमैन – ''सामाजिक उपरि पूँजी से तात्पर्य यह है कि अर्थव्यवस्था को असंतुलित बनाए रखने में वे आधारिक सेवाएं सम्मलित होती है जिनके बिना व्यावसायिक उत्पादक क्रियाओं का कोई अस्तित्व नहीं होता।'' उदाहरण के लिए शिक्षा स्वास्थ्य, पानी, जल निकास की योजनाएं, रोशनी आदि पर किया जाने वाला निवेश, सामाजिक उपरि पूंजी में शामिल किया जाता है। इसलिए अर्थव्यवस्था के विकास के लिए असंतुलित विकास पद्धति को अपनाना आवश्यक है क्योंकि इसके माध्यम से सामाजिक उपरि पूँजी को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

(ब) प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाएं (Direct Productive Activities (DPA)): SOC में विनियोग करने के बाद DPA निजि विनियोग को बढ़ावा देगा क्योंकि DPA से उत्पादन में अत्याधिक वृद्धि होती है यद्यपि प्रो. हर्षमैन के विचार से SOC, DPA से अधिक उत्तम है क्योंकि SOC का विकास ही DPA को प्रेरित करेगा जिससे प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं में निवेश को बढ़ावा मिलेगा देशों में पूँजी के अभाव के कारण SOC, DPA में एक साथ वृद्धि नहीं की जा सकती इसलिए असंतुलन का होना अति आवश्यक है। और इन दोनों क्रियाओं पर निवेश को केन्द्रित किया जा सकता है उदाहरणार्थ बिजली, ऊर्जा की आपूर्ति छोटे उद्यमों की स्थापना को प्रेरित करती है।SOC पर किया गया निवेश औद्योगीकरण और व्यापार को अप्रत्यक्ष रूप से बढ़ावा देते हैं क्योंकि ये उद्योगों में

टिप्पणी

इस्तेमाल किए गए साधनों की लागत को घटा देते हैं और ऐसा होने से DPA पर किए गए निवेश को प्रोत्साहन, मिलता है। इसका प्रकार यह कहा जा सकता है DPA में निवेश करने के लिए SOC में निवेश करना अति आवश्यक है।

SOC : Social Over head Capital

DPA : Directly Production Activities

प्रो. हर्षमैन के अनुसार : अर्थव्यवस्था में असंतुलन की उत्पत्ति के लिए SOC में निवेश करना अति आवश्यक है जिससे DPA में विस्तार होगा और इससे अन्तिम उत्पादन पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ेगा साथ ही अर्थव्यवस्था के विकास की गति को तीव्र किया जाता है।

DPA के द्वारा असतुंलन की उत्पत्ति DPA के द्वारा निम्न प्रकार से असंतुलन की स्थिति उत्पन्न की जाती है (1) विनिर्माणकारी उद्योग प्रत्यक्ष आर्थिक उत्पादक क्रियाएँ हैं (2) किसी भी राष्ट्र की सरकार DPA में अधिक विनियोग कर सकती है (3) सबसे पहले DPA में विनियोग करने से उत्पादन के साधनों की लागतें बढ़ सकती हैं (4) राजनीतिक हस्तक्षेप और दबाव SOC में किए गये विनियोग को बढ़ाते हैं जिसके कारण प्रत्याशित लाभों से विनियोग के क्रम में वृद्वि होती है और निवेश का क्रम चलता है।

विकास मार्ग

हर्षमैन के अनुसार विकास का एक आदर्श ढांचा निर्मित करने के लिए असंतुलन को निश्चित रूप से कायम रखना आवश्यक है इसलिए विचारपूर्वक असंतुलन की पूर्व निर्धारित और उद्देश्यपूर्ण रणनीति तैयार करनी चाहिए जिससे विकास के क्रम को आगे बढ़ाया जा सके। इसके लिए हर्षमैन ने विकास क्रम में SOC और DPA के स्वर्ण का प्रतिपादन किया।

1. SOC से DPA का विकास मार्ग– SOC की अतिरेक क्षमता का विकास मार्गः SOC का विस्तार परिवहन, ऊर्जा आदि सेवाओं की लागत को कम करता है जो DPA निवेश को प्रोत्साहित करता है।
2. DPA से SOC का विकास मार्ग– SOC की न्यून क्षमता का विकास मार्ग : DPA का विस्तार निवेश के कारण स्वरूप होता है इसलिए SOC पर दबाव निर्माण कार्यो में वृद्धि करता है।

   प्रो. हर्षमैन के दोनों विचारों में जो प्रबलतम स्वप्रेरक या प्रबलतम आत्मप्रेरक है वही विकास क्रम में पहले अधिमान पर रखा जाता है। इस विश्लेषण को रेखाचित्र द्वारा समझाया जा सकता है।

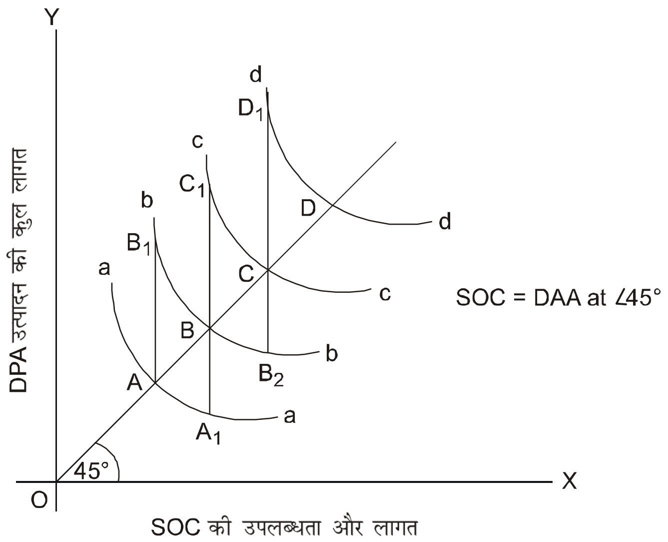

45 प्रतिशत उपुर्यक्त चित्र में OX अक्ष पर SOC की उपलब्धता और लागत को लिया है OY अक्ष पर DDA की कुल लागत को दर्शाया गया है aa, bb, cc, dd वक्र SOC और DDA की विभिन्न मात्राओं को प्रकट करते हैं जो किसी भी बिन्दु पर कुल उत्पादन क्षमता की मात्रा प्रदान करते हैं। जैसे–जैसे हम उच्च वक्रों की ओर जाते हैं वैसे ही वो कुल उत्पादन क्षमता की उच्च मात्रा को प्रकट करते हैं

इन सभी वक्रों के इष्टतम बिन्दुओं को मिलाते हुए एक 45° की रेखा मूल बिन्दु से खींची जाती है जो DDA और SOC के संतुलन वृद्धि को दर्शाती है अर्थात a, b, c, d बिन्दुओं पर DDA = SOC।

हर्षमैन के असंतुलित विकास सिद्धान्त की मान्यताएं (Assumption of Hirschman's Theory of Unbalanced Growth)

(1) DPA और SOC का एक साथ विस्तार नहीं किया जा सकता।

(2) विस्तार का वह क्रम स्वीकार करना चाहिए जो प्रेरक निर्णय को उच्चतम बनाए।

प्रभावशाली असंतुलनों को किस प्रकार ढूंढा जाए कि विशिष्ट असंतुलन प्राप्त हो सके।

(a) अग्रानुबंधन प्रभाव (forward Linkage Effect (FLE))

(b) पश्चानुबंधन प्रभाव (Backward Linkage Effect (BLE))

FLE यह उत्पादन की आने वाली अवस्थाओं में निवेश को प्रोत्साहन देती है। BLE उत्पादन की प्रारम्भिक स्पदांहम अवस्थाओं में। विकास का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अधिकतम कुल अनबंधन प्रभाव (Total Leakage Effect(TLE)) वाली योजना का अन्वेषण किया जाए।

ऐसी योजनाओं में समय–समय पर परिवर्तन होता रहता है। इसलिए आगत निर्गत सारणियों (Input Output Table) द्वारा इनको ढूंढा जा सकता है।

हर्षमैन का मानना है ''अधिकतम संयुक्त अनुबंधन प्राप्तांक (Combined Linkage Score) वाला उद्योग केवल लोहे और इस्पात का है। इसके लिए केवल उद्योग अनुबंधन को अधिकतम बनाया जाना चाहिए लेकिन अल्पविकसित देशों में परस्पर निर्भरता तथा अनुबंधन का अभाव होता है। जैसे कृषि के लिए इसमें प्राथमिक उत्पादन सम्मिलित है और खनन FLE & BLE दोनों प्रभावों में कमजोर है। अल्पविकसित देशों में कुल राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि करने से, अधिकतर विदेशियों द्वारा संचालित निर्यात और प्राथमिक उत्पादन क्रियाओं का शब्दों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिए हर्षमैन के अनुसार : अन्तिम उद्योग की स्थापना पहले की जाए। ये आवश्यक नहीं कि औद्योगिक वस्तुओं के निर्माण के लिए एक साथ उत्पादन की समस्त अवस्थाओं का प्रयोग किया जाए बल्कि निर्मित वस्तुओं को अन्तिम रूप देने के लिए अनेक संग्रहण रूपान्तरण तथा मिश्रित प्लांट का आयात कर सकती है। ये आयात परिवृत्ति उद्योग Import Enclave Industries भी कहा जाता है।''

असंतुलित वृद्धि सिद्धान्त की मुख्य विशेषताएं (Characteristics of Unbalanced Growth)

असंतुलित सिद्धान्त विकास के प्रोत्साहनों व रुकावटों का उचित अध्ययन करता है।

1. असंतुलित वृद्धि सिद्धान्त निर्यात प्रोत्साहन और आयात प्रतिस्थापन की नीति का पक्षपाती है।
2. औद्योगिक विकास में तीव्रता लाने में सहायक है क्योंकि SOC के रूप में निवेश करते हैं तो यातायात बिजली आदि नये उद्योगों की स्थापना होती है तो औद्योगीकरण को बढ़ावा मिलता है।
3. उपभोग प्रधान उद्योगों की स्थापना करने में सहायक है इसके कारण बड़े–बड़े उद्योगों का विकास किया जाना चाहिए जिसके कारण उपभोग्य जन्य उद्योगों के विकास का रास्ता बन जाता है और विकास होने लगता है।
4. अल्पकालीन समय में विकास : प्रारम्भिक अवस्था में बड़े उद्योगों में विकास पर बल दिया गया है। जिससे उन उद्योगों के विकास के कारण छोटे उद्योगों का स्वतः ही विकास हो जाता है। इसलिए कम समय में अधिक विकास हो जाता है।
5. इस सिद्धान्त के द्वारा बड़े पैमाने पर निवेश करना आवश्यक होता है। जिससे पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को पूरा किया जा सकता है।

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि असंतुलित वृद्धि की अवधारणा अल्पविकसित देशों के विकास की नई तकनीक है। इसके कारण रूस, भारत आदि देशों ने आर्थिक वृद्धि की दर को बढ़ाने में सफलता हासिल की। भारतीय अर्थव्यवस्था की द्वितीय योजनाएं महालनोविस विकास मॉडल पर आधारित है। जिसके कारण कृषि के स्थान पर उद्योगों को महत्वपूर्ण माना गया जिससे औद्योगिक विकास की दर में तीव्रता प्राप्त हो सकती है।

असंतुलित वृद्धि के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या

हर्षमैन का मानना था कि अल्पविकसित देशों में साधनों की दुर्लभता, असंतुलित वृद्धि की अवधारणा के लिए एक आकर्षण है क्योंकि उद्यमियों की योग्यता ही उन उपलब्ध

साधनों का सही प्रयोग करके विकास को प्रोत्साहन देने में सहायता करती है। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अल्पविकसित देशों में संतुलित वृद्धि को नहीं अपनाया गया इसलिए तर्क अनुसार असंतुलित वृद्धि की रणनीति ही सही मायने में फलदायक है लेकिन फिर भी असंतुलित वृद्धि का सिद्धान्त त्रुटिपूर्ण है।

1. **क्रमिक संयोजन, दिशा और समय के प्रश्न पर अपर्याप्त ध्यान** (Insufficient attention to the critical question regarding the composition, direction and timings of unbalances) : प्रो. पॉल स्ट्रीटन के अनुसार : ''प्रश्न यह नहीं कि असंतुलन की ऐच्छिक अवस्था को कैसे उत्पन्न किया जाए बल्कि यह है कि असंतुलन की अनुकूलतम अवस्था क्या है? तीव्र वृद्धि के लिए कहाँ और कितना असंतुलन उत्पन्न किया जाए, वृद्धि बिन्दु कौन सा है? भाले से कब प्रहार करना चाहिए? कौन से ढलान पर हिम गोले हिमघाव बन जाते हैं।'' यहाँ स्पष्ट है कि असंतुलन वृद्धि के संयोजन दिशा और समय पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है।
2. **कृषि पर पर्याप्त ध्यान नहीं** (Insufficient attention on agriculture) : अधिक जनसंख्या और कृषि पर निर्भर अल्पविकसित देशों ने कृषि की अवहेलना की है जो आत्मघातक हो सकती है कृषि जन्य वस्तुओं की कमी औद्योगीकरण के कार्यक्रमों के लिए बाधक है जब तक कृषि क्षेत्र का विस्तार नहीं किया जाता तब तक विकास धीमी गति से होगा।
3. **आधारिक सुविधाओं का उपलब्ध न होना** (Unavailability of Basic Facilities) : यातायात ऊर्जा जैसी आधारभूत सुविधाओं का अभाव है जिसके कारण घरेलू और विदेशी बाजार को ढूढने में अनेक समस्याएं आ सकती हैं।
4. **स्फीतिकारी दबावों का अस्तित्व में होना** (Emergence of Inflationary Pressures) : अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी दबाव उत्पन्न होते हैं, निवेश की मात्रा में वृद्धि से आय में बढ़ोत्तरी होगी जिसके कारण मांग की मात्रा में वृद्धि होगी पूर्ति में कमी के कारण दबाव और तनावों के कारण अर्थव्यवस्था में अव्यवस्था फैल जाएगी कीमतों में वृद्धि होगी क्योंकि मांग > पूर्ति अत्यधिक मांग के स्तर को कम करने के लिए राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों के उपायों का सहारा लेना होगा लेकिन अल्पविकसित देशों में कीमतों पर नियन्त्रण रखना आसान नहीं होता इसलिए स्फीतिकारी दबावों का उत्पन्न होना स्वभाविक है।
5. **साधनों की गतिशीलता का न होना** (Lackness of Factor Mobility) : अर्थव्यवस्था में आन्तरिक गतिशीलता का अभाव होता है क्योंकि राष्ट्रों में साधनों को एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भेजना सम्भव ही नहीं है।
6. **अवैधानिक सिद्धान्त** (Unscientific Theory) : यह सिद्धान्त सही मायने में अवैज्ञानिक है क्योंकि असंतुलन की उत्पत्ति कैसे की जाए। इसकी व्याख्या नहीं करता। आर्थिक विकास के लिए किस प्रकार की असंतुलित वृद्धि की नीति निर्धारित की जाए। इसलिए देश के चहुंमुखी विकास के लिए पूर्ण रूपेण असंतुलित विकास पद्धति पर निर्भर रहना ठीक नहीं होगा।
7. **सार्वजनिक नियोजन का अभाव** (Lackness of Govt. Planning) यह सिद्धान्त स्वतन्त्र बाजार अर्थव्यवस्था पर निर्भर करता है परन्तु विकास के लिए किया गया

यह निवेश पर्याप्त नहीं है। सार्वजनिक नियोजन के माध्यम से किया गया बड़ा निवेश ही देश के विकास में वृद्धि करता है इसलिए अल्पविकसित देशों में आर्थिक नियोजन पर बल दिया जा रहा है।

8. **अवरोधों की अवहेलना** (Neglect of Resistance) : स्ट्रीटन के अनुसार – यह सिद्धान्त विस्तार को प्रेरित करने पर ही केन्द्रित है और असंतुलित वृद्धि के कारण जो रुकावटें उत्पन्न होती है उनकी अवहेलना करता है और उनको न्यूनतम करने का प्रयास करता है।
9. **अनुबंधन प्रभाव आंकड़ों पर आधारित नहीं** (Linkage Effects not based on Data) : यह अल्पविकसित देशों के आंकड़ों पर आधारित नहीं है क्योंकि इन देशों में कई पीढ़ियों तक सामाजिक उपरिव्यय की सुविधाएं उपलब्ध नहीं होती है।
10. **यह सिद्धान्त अल्पविकसित राष्ट्रों की पहुँच के बाहर है** (Beyond the Capabilities of under Development Countries) : यह सिद्धान्त इन राष्ट्रों की पहुँच से परे हैं क्योंकि निवेश करने से असंतुलनों में वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप दबाव उत्पन्न होते हैं जो विकास की गतिविधियों में रुकावटें डालते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

7. हर्षमैन के विकास सिद्धांत को किस नाम से जाना जाता है?

   (क) चक्रवृद्धि सिद्धांत (ख) असंतुलित विकास की व्यूह रचना

   (ग) सतत विकास सिद्धांत (घ) संतुलन का सिद्धांत

8. विकास के आदर्श ढांचे को तैयार करने के लिए हर्षमैन किसको महत्वपूर्ण मानते हैं?

   (क) रोजगार (ख) श्रम

   (ग) असंतुलन (घ) संतुलन

3.6 लीबिंसटीन सिद्धांत

प्रो. हार्वे लीबिंसटीन ने अपनी पुस्तक Economic Backwardness and Economic Growth के अन्तर्गत गरीबी के दुश्चक्र से बाहर निकलने के लिए और आर्थिक विकास में बढ़ोतरी करने के लिए आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। प्रो. लीबिंसटीन का मानना था कि यदि अल्पविकसित देशों का तीव्र विकास करना है तो उन्हें संतुलन अवस्था में रखना होगा ताकि विकास को स्थिर अवस्था में रखा जा सके। इसलिए प्रति व्यक्ति आय को उस सीमा तक बढ़ाना ही होगा जिस सीमा पर विकास को नियमित किया जा सके। इसके लिए विकास के कार्यक्रमों का सफलतापूर्वक क्रियान्वयन करने के लिए संसाधनों की एक न्यूनतम मात्रा का प्रयोग करना चाहिए इसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भरता के स्तर तक लाने में सहायता

मिलेगी। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आर्थिक विकास में संक्रान्ति या परिवर्तन लाने के लिए सतत दीर्घकालीन वृद्धि की आवश्यकता है यदि संसाधन पर्याप्त मात्रा में नहीं है तब भी देश की संवृद्धि के लिए हमें ऐसे न्यूनतम प्रयत्न करने चाहिए जो प्रोत्साहक का कार्य करे और एक निश्चित अवधि में ही पिछड़ेपन की स्थिति में सुधार कर सके।

प्रो. हार्वे लीबिंसटीन के अनुसार : प्रत्येक अर्थव्यवस्था आघातों और प्रोत्साहकों के द्वारा संवृद्धि प्राप्त करती है आघात प्रति व्यक्ति आय को कम करने का प्रयास करते हैं जबकि प्रोत्साहक विकास में वृद्धि करता है अल्पविकसित देशों में आघातों की मात्रा अधिक होती है और प्रोत्साहकों की कम। उस अवधि में क्रान्तिक न्यूनतम प्रयास की आवश्यकता होगी। राष्ट्र विकास के मार्ग पर अग्रसर होगा। प्रति व्यक्ति आय को कम करने वाले कारकों की तुलना में विकास को बढ़ाने वाले कारक अधिक प्रेरणादायक होगें।

प्रो. हार्वे लीबिंसटीन ने अपने शोध में निम्न परिकल्पना को आधार बनाया है जिसके अन्तर्गत प्रतिव्यक्ति आय और आर्थिक विकास के संतुलन के सम्बन्ध को स्पष्ट किया है –

1. प्रो. लीबिंसटीन ने जनसंख्या वृद्धि दर और प्रतिव्यक्ति आय के सापेक्षिक महत्व की व्याख्या की है। उनका सिद्धान्त बताता है कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में जीवन निर्वाह स्तर पर जनसंख्या की जन्म दर और मृत्युदर उच्चतम स्तर पर होती है अर्थात जन्मदर और भी अधिक और मृत्युदर भी अधिक होती है।

   इसलिए यदि आय स्तर को न्यूनतम स्तर से अधिक कर दिया जाए तो मृत्युदर में कमी हो सकती है क्योंकि आय वृद्धि से लोगों के मानसिक और भौतिक स्तर में वृद्धि होती है जागरूकता आती है जिसके कारण जनसंख्या वृद्धि में न्यूनतम जीवन निर्वाह लागत पर भी बच्चो का पोषण किया जा सकता है क्योंकि बच्चे जल्दी ही पैसा कमाने लगते हैं इसलिए विकास के ऐसे कदम उठाने चाहिए जन्म दर स्वतः ही कम हो जाए।

2. प्रो. लीबिंसटीन के अनुसार : अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाएं गरीबी के चक्रव्यूह में फंसी है ये देश गरीबी के दल–दल में पर्याप्त प्रोत्साहनों के अभाव में धंसते जाते हैं और विषम परिस्थितियों का शिकार होते जाते हैं। इससे बचने के लिए प्रोत्साहनों का विस्तार करना चाहिए जिससे प्रति व्यक्ति आय और राष्ट्रीय आय में वृद्धि की जा सके।

   प्रो. लीबिंसटीन का मानना है कि प्रोत्साहनों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

   1. शून्य राशि प्रोत्साहन (Zero Sum Incentives)
   2. धनात्मक–राशि प्रोत्साहन (Positive Sum Incentives)

   (अ) ZSI : ये प्रोत्साहन केवल वितरणात्मक प्रयास करते हैं। राष्ट्रीय आय की वृद्धि में इनका कोई योगदान नहीं होता ये केवल एक व्यक्ति में दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरित होता है। अल्पविकसित राष्ट्रों की यही विडम्बना है कि उद्यमी

टिप्पणी

ZSI (शून्य राशि गतिविधियों) में ही लगते रहते हैं जैसे एकाधिकारिक प्रयास सामाजिक प्रतिष्ठान; राजनीतिक शक्ति, सट्टा आदि क्रियाओं में सलंग्न रहते हैं जिसके परिणाम स्वरूप संसाधनों में कमी, बचतों के स्तर में कमी यहाँ तक कि दुर्लभ उद्यमीय साधनों की भी समाप्ति हो जाती है।

(ब) PSI : इस प्रकार की राशि राष्ट्रीय आय में वृद्धि में सहायक होती है और आर्थिक विकास की गति को तीव्र करती है पर इसके लिए यह आवश्यक है कि आरम्भिक काल में ही न्यूनतम प्रयास की मात्रा इतनी अधिक होनी चाहिए जिससे PSI की स्थिरता में संतुलन हो। यदि लाभ की आशा से निवेश योजनाएं शुरू की जाती है और शुद्ध वृद्धि पर्याप्त नहीं है तो भी PSI में सफलता नहीं मिलेगी क्योंकि अल्पविकसित राष्ट्रों में होने वाले परिवर्तन के प्रभाव भी प्रतिकूल होते हैं जो प्रति व्यक्ति आय को कम करते हैं जो इन परिवर्तनों के कारण न्यूनतम हो जाते हैं।

1. निजी एवं सार्वजनिक अनुत्पादक व्यय में वृद्धि जैसे प्रदर्शनकारी उपभोग व्यय
2. जनसंख्या वृद्धि जिसके कारण श्रम आपूर्ति में वृद्धि होती है जो प्रतिव्यक्ति उपलब्ध पूंजी की मात्रा को कमी करती है।
3. नये विचारों और ज्ञान की आलोचना होना अर्थात एक साथ नई धारणा को स्वीकार न कर पाना
4. संगठित और असंगठित श्रम की वे क्रियाएं जो परिवर्तन के प्रतिकूल है।
5. आर्थिक अवसरों की बाधाएं
6. शून्य राशि उद्यमीय गतिविधियां ये क्रियाएं अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं की पिछड़ेपन की स्थिति में स्थिरता रखने वाले प्रभावों पर नियन्त्रण रखती हैं इसके लिए निम्न की आवश्यकता है।
   1. आवश्यक न्यूनतम प्रयास की अधिक मात्रा की आवश्यकता है जिससे
      (क) आर्थिक विकास तीव्रतर होगा
      (ख) PSI (धनात्मक राशि प्रोत्साहन) प्रेरक हो
      (ग) ZSI (शून्य राशि प्रोत्साहन) की शक्ति को निष्फल करें।
   2. आर्थिक विकास में वृद्धि के साथ पूंजी उत्पाद अनुपात को घटाने के लिए।
   3. व्यावसायिक क्षेत्रों का विकास, विशिष्टीकरण को बढ़ावा देने के लिए।
   4. ऐसे वातावरण को विकसित किया जाए जिससे जनसंख्या में कमी हो सके।
   5. संतुलित विकास के लिए अधिक उपयोगी है।
   6. बाह्य बचतों / मितव्ययताओं की वृद्धि के लिए
   7. आर्थिक विकास में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए

8. स्वायत और प्रेरित आय को नियंत्रण करने के लिए
9. आरम्भिक निवेश प्रयास को निश्चित न्यूनतम स्तर में उच्चतम करने के लिए।

टिप्पणी

प्रो. लीबिंसटीन के अनुसार : क्रान्तिक न्यूनतम प्रयासों को एक ही बार प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं है। बल्कि छोटे–छोटे प्रयासों को अलग–अलग करके अनुकूल या साम्य व्यवस्था के समय पर राष्ट्रों में उपयोग किया जाए तो यह अधिक प्रभावशाली होगा।

इस प्रकार लीबिंसटीन का क्रान्तिक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त को निम्न चित्र द्वारा समझाया गया है।

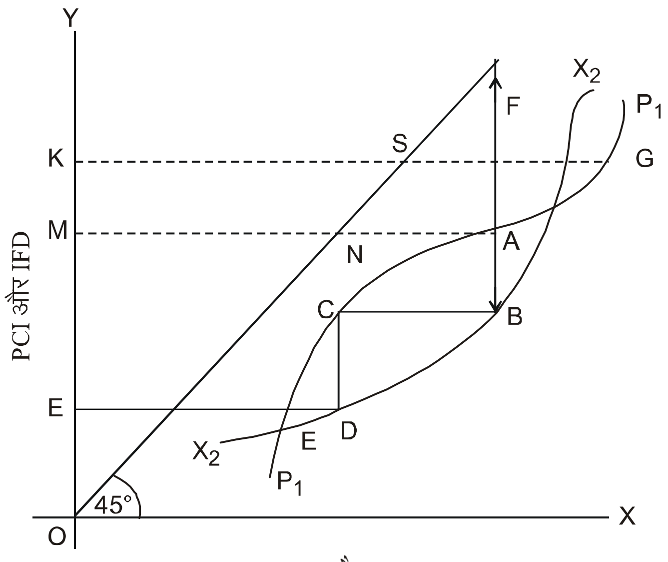

व्याख्या

उपर्युक्त रेखाचित्र आय वृद्धि और आय अवसादी शक्तियों के बीच के संघर्ष को दर्शाता है। $P_1 P_1$ आय वृद्धि की शक्तियों को और $x_2 x_2$ आय कम करने वाली शक्तियों को बताता है। यदि आय स्तर को OE से OM पर लाते हैं तो MA मात्रा में वृद्धि होगी अर्थात आय स्तर में वृद्धि होगी इस स्तर पर आय कम करने की शक्तियाँ BF आय वृद्धि AF शक्तियों से अधिक है जो ABCD रास्ता बनाती है तब तक चलती है।

जब तक E बिन्दु पर नहीं पहुँच जाती केवल तभी निरन्तर वृद्धि का मार्ग आरम्भ होगा जब निवेश नीतियाँ प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करके OK स्तर पर ले आती है यदि प्रति व्यक्ति आय स्तर OK तक बढ़ जाता है तो नई आय वर्द्धक शक्तियाँ आयस्तर को बढ़ाकर SG तक ले जाएंगी यह अन्तहीन विकास का मार्ग उत्पन करेगा जो G से दर्शाया गया है प्रति व्यक्ति आय को OK स्तर तक और आगे G बिन्दु तक की वृद्धि क्रान्तिक न्यूनतम प्रयास की स्थिति है।

इस प्रकार अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं की अर्द्ध–स्थैतिक संतुलन के चक्रव्यूह को तभी समाप्त किया जा सकता है जब आय में वृद्धि के कारक, आय में कमी के कारकों से अधिक सुदृढ़ हो।

टिप्पणी

प्रो. लीबिंसटीन के अनुसार : जब आयवर्द्धक शक्तियों को आय अवसादी शक्तियों से अधिक प्रेरित किया जाए तब ही क्रान्ति न्यूनतम प्रयास की प्राप्त होती है और अर्थव्यवस्थाएं विकास के मार्ग पर चलने लगती है। इस संदर्भ में दो बातें महत्वपूर्ण हैं।

(क) निवेश की मात्रा का स्तर इतना अधिक हो कि आय वृद्धि की कुछ मात्रा पूंजी निर्माण को प्राप्त होती रहे और अवसादी शक्तियों का भी सामना करने में भी सक्षम हो।

(ख) निवेश को अलग–अलग टुकड़ों में करना जिससे एक दशक में इसका विस्तार हो सके और लाभप्रद दशा बनी रहे। निवेश के अभाव में विदेशी पूंजी की सहायता भी ली जा सकती है। इस प्रकार सततीय विकास के लिए सदैव अग्रसर रहना चाहिए।

PCI Percapita Income प्रति व्यक्ति आय

IIG Induced Income Growth प्रेरित आय में वृद्धि

IID Induced Income Decline प्रेरित आय में कमी

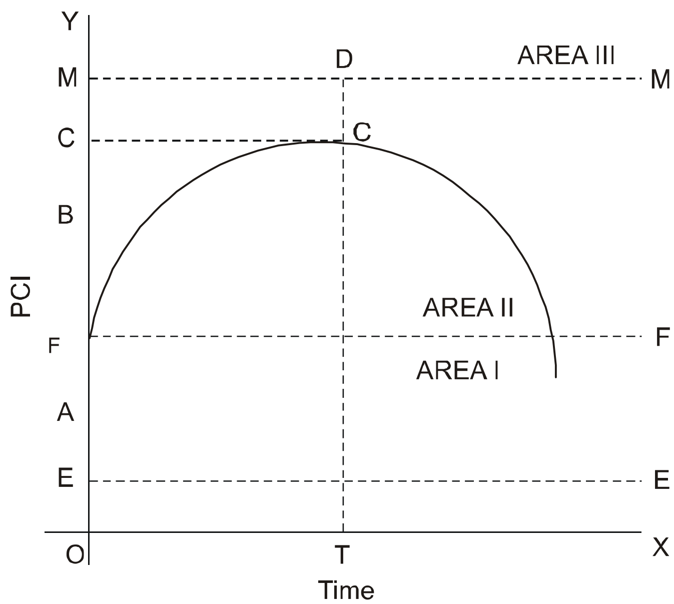

व्याख्या

उपर्युक्त रेखाचित्र में आरम्भ में OM क्रान्तिक न्यूनतम प्रतिव्यक्ति आय के स्तर को – II क्षेत्रों में बांटा है, EE निम्न प्रतिव्यक्ति आय को बताती है MM से ऊपर का क्षेत्र III आत्म जनक वृद्धि का है यदि CA प्रतिव्यक्ति आय है तो निवेश OB स्तर का बढ़ेगा, तब T बिन्दु पर निवेश प्रतिव्यक्ति आय को CD द्वारा बढ़ायेगा, तब क्रान्तिक न्यूनतम स्तर MM तक पहुँचा जाएगा यदि निवेश अनुकूलतम समय तक नहीं किया जाता तो BCY वक्र के CY मार्ग पर निम्न संतुलन स्तर EE की ओर बढ़ेगा।

अनुकूल विनियोग नीति का निर्धारण (Determination of Investment Policy): प्रो हार्वे लीबेन्स्टीन ने अपनी पुस्तक में निम्न बातों को लागू करने पर बल दिया है।

1. प्रत्येक क्षेत्र में न्यूनतम विनियोग होना चाहिए।
2. न्यूनतम आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए विनियोग भिन्न–भिन्न टुकड़ों में किया जाए।
3. विनियोग इस प्रकार से किया जाए कि मानवीय पूंजी, कार्य कुशलता प्रति व्यक्ति उत्पादकता, जीवन स्तर में भी वृद्धि हो।
4. एक लक्ष्य के लिए यदि आवश्यक विनियोग एकत्रित किया जाए तो विदेशी विनियोग से भी कोई परहेज नहीं होना चाहिए।
5. पूंजी की गहन तकनीक को अपनाना चाहिए

क्रान्तिक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या (Critical Explanation of Harvey's Theory)

प्रो. लीबिंसटीन वेन्स्टी ने अपने लेख में कहा कि ''उनका लक्ष्य नुस्खा बनाना नहीं बल्कि समझना और व्याख्या करना है।'' प्रायः नीति निर्धारकों के लिए यह सिद्धान्त सदैव निवेश के आकार और आय के वितरण के निर्धारण में आकर्षण का बिन्दु रहा है यह सिद्धान्त रोजन्स्टीन रोडान के बड़े धक्के के सिद्धान्त से अधिक महत्वपूर्ण है लेकिन फिर भी इसकी आलोचना विभिन्न आधारों पर भी की जा सकती है।

1. **यह सिद्धान्त जन्म दर में कमी के लिए सरकारी प्रयासों की अवहेलना करता है** (It Ignores Government's Efforts to Reduce Birth Rate) : यह सार्वजनिक प्रयासों की उपेक्षा करता है जो जन्मदर में कमी करने के लिए नीतियाँ बनाता है आय के बढ़ने पर जन्मदर कम हो जाती है अब यह तो सम्भव ही नहीं है कि अल्प विकसित देश ये इन्तजार करता रहे कि कब क्रान्तिक न्यूनतम प्रयास की मात्रा बढ़े? कब जन्मदर गिरनी आरम्भ हो? यदि इसी असमंजस में जनसंख्या विस्फोट की स्थिति आ जाए तो बहुत समस्याएं उत्पन्न हो जाएंगी।
2. **समय तत्व की अवहेलना** (Neglect of time Element) : सतत परिवर्तनों के लिए समय तत्व को ध्यान देना आवश्यक है क्योंकि दीर्घकाल में समय और परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए किस प्रकार विनियोग किया जाए किस प्रकार के अन्तर को शामिल किया जाए।
3. **राजकोषीय मौद्रिक नीतियों की अवहेलना** (Neglect of Fiscal & Monetary Policies) : प्रो. लीबेन्स्टीन ने केवल विनियोग विषय पर ही ध्यान दिया है विकास के लिए प्रयुक्त की जाने वाली राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों की उपेक्षा की गई है।
4. **जनसंख्या वृद्धि दर को मृत्युदर से सम्बन्धित किया है** (Population Growth Rate related to Death Rate) : इनका यह आधार तर्कहीन है क्योंकि मृत्युदर में कमी आय वृद्धि के कारण नहीं बल्कि चिकित्सा सुविधाओं, विज्ञान की प्रगति और स्वास्थ्य सुविधाओं में सुधार के कारण होता है।
5. **जन्मदर में कमी प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि के कारण नहीं होती** (Birth Rate Never decrease due to increase in per capital income) : प्रो. लीबिंसटीन

टिप्पणी

की यह दलील भी आधारहीन है क्योंकि जन्मदर में कमी शिक्षा के स्तर, ज्ञान का स्तर, बौद्धिक ज्ञान सामाजिक संस्थाओं के परिवर्तन के कारण होती है केवल आय में वृद्धि से जन्मदर में कमी हो यह सम्भव नहीं है।

6. **यह सिद्धान्त बन्द अर्थव्यवस्था में लागू होती है** (It Implemented in on Closed economy) : यह सिद्धान्त आय और पूंजी निर्माण के सारे विदेशी पूंजी शक्ति और विशेष रूप से बाह्य शक्ति के प्रभाव की व्याख्या नहीं करता इस प्रकार यह बन्द अर्थव्यवस्था में ही लागू होता है।

7. **कुछ प्रतिशत की वृद्धि विकास का मार्ग नहीं है** (Few Percentage Growth Rate is not the Path of Development) : कुछ प्रतिशत की वृद्धि से विकास सम्भव नहीं है ऐसा कम ही होता है कि कोई देश 10 प्रतिशत से 12 प्रतिशत तक निवेश में वृद्धि कर सके और अपने देश की आय की वृद्धि दर को 3 प्रतिशत से ऊपर लेकर आ सके लेकिन कुछ समय बाद ही विकास की वृद्धि दर में कमी होती है और गतिहीनता की स्थिति आने लगती है।

8. **प्रतिव्यक्ति आय और कुल आय वृद्धि का फलनात्मक सम्बन्ध जटिल है** (Complex Relation between per capita Income and growth rate of total income) : प्रति व्यक्ति आय और कुल आय के वृद्धि दर का फलनात्मक सम्बंध जटिल है क्योंकि पूंजी निर्माण का स्तर और प्रतिव्यक्ति आय स्तर के सम्बंध की प्रभावशीलता वहाँ की वित्तीय संस्थाओं और वितरणात्मक ढाँचे पर निर्भर करती है। देश के उत्पादक संगठन को सुधारा जा सकता है। भूमि बचत नवप्रवर्तन को अपनाया जा सकता है। प्रो. लीबेन्स्टीन ने जितना आसान इसे समझा है उतना आसान नहीं है।

निष्कर्ष

इस प्रकार इस सिद्धान्त का सारांश यही है कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं को शीघ्रताशीघ्र क्रान्तिक न्यूनतम प्रयास के सिद्धान्त को अपनाना चाहिए क्योंकि जनसंख्या वृद्धि के साथ व्ययों में भी वृद्धि करने की आवश्यकता होती है और तब उस दशा में बचत करना ही कठिन है विनियोग की मात्रा बढ़ाना तो और कठिन होगा।

अपनी प्रगति जांचिए

9. कौन–सी पुस्तक में न्यूनतम प्रयत्न सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है?
   (क) नोट्स ऑन स्ट्रैटजी ऑफ अनबैलेन्स्ड ग्रोथ
   (ख) इकॉनॉमिक डेवेलपमेण्ट विद अनलिमिटेड सप्लाई ऑफ लेबर
   (ग) नोट्स ऑन द थ्योरी ऑफ द बिग पुश
   (घ) इकॉनॉमिक बैकवर्डनैस एण्ड इकॉनॉमिक ग्रोथ

10. 'न्यूनतम प्रयत्न सिद्धांत' का प्रतिपादक कौन है?
    (क) लीबिंसटीन (ख) ऑर्थर लुईस
    (ग) रेडाने (घ) मिर्डल

3.7 गुन्नार मिर्डल सिद्धांत

टिप्पणी

परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार विदेशी व्यापार आर्थिक विकास का इंजन है क्योंकि इसके कारण निर्यातों को प्रोत्साहन देकर विश्व के सभी देशों में विकास के एक उच्चतम स्तर को प्राप्त कर लिया है। इसलिए यह आवश्यक है कि सभी अर्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं को निर्यात प्रेरित विकास (Export-led Growth) की रणनीति तैयार करनी चाहिए ताकि विकास के मार्ग पर तीव्र गति से अग्रसर हो सके व्यापार आर्थिक समृद्धि की नींव है।

सर्वप्रथम डेविड रिकार्डो ने Principles of Political Economy में 1817 में व्यापार के लाभों पर अपने विचार व्यक्त किये उनका मानना था कि स्वतन्त्र व्यापार आर्थिक विकास का सर्वोत्तम कारक है अधिकांशत विकासशील देशों के द्वारा प्राथमिक वस्तुओं का निर्यात किया जाता है और विकसित देश निर्मित वस्तुओं का निर्यात अर्थविकास देशों को करते है। इसके लिए अर्धविकसित देशों के लिए यह निर्देश दिया जाता है कि इन देशो को व्यापार क्षेत्र में किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाना चाहिए अन्यथा व्यापार से होने वाला लाभ प्राप्त नहीं हो पायेगा।

इसलिए अर्धविकसित देशों का यह प्रयास होना चाहिए कि आयातों में कमी की जाय और निर्यातों को प्रोत्साहित किया जाए जिससे विदेशी विनियम की दर में वृद्धि हो और देश का विकास हो। कुछ प्रमुख अर्थशास्त्रियों जैसे प्रैबिश प्रो. सिंगर, मिर्डल आदि के विचारों से विश्व में कुछ ऐसी शक्तियों उत्पन्न हुई है जो केवल विकसित देशों को लाभ प्रदान करने में सहायक रही इसके कारण व्यापार का लाभ अर्धविकसित राष्ट्रों के स्थान पर विकसित देशों को अधिक हुआ वैसे डेविड रिकार्डो ने अपने सापेक्षिक लागत सिद्धान्त के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को सुदृढ़ता प्रदान की है।

विदेशी व्यापार की भूमिका

आर्थिक विकास की गति को तीव्र करने में विदेशी व्यापार की मुख्य भूमिका रही है विदेशी व्यापार के रास्ते अर्धविकसित देशों के लिए खुल जाने के कारण विश्व के सभी राष्ट्रों को लाभ प्राप्त हुआ जो निम्न प्रकार है–

1. निर्यातों में वृद्धि से राष्ट्रीय आय में वृद्धि हुई।
2. बड़े पैमाने की बचतें प्राप्त होती है।
3. नयी–नयी किस्म की वस्तुओं का उत्पादन होता है। नयी तकनीक के प्रयोग से विकास के मार्ग बनते हैं।
4. विदेशी व्यापार से गतिशीलता को बढावा मिलता है। साधनों का आबंटन व्यवस्थित तरीके से होता है। जे.एस. मिल–साधनों के दक्ष उपयोग द्वारा विदेशी व्यापार का सीधा लाभ प्राप्त होता है।
5. प्रत्येक अर्थव्यवस्था का यह निर्णन लेने में मदद मिलती है कि क्या उत्पादन कैसे करे।

टिप्पणी

6. श्रमिकों का कल्याण होता है क्योंकि निर्यातों में वृद्धि होने से अच्छी और सस्ती वस्तुएं उपभोक्ताओं को उपलब्ध होती हैं। श्रमिकों की उत्पादकता बढ़ती है श्रमिको की मजदूरी दर में वृद्धि होती है श्रमिकों की कुशलता बढ़ती है।
7. अर्धविकसित देशों में आय के साधन उपलब्ध होते हैं राष्ट्र के गरीबी स्तर में कटौती होती है।
8. विदेशी बाजारों में निर्यात संवर्धन में वृद्धि का दवाब बनता है।
9. विश्व बाजार में आयातों में होने वाली प्रतिस्पर्धा बढ़ती जाती है।
10. आर्थिक विकास के लिए विदेशी व्यापार के माध्यम से पूंजीगत वस्तुओं को विदेशों से मंगाया जाता है।
11. उत्पादन के साधनों की उत्पादकता में सुधार होता है और उत्पादन के स्तर में वृद्धि होती है।
12. तकनीकी उन्नति के लिए प्रौद्योगिकी का आयात किया जाता है।

बाधाएं

विश्व अर्थव्यवस्थाओं में असंतुलनकारी शक्तियाँ कार्यशील रहती हैं जिसके कारण प्रत्याशित लाभ नहीं मिल पाते। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विकास को एक इंजन की तरह से चलाने के लिए कुछ समस्याएं सामने आती हैं। अर्थात कुछ रुकावटें आती हैं जो निम्नलिखित है आय और रोजगार दोनों बढ़ते हैं।

1. निर्मातों में अद्भुत वृद्धि होने के कारण अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों की अवहेलना हुई इसलिए जितना योगदान देना चाहिए था उतना नहीं दे पायी।
2. व्यापार चक्रों में अधिक उतार चढाव और भुगतान शेष की कठिनाइयों के कारण भी विदेशी व्यापार की शर्तें प्रतिकूल हो जाती हैं।
3. निर्यातों पर बढती निर्भरता ने अर्थव्यवस्थाओं के अन्तर्गत वस्तुओं की कीमतों और मांग में काफी असंतुलन उत्पन्न किया।
4. अर्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं में व्यापार शर्तो में वृद्धि और सुधार होने के बाद भी वहाँ उत्पादन और रोजगार में वृद्धि नहीं होती क्योंकि पूरक पूंजी की अपर्यापृता, बाजारों का अपूर्ण होना और संरचनात्मक समायोजन के कारण आर्थिक विकास में बाधा आती है।
5. निर्यात से मिलने वाल आय को प्रदर्शनकारी, वस्तुओं के व्यय विदेशी विनियम, सट्टे आदि पर नष्ट कर दी जाती है जिसके फलस्वरूप मुद्रास्फीति की दरों में वृद्धि विनिवेश और भुगतान शेष का प्रति कूल होने से कई समस्याएं दृष्टिगोचर होती हैं।
6. व्यापार की शर्तों में ह्रास उत्पन्न होने के कारण अर्धविकसित देशों में आयात करने की क्षमता में वृद्धि हो जाती है जिससे विदेशों में मुद्रा की निकासी होती है। विदेशी मुद्रा में कमी राष्ट्रीय आय में कमी प्रतिव्यक्ति आय में कमी होती है और भुगतान शेष असंतुलित हो जाता है।

7. ऋण पर ब्याज, ऋण सेवा का भार बढ़ जाता है। विदेशी निवेश तथा आर्थिक सहायता के अन्र्तप्रवाह की अधिक आवश्यकता होती है। निजी प्रत्यक्ष विदेशी निवेश लाभ और लाभाशों के आय भुगतान में वृद्धि हो जाती है निवल प्रवाह में कमी हो जाती है।

टिप्पणी

8. व्यापार असंतुलन के कारण विदेशी विनिमय रिजर्व में कमी हो जाती है जिससे अर्धविकसित देशों के विकासात्मक कार्यक्रमों का क्रियान्वयन में रुकावट आती है।

9. विकसित देशों में व्यापारिक नीतियाँ अपने लाभ को ध्यान में रखकर बनायी जाती है। विकसित देशों से निर्मित माल अर्धविकसित देशों को निर्यात किया जाता है जो महंगा होता है और अर्धविकसित देशों की आय का काफी बड़ा हिस्सा विकसित देशों को चला जाता है जो उनकी आय और लाभ में वृद्धि होती है जबकि अर्धविकसित देशों से प्राथमिक वस्तुओं और कच्चा माल विकसित देशों को बेचा जाता है जो सस्ता होता है और आय में वृद्धि नहीं कर पाता। इस प्रकार अर्धविकसित देशों को विकसित देशों की तुलना में विदेशी व्यापार के क्षेत्र में काफी समस्याओं का सामना करना पड़ता है जबकि इसके लिए विभिन्न प्रयास किये जाते रहे हैं अर्धविकसित देशों को ऐसी नीतियों का सम्मिश्रण तैयार करना होगा जिससे निर्यातों में वृद्धि हो सके और आवश्यक वस्तुओं का आयात सम्भव हो सके।

प्रो. हेबर्लर का मत

यद्यपि विदेशी व्यापार ने अन्तर्राष्ट्रीय असमानताएं उत्पन्न की है जिनके कारण गरीब देशों की तुलना में अमीर देश और अधिक अमीर हुए हैं इसलिए दृढ़तापूर्वक यह कह सकते हैं कि अर्धविकसित देशों को यदि अन्तर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण के लाभों को त्याग पड़े तब भी वे देश आयात प्रतिस्थापन नीतियों के क्रियान्वयन से आर्थिक विकास की दर में बढ़ोतरी कर सकते हैं।

प्रैबिश–सिंगर–मिर्डल के विचार

प्रो. डेविड रिकार्डो के सापेक्षिक लागत सिद्धान्त पर आधारित उपर्युक्त विश्लेषण का रॉल प्रैबिश, हैंस सिंगर और गुन्नार मिर्डल जैसे प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने आलोचना की है। इनके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अर्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए अवरोध है इस संदर्भ में उन्होंने निम्न प्रकार तर्क दिए हैं।

1. **अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनकारी प्रभाव का प्रतिकूल होना** : विदेशी व्यापार के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव ने पूंजी निर्माण पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है क्योंकि अर्धविकसित अर्थव्यवस्थाएं व ऊँचे जीवनस्तर और सर्वोत्तम उपभोक्ता वस्तुओं का अनुकरण करती है तो लोगों को अधिक प्रयास करने पड़ते हैं और उत्पादकता वृद्धि के लिए प्रेरणा तो देती है लेकिन इसके लिए लोगों की अपनी आय का बड़ा हिस्सा प्रदर्शनकारी वस्तुओं पर व्यय करना पड़ता है। इस प्रतिस्पर्धा के चलते उनकी आय में कमी होती है तो बचत और निवेश पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

2. **निर्यात के अधिक्य का प्रभाव** (Effects of Excess Exportation)

(1) यदि अर्धविकसित देशों में और विकसित देशों में स्वतन्त्र व्यापार होता है तो अतिनियति विकसित देशों को तो शक्तिशाली बनायेगा जबकि अल्प विकसित देशों को कमजोर। इस संदर्भ में प्रो. मिर्डल के विचार इस प्रकार है – ''विदेशी व्यापार अमीर और उन्नतशील देशों के पक्ष में और पूर्णतः अनुकूल अर्धविकसित देशों में प्रतिकूल कार्य करता है।''

(2) अमीर अर्थव्यवस्थाओं में निर्माण उद्योग का विस्तार प्रबलता से होता है तो वे औद्योगिक उत्पादन का कम कीमत पर गरीब अर्थव्यवस्थाओं की निर्यात कर देते हैं जिससे इन देशों में लघु उद्योग, दस्तकारी उद्योगों का पतन होने लगता है वो केवल कच्चे माल का उत्पादक बन जाते हैं और निर्यात बाजार में कच्चे माल की कीमतों में उतार चढ़ाव का परिणाम ज्यादा होता है तो लाभ की मात्रा भी कम हो जाती है।

(3) प्राथमिक वस्तुओं के उत्पादन की मांग बेलोचदार होती है।

(4) बदलते निर्यात से प्राप्त आय स्फीतिक दबाव में आ जाते हैं भुगतान शेष में समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है।

(5) आय उपभोग प्रदर्शन आदि में व्यय होगी।

3. **व्यापारिक शर्तों में गिरावट**– प्रो. प्रैबिश के अनुसार : अर्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं की व्यापार शर्तों में दीर्घ कालीन ह्रास हुआ है।

गत वर्षों में अर्धविकसित राष्ट्रों को इसके बुरे परिणाम दिखाई दिए हैं इनके कारण

(1) आयात क्षमता में निरन्तर दुर्बलता

(2) अति जनसंख्या का होना।

(3) जिससे प्राथमिक उत्पादन उद्योगों की क्षमता का कमजोर होना।

(4) उत्पादन में बेरोक टोक प्रयास करने से बेरोजगारी में वृद्धि, व्यापार शर्तों में सुधार न होना बल्कि गिरावट आई है और भुगतान शेष असंतुलन हुआ है।

(5) प्रौद्योगिकीय उन्नति के प्रयास का फायदा न होना।

दीर्घकालीन ह्रास से तात्पर्य ''गरीब राष्ट्रों से अमीर राष्ट्रों की ओर आय का हस्तान्तरण होना दीर्घकालीन ह्रास कहलाता है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से अमीर देशों को लाभदायक परिणाम मिले हैं जबकि अल्पविकसित देशों की आय क्षमता और विकास क्षमता में गतिहीनता आई है।''

उपर्युक्त आलोचनाएँ आधारहीन हैं, क्योंकि इन आलोचनाओं के संदर्भ में कोई भी ऐसा प्रमाण नहीं है कि किसी भी देश ने नुकसान वहन करके निर्यातों को बढ़ावा दिया हो। विदेशी पूंजी के प्रयोग से अल्पविकसित देशों में निवेशकर्त्ताओं को उत्पादन की प्रेरणा दी है। जिसके कारण स्वतः ही निर्वाह अर्थव्यवस्था विनिमय अर्थव्यवस्था में परिवर्तित होती गई।

अपनी प्रगति जांचिए

11. परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्धविकसित देशों के तीव्र विकास के लिए किस प्रकार की रणनीति अपनानी चाहिए?
    (क) पंचशील सिद्धांत (ख) निर्यात प्रेरित विकास
    (ग) श्रम–पूंजी समन्वय (घ) इनमें से कोई नहीं
12. 'प्रिंसिपल्स ऑफ पॉलिटिकल इकॉनॉमी' के लेखक कौन हैं?
    (क) डेविड रिकार्डो (ख) शुम्पीटर
    (ग) स्मिथ (घ) गुन्नार

3.8 हैरोड–डोमर मॉडल

हैरोड डोमर का आर्थिक विकास का मॉडल अमीर देशों के अनुभवों से प्रभावित है। आर. एफ. हैरोड और ई.डी. डोमर ऐसे अर्थशास्त्री हैं जिन्होंने कीन्स की अल्पकालीन रोजगार का स्थैतिक सिद्धान्त और दीर्घकालीन गत्यात्मक वृद्धि के मध्य एक बांध तैयार किया दोनों ही अर्थशास्त्रियों ने एक निर्बाध हस्तक्षेप रहित अर्थव्यवस्था की दशाओं को निर्धारित किया उनका मानना था कि अर्थव्यवस्था के विकास के लिए राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि के लिए एक विकास की ऐसी मान्यताओं की स्थापना करना जिससे बन्द अर्थव्यवस्था में भी आय वृद्धि के लिए निवेश प्रक्रिया को प्रोत्साहित किया जा सके क्योंकि (1) निवेश आय में वृद्धि में सहायक होता है। (2) निवेश अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादक क्षमता को विस्तृत करता है अर्थात पूंजीगत साधनों की मात्रा को बढ़ाता है।

यद्यपि दोनों अर्थशास्त्रियों का विकास मॉडल भिन्नता लिये हुए हैं तथापि इनमें समानता भी है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि एक अर्थव्यवस्था में निर्बाध कार्यकरण के लिए आवश्यक आय संवृद्धि दर का निर्माण करने में दोनों ही अर्थशास्त्रियों की समान राय थी।

हैरोड का विकास मॉडल (Harrod Model of Growth) : हैरोड ने अपने सिद्धान्त के सतत वृद्धि की सम्भावनाओं का परीक्षण किया जिसमें कहा गया कि विकास का मार्ग सपाट और निर्बाध नहीं होता इसको प्राप्त करने और कायम रखने के लिए काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अर्थव्यवस्था में असंतुलन पाया जाता है तो संचयी शक्तियाँ इस विचलन को बनाए रखने में सहायक होती हैं। जिससे दीर्घकालीन स्फीतियाँ अवस्फीति उत्पन्न हो सकती है।

हैरोड के अनुसार : ''त्वरक और गुणक के सिद्धान्तों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध है'' हैरोड का मुख्य उद्देश्य सतत वृद्धि की अवस्थाओं को ज्ञात करना और विकास की सम्भावनाओं को खोजना जिससे देश बिना बाधाओं के प्रगति की ओर अग्रसर हो सके।

मान्यताएं : हैरोड का मॉडल अग्रलिखित मान्यताओं पर आधारित है–

1. निवेश की दर उत्पादन व आय वृद्धि की दर पर आधारित होती है।

टिप्पणी

2. पूर्ण रोजगार की अवस्था का पाया जाना।
3. हस्तक्षेपरहित अर्थव्यवस्था का पाया जाना ।
4. अर्थव्यवस्थ्या में वास्तविक बचतें और प्रत्याशित बचतें बराबर होती हैं अर्थात MPS = APS
5. उत्पादन का उद्देश्य सतुंलन की अवस्था को प्राप्त करना।
6. अर्थव्यवस्था में वास्ताविकविनियोग और प्रत्याशित विनियोग भी बराबर होता है अर्थात S = I
7. कीमत स्तर तथा ब्याज की दर स्थिर होती है।
8. आय और पूंजी मुणांक के अनुपात में कोई परिवर्तन नहीं होता है।
9. श्रम–पूंजी अनुपात और पूंजी उत्पाद अनुपात में कोई परिवर्तन नहीं।
10. पूंजीगत वस्तुओं का घिसावट मूल्य नहीं होता।

हैरोड के विकास मॉडल के घटक : हैरोड ने अपने विकास मॉडल में तीन घटकों को शामिल किया है–

1 वास्तविक वृद्धि दर
2. प्रमाणित वृद्धि दर/इच्छित वृद्धि दर
3. प्राकृतिक वृद्धि दर

1. **वास्तविक वृद्धि दर** (G) हैरोड ने वास्तविक वृद्धि दर को G से दर्शाया है यह बचत अनुपात (S) और पूंजी उत्पाद बढ़ते अनुपात (C) को निर्धारित करते हैं यह अल्पकलीन अवधारणा है जो चक्रीय उतार चढ़ावों से सम्बधित है।

   GC = (1)

   G → एक समयावधि में उत्पादन की वृद्धि दर है इसको इस प्रकार व्यक्त करते हैं

   $$¾ \frac{\Delta y}{y} \quad ¾ \quad \frac{\text{आय में परिवर्तन}}{\text{कुल आय}} \quad \text{या} \quad \frac{\text{आय में वृद्धि}}{\text{कुल आय}}$$

   C → पूंजी में अतिरेक वृद्धि और निवेश का आय वृद्धि से अनुपात। इसको इस प्रकार स्पष्ट कर सकते है।

   $$= \frac{I}{\Delta y} \quad \text{या} \quad \frac{\text{निवेश}}{\text{आय में वृद्धि}}$$

   S = APS औसत बचत प्रवृत्ति अर्थात $\frac{s}{y}$

   इन सभी समीकरणों को निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

   $$\frac{\Delta y}{y} \times \frac{I}{y} = \frac{s}{y} \qquad \frac{i}{y} = \frac{s}{y} \quad \text{या } S = I$$

इस प्रकार उपर्युक्त समीकरण में स्पष्ट है कि वास्तविक बचतें = वास्तविक निवेश

(a) बचत (s) आय (y) पर निर्भर करती है (b) निवेश (i) आय में वृद्धि (Dy) पर निर्भर करता है। यह त्वरण सिंद्धान्त की व्याख्या करता है।

2. **प्रमाणित वृद्धि दर** (GW) : यह घटक सतत विकास के लिए साम्य स्तर को स्पष्ट करता है अर्थात आय की अधिकतम वृद्धि दर को दर्शाता है। यह उन अभीष्ट वृद्धि दर है जिस पर फर्म या उत्पादक अपने उत्पादन से संतुष्ट होते हैं यही उद्यमीय साम्य है और यही प्रगति का द्योतक है इसलिए उद्यमियों को उच्चतम लाभ प्राप्त होने पर संतुष्टि प्राप्त होती है। यह प्रमाणित वृद्धि इतनी उच्च होती है कि उद्यमी अपने सभी उत्पादन की पूर्ति कर सकते हैं और यदि वृद्धि को प्रतिशत दर से निरन्तर उत्पादन करते हैं तो सतत वृद्धि प्राप्त होगी इस प्रकार उत्पादन पूर्ण क्षमतानुसार होता है तो उत्पादन को प्रेरित करेगा विकास का रास्ता दिखाई देगा वैसे भी यह वृद्धि दर उत्पादकों के व्यवहार से सम्बन्धित है।

$$GW\ Cr = S \qquad \text{(II)}$$

GW प्रमाणित/अभीष्ट वृद्धि दर

Cr आय की पूर्णक्षमता दर

पूंजी आवश्यकताएँ अर्थात पूंजी उत्पादन अनुपात

$$S = MPS\ \frac{\Delta s}{\Delta y}$$

उपर्युक्त समीकरणों से स्पष्ट होता है कि सतत विकास के लिए पूंजी की पूर्ण क्षमतानुसार उपयोग की आवश्यकता है और इसके लिए आय में प्रतिवर्ष की दर से बढ़ोतरी की जानी चाहिए इसको निम्न सूत्र में व्यक्त किया जा सकता है।

दीर्घकालीन असाम्य अवस्था की उत्पति :

इसी प्रकार रोजगार में संतुलित वृद्धि के लिए निम्न बातों का होना अनिवार्य है।

1. वास्तविक वृद्धि दर = प्रमाणित या अभीष्ट वृद्धि दर

   $G = GW$

2. पूंजीगत स्टॉक = पूंजी उत्पाद अनुपात

   $C = Cr$

3. यदि $GW < G$ तो $C < Cr$ तो दुर्लभताएं पूंजीगत वस्तुओं का अभाव वस्तुओं और उपकरणों की अपर्याप्त होंगे तो दीर्घकालीन स्फीतिक अन्तराल होगा अर्थात अतिरेक मांग की अवस्था होगी।

यदि $GW > G$ तो $C > Cr$ तो मांग < पूर्ति आय उत्पादन रोजगार का निम्न स्तर होगा।

इन सब के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में अवस्फीतिक अन्तराल उत्पन्न होना अर्थात न्यून मांग की अवस्था होगी।

हैरोड का कहना है कि यदि वास्तविक वृद्धि दर (G) और प्रमाणित या अभीष्ट वृद्धि दर (G.W) अलग होते जाते है तो मह साम्य की स्थिति से खिसक कर दूर होने लगेगा। प्रगति की सीमारेखा पर डटे रहने के फलस्वरुप संतुष्टि प्राप्त हो सकती है। लेकिन उसे असंतुलित करने वाली शक्तियों सदैव क्रियाशील रहती है जो अर्थव्यवस्था को प्रगति की सीमारेखा से हटाने का प्रयास करती है अर्थात अवरोधक शक्तियाँ विकास की विपरीत दिशा में कार्य करेगी और साम्य स्थिति मांग होगी तो यह स्वयं सतुंलन में नहीं आयेगा। इसलिए दीर्घकालीन स्थायित्व को बनाये रखने के लिए सरकारी नीतियों को प्रयास करना चाहिए इसके लिए G और GW को एक साथ रखा जाए।

3. **नैसर्गिक या प्राकृतिक वृद्धि दर** (Natural Growth Rate) : प्राकृतिक वृद्धि दर अर्थव्यवस्था के समग्र चरों पर आधारित होती है इसको पूर्ण रोजगार दर या संवृद्धि की सामान्य पर भी कहा जा सकता है यह दर अर्थव्यवस्था के प्राकृतिक ससांधनों औद्योगिक उन्नति जनसंख्या श्रम की उपलब्धता, पूंजीगत उपकरण पर निर्भर करती है। यह तकनीकी उन्नति के कारण प्राप्त पूर्ण रोजगार की अवस्था में होने वाले उत्पादन की वृद्धि दर है।

   $Gn. Cr = \text{or} \neq S$, Gn प्राकृतिक वृद्धि की दर

G, GW तथा G_n में अंतर : पूर्ण रोजगार की अवस्था को प्राप्त करने के लिए वास्तविक वृद्धि दर प्रमाणित वृद्धि दर, और प्राकृतिक वृद्धि दर का बराबर होना अनिवार्य है जो धारदार छुरी साम्य की स्थिति है।

यदि इन तीनों में भिन्नता होगी तो देश में दीर्घकालीन स्थायित्व या स्फीतिक स्थितियों का जन्म होगा।

1. यदि $G < Gw$ की स्थिति है तो निवेश की अपेक्षा बचत में तीव्रता से बढ़ोत्तरी होगी तथा आय 1 में वृद्धि GW की अपेक्षा निम्न होगी और दीर्घकालीन मंदी आयेगी।
2. यदि $G > Gw$ की स्थिति है तो बचत की अपेक्षा निवेश तेजी से बढ़ेगा और आय में Gw की अपेक्षा तेजी से वृद्धि होगी और दीर्घकालीन स्फीति तेजी से आयेगी।
3. हैरोड के अनुसार : यदि $Gw > Gn$ की स्थिति है तो दीर्घकालीन गतिहीनता का जन्म होगा $Gw > Gn$ की स्थिति बनेगी क्योंकि वास्तविक दर (G) पर उच्च सीमा प्राकृतिक दर (Gn) निश्चित होती है। अतिरिक्त क्षमता पाई जाती है और दीर्घकालीन मंदी आती है।
4. यदि $Gw < Gn$ की स्थिति है तो अर्थव्यवस्था में दीर्घकालीन तेजी की उत्पत्ति होगी, श्रम की उपलब्धता अधिक होगी, पूंजीगत पदार्थो की अपर्याप्तता पाई जाती है। लाभ की मात्रा अधिक होगी क्योंकि अनुमानित निवेश > वास्तवकि निवेश की स्थिति होती है। उत्पादक वर्गों के पास पूंजी स्टॉक में वृद्धि की प्रवृत्ति पाई जाएगी जिससे बचत की दर प्रमाणित वृद्धि दर को बढ़ाने में सहायता करेगी।

5. हैरोड के उत्पादन फलन में श्रम और पूंजी को प्रतिस्थानापन्न करके, बचत अनुपात को लाभ दर का फलन मान कर, श्रमशक्ति की वृद्धि दर को परिवर्तनीय बनाकर स्वतन्त्र करने का प्रयास किया है।

इस प्रकार अर्थव्यवस्था में उत्पन्न स्फीतिक और अवस्फीतिक स्थितियों से बचने के लिए और बचतों में वृद्धि के लिए प्राकृतिक वृद्धि दर, प्रमाणित वृद्धि दर और वास्तविक वृद्धि दर को बराबर होना चाहिए।

$$Gn = Gw = G$$

हैरोड के विकास मॉडल की आलोचनाएं (Criticism of Harrod's Growth Model)

हैरोड के मॉडल की आलोचनाएं निम्न आधार पर की गई है –

1. हैरोड का मॉडल अर्द्धविकसित राज्यों की समस्याओं और आवश्यकताओं के समाधान में सहायक नहीं है।
2. अर्द्धविकसित देशों में आर्थिक विकास को तीव्र करने के सुझावों की आवश्यकता होनी चाहिए। पूर्ण रोजगार के स्तर को कायम रखने की इतनी आवश्यकता नहीं है जितनी हैरोड का विकास मॉडल इस पर बल देता है। विकास में तीव्रता लाने के लिए किए गए प्रयासों पर अधिक बल देना चाहिए।
3. हैरोड की मान्यता है कि केवल प्रमाणित या इच्छित वृद्धि से ही विकास हो सकता है गलत है क्योंकि इच्छित वृद्धि दर (GW) से निर्धारक कारकों की विवेचना नहीं की जा सकती है।
4. यह विकास मॉडल आय में कैसे वृद्धि हो इन कारकों की व्याख्या नहीं करता केवल आय वृद्धि की संचयी प्रक्रिया को ही स्पष्ट करता है। आय वृद्धि के लिए इसके कारणों को खोजने का प्रयत्न करना चाहिए।
5. हैरोड का विकास मॉडल प्रमाणित वृद्धि दर (GM) में असाम्य की अवस्था क्यों उत्पन्न होती है? इसके कारणों की व्याख्या करने में असमर्थ है।
6. हैरोड ने अपने विकास मॉडल में ब्याज की दर, नवप्रवर्तन की कार्य विधि और पूंजी उत्पाद अनुपात की दरों को स्थायी मान लिया है जो अव्यवहारिक है क्योंकि अर्थव्यवस्था में कभी भी स्थिरता हो ही नहीं सकती समाज में परिवर्तनीयता होने के कारण व्यापार में उतार चढ़ाव, तकनीकी परिवर्तनों, प्रगति के कारण इन सभी क्रियाओं में परिवर्तन स्वाभाविक है।

डोमर का विकास मॉडल

डोमर का मानना है कि अर्थव्यवस्था पर आर्थिक क्रियाओं का दोहरा प्रभाव पड़ता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए डोमर ने विकास मॉडल का निर्माण किया क्योंकि निवेश में वृद्धि के फलस्वरूप न केवल आय में वृद्धि होती है बल्कि उद्यमी क्षमताओं में भी वृद्धि होती है, पूंजीगत भण्डार की बढ़ोतरी में भी सहायक होती है। उत्पादन क्षमता विस्तृत होती है पर अब प्रश्न यह उठता है कि अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार के स्तर को बनाने के लिए निवेश में किस दर से बढ़ोतरी की जाए ताकि उत्पादन को स्तर और आय स्तर में वृद्धि की जा सके।

टिप्पणी

डोमर के विकास मॉडल की मान्यताएं (Assumption of Domar's Growth Models)

डोमर के विकास का माडल निम्न मान्यताओं को आधार मानता है।

1. अर्थव्यवस्था में आय का स्तर प्रारम्भिक पूर्ण रोजगार को प्राप्त कर चुका है।
2. समायोजन में किसी भी प्रकार का धीमापन नहीं है।
3. विदेशों से कोई व्यापार नहीं होता।
4. सरकारी हस्तक्षेप नहीं पाया जाता।
5. बचत प्रवृत्ति में स्थिरता होती है।
6. पूंजी गुणांक (जो उत्पादन के पूंजी भण्डार का अनुपात है) स्थिर होता है।
7. सीमान्त और औसत बचत प्रवृत्ति समरूप होती है।
8. वास्तविक आय और मौद्रिक आय एक ही है।
9. बचत और निवेश एक समयावधि की आय को दर्शाता है।

डोमर के विकास मॉडल की विशेषताएं

1. पूर्ण रोजगार के स्तर को प्रोत्साहन देने के लिए आय के स्तर में वृद्धि निम्न दर से होनी चाहिए।

$$\frac{\text{बचत प्रवृति}}{\text{पूंजी उत्पाद अनुपात}}$$

2. आर्थिक विकास में तीव्रता के लिए निवेश एक महत्वपूर्ण घटक है निवेश के द्वारा आया स्तर और उत्पादन क्षमता को बढ़ावा मिलता है।
3. उत्पादन क्षमता में बढ़ोतरी दो कारकों पर निर्भर करती है।
   (अ) प्रभावी मांग – मांग में वृद्धि होने से उत्पादन में वृद्धि होती है रोजगार के अवसर प्राप्त होते है, आय के साधन उपलब्ध होते है।
   (ब) अभावी मांग – मांग में कमी होने पर उत्पादन में कमी होती है रोजगार के अवसरों का अभाव होता है। जिससे बरोजगारी में वृद्धि होती है आय के साधन कम हो जाते है।
   (स) यदि निवेश करने से प्राप्त आय उच्च्य स्तर तक पहुंच जाती है और सम्पूर्ण अर्थव्यस्था सम्पूर्ण अतिरिक्त उत्पदान का उपभोग कर लेती है तो प्रभावी मांग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा अर्थात निम्न नहीं होगी बशर्ते कि वास्तविक आय और मौद्रिक आय समान रहे।
5. पूर्ण रोजगार के स्तर को प्राप्त करने के लिए मांग और पूर्ति की शक्तियों में साम्य स्थापित करना आवश्यक होता है।
6. अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त मांग और न्यून मांग की स्थितियां उत्पन्न नहीं होनी चाहिए अन्यथा आर्थिक विकास में बाधाएं उजागर होगी।

डोमर के विकास माडल की व्याख्या (Explanation of Domar's Growth Model)

आय के पूर्ण रोजगार के संतुलन के लिए उत्पादन की मांग उत्पादन की पूर्ति के बराबर होना अनिवार्य है इसलिए पूर्ण रोजगार के स्तर का बनाये रखने में मांग व पूर्ति का काफी योगदान है।

मांग पक्ष – कीन्स की गुणाक प्रक्रिया को आधार मानकर डोमर ने मांग पक्ष का विश्लेषण किया है माना यदि राष्ट्रीय आय में $\Delta\psi$ वार्षिक वृद्धि है तो निवेश में वृद्धि ΔI की I/α गुना होगी या $\Delta\Psi = I\ 1/\alpha$ यहाँ पर गुणक है।

या

$$\therefore\ Y = I\ 1/\alpha$$

पूर्ति पक्ष – डोमर के अनुसार यदि निवेश की वार्षिक दर I है और नई पूंजीगत मशीनों की उत्पादन क्षमता S के बराबर है तो I डालर उत्पादन क्षमता IS डालर वार्षिक होगी और पुरानी मशीनों के स्थान पर नयी पूंजी का उपभोग भी किया जा सकता है। इस दशा में वार्षिक उत्पादन क्षमता IS से कम होगी। इसका $I\sigma$ से दर्शाया है।

$\Delta\Psi = I\sigma$ $\qquad$ $I\sigma$ डोमर का पूर्ति पक्ष

निवेश की औसत उत्पादकता $\sigma = \Delta\psi / I$

$I\sigma$ उत्पादन में कुल शुद्ध संभाव्य वृद्धि सिग्मा प्रभाव भी कहते हैं।

साम्य (Equilibrium) – **डोमर के अनुसार** : विकासशील अर्थव्यवस्था में पूर्ण साम्य की दशा निर्धारित करने के लिए पूर्ण रोजगार के साम्य की मान्यता को आवश्यक माना जाना चाहिए अर्थात राष्ट्रीय आय और उत्पादक क्षमता बराबर होनी चाहिए।

या राष्ट्रीय आय = उत्पादक क्षमता

पूर्ण रोजगार के स्तर को कायम रखने के लिए आय और क्षमता वृद्धि एक समान दर से होनी चाहिए

डोमर का आधारभूत समीकरण (Fundamental Equation of Domar)

$\Delta I\ {}^{1}/_{\alpha} = I\sigma$ यदि इन दोनों तरफ के α से गुना करे और I से विभाजित करे तो निम्न सभीकरण प्राप्त होगा।

$\Delta I/I = \alpha\sigma$

साम्य के बांयी तरफ की स्थिति निवेश में सापेक्षिक वृद्धि को स्पष्ट करती है अर्थात पूर्णरोजगार के स्तर को संतुलित रखने के लिए निवेश में $\alpha\sigma$ की वार्षिक सापेक्षिक दर में बढ़ोतरी होनी चाहिए तभी आर्थिक विकास सम्भव होगा।

उदाहरणार्थ :– यदि $\alpha = 12\%$ $\sigma = 30\%$ $y = 175$ बिलियन डालर वार्षिक पूर्ण रोजगार स्तर को चालू रखने के लिए

(i) $\Delta\Psi = I/\alpha$ $\qquad$ $\Delta I = 175 = 1/12\%$ or $175 \times 12/100$

या

$\Delta I = \Delta\psi\alpha =$ 21 बिलियन डालर वार्षिक

इस प्रकार उत्पादक क्षमता में निवेश में σ गुणा वृद्धि होगी।

$175 \times 12/100 \times 30/100 = 6.3$ बिलियन डालर वार्षिक

टिप्पणी

(ii) $\Delta I.\sigma = 21 \times 30 / 100 = 6.3$ बिलियन डालर

(iii) $\Delta\psi/\psi = 6.3 / 175 = 0.036\sigma = 12 / 100 \times 30/100 = 0.036$

इस प्रकार पूर्ण रोजगार के स्तर को कायम रखने के लिए आय में 0.336 प्रतिशत की दर से वृद्धि होनी चाहिए।

इस विकास के मार्ग में अन्तर के फल स्वरूप चक्रीय उतार चढ़ाव होंगे जब $\alpha\sigma$ से $\Delta I / I$ अधिक होगा तो अर्थव्यवस्था में तेजी काल (तीव्रता) आयेगी और जब $\alpha\sigma$ से $\Delta I/I$ कम होगा तो अर्थव्यवस्था में मंदी काल की स्थित होगी।

डोमर के विकास मॉडल की आलोचनाएं (Criticism of Domar's Growth Model)

1. साधनों का प्रयोग स्थिर होता है डोमर का यह कथन त्रुटिपूर्ण है क्योंकि इस मान्यता के साथ आर्थिक विकास सम्भव नहीं है।
2. डोमर ने बचत प्रवृत्ति और पूंजी उत्पादन अनुपात को स्थिर माना है यह अवधारणा अल्पकालीन है लेकिन दीर्घकाल में सभी साधन परिवर्तनशील हो जाते हैं।
3. डोमर ने कीमत स्तर के प्रभावों की अवहलेना की है जबकि अर्थव्यवस्था में कीमतों का अध्ययन भी आवश्यक है क्योंकि कीमत स्तर में परिवर्तन से आय में भी परिवर्तन होता है कीमतें बढ़ जाने से वास्तविक आय कम, बचत प्रवृत्ति कम और कीमतें घट जाने से वास्तविक आय का स्तर बढ़ जाता है बचत प्रवृत्ति बढ़ जाती है।
4. डोमर ने अपने मॉडल में विकास दर की अपेक्षा की है। पूर्ण रोजगार को कायम रखने के लिए नियमित आय होनी चाहिए लेकिन आय के स्तर में किन कारणों से वृद्धि होनी चाहिए जिससे विकास दर में वृद्धि हो सके इसका विश्लेषण डोमर ने नहीं व्यक्त नहीं किया है।
5. डोमर का विकास मॉडल सामूहिक अवधारणाओं की व्याख्या करता है जो कि अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए सम्भव नहीं है क्योंकि उन राष्ट्रों में एक वर्ग ऐसा भी होता है जिनकी आय या तो शून्य होती है या नियमित नहीं होती तो ऐसी स्थिति में अनुत्पादक वर्ग की एक फौज खड़ी होती है जो निवेश या बचत में योगदान नहीं करती बल्कि केवल उपभोग पर ही ध्यान देती है। इस लिए आर्थिक विकास या पूर्ण रोजगार के स्तर को संतुलित करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

हैरोड–डोमर के विकास मॉडल की सीमाएं/आलोचनाएं

हैरोड डोमर मॉडल की कुछ धारणाएं ऐसी हैं जब यह लागू नहीं होती

1. हैरोड डोमर दोनों ने ही सामान्य कीमत स्तर को स्थिर माना है पर ऐसा नहीं है क्योंकि अर्थव्यवस्था में परिर्तन होने के कारण कीमत स्तर भी परिवर्तित होती है।
2. श्रम और पूंजी के अनुपात को स्थिर नहीं माना जा सकता क्योंकि सामान्य रूप से श्रम के लिए पूंजी का और पूंजी के लिए श्रम का प्रतिस्थानापन्न किया जाता है तभी अर्थव्यवस्था विकास मार्ग पर अग्रसर हो सकती है।

टिप्पणी

3. ब्याज की दरें निश्चित नहीं होती ब्याज की दरे सदैव परिवर्तित होती रहती हैं जो निवेश को भी परिवर्तित करती रहती है अधिशेष उत्पादन अवधि में ब्याज की दर कम होती है तो पूंजी के लिए मांग में वृद्धि करके पूंजीगहन प्रक्रियाओं को अधिक फलदायक बना सकती है जो वस्तुओं की अतिरिक्त पूर्तियों को कम करती हैं।
4. उपभोग वस्तुओं और पूंजीगत वस्तुओं में अंतर नहीं करते ये विकास मॉडल सभी वस्तुओं को एक समान मानते हैं जो गलत है।
5. प्रो. रौस के अनुसार : ये विकास मॉडल अस्थिरता का कारण उत्पादन निर्णयों पर अतिरेक मांग और अतिरेक पूर्ति के प्रभाव है न कि निवेश निर्णयों में पूंजी दुर्लभताओं या बहुलता के प्रभाव में।
6. बचत प्रवृत्ति और पूंजी उत्पादन अनुपात के स्थायी माना है जबकि दीर्घकाल में ये दोनों ही बदलते हैं।
7. संरचनात्मक, सार्वजनिक कार्यक्रमों और नीतियों की अवहेलना की है।

हैरोड डोमर के विकास मॉडल का तुलनात्मक अध्ययन : दोनों अर्थशास्त्रियों के विकास मॉडलों को उनकी समानता और असमानता के आधार पर तुलना योग्य बनाया जा सकता है।

1. समानताओं के आधार पर

1. दोनों मॉडल बचत और निवेश की धारणाओं पर आधारित जिससे अर्थव्यवस्था में साम्य को कायम रखा सकता है।
2. पूर्ण रोजगार अधिशेष को पूर्णतया उपयोग किया जा सके इतना आय का स्तर अर्थव्यवस्था में होना ही चाहिए।
3. हैरोड और डोमर दोनों ही अर्थशास्त्रियों की अवधारणाओं का प्रारम्भिक बिन्दु विनियोग में वृद्धि और अन्तिम बिन्दु पूर्ण रोजगार के स्तर को प्राप्त करना है।
4. दोनों ही अर्थशास्त्रियों ने अल्पविकसित देशों में तीव्र विकास की आवश्यकता पर बल दिया है।
5. हेराड डोमर ने आर्थिक विकास की केन्द्रीय बिन्दु पूंजी को माना है।
6. संरचना में कर विशेषताओं की अपेक्षा की गई है।
7. दोनों ही अर्थशास्त्रियों ने सार्वजनिक कार्यक्रमों और नीतियों की अवहेलना की है।
8. समीकरण समानताएं निम्न हैं – दोनों अर्थशास्त्रियों ने बचत प्रवृत्ति और पूंजी उत्पाद अनुपात को स्थायी माना है जबकि दीर्घकाल में बचत प्रवृत्ति और पूंजी उत्पाद अनुपात भी बदलते हैं।

(क) हैरोड का विकास मॉडल : हैरोड का मूलभूत समीकरण है।

$$Gc = S \qquad G = \Delta y/y\ ,\ C = I/\Delta y\ ,\ S = S/y$$

$$\therefore\ \Delta y/y\ \text{x}\ y/s = \Delta y/I$$

टिप्पणी

$$\Delta y/s = Dy/I , : S = I$$

(ख) डोमर का विकास मॉडल

समीकरण है :

$$\Delta I = I/\alpha = 1\alpha \qquad \alpha = \Delta y/I , \ \alpha = \Delta s/y$$

$$\therefore \ \Delta I \times I / \Delta s / \Delta y = I \times \Delta y/I$$

अथवा

$$\Delta I \times \Delta y / \Delta s = \Delta y$$

$$\Delta I \times \Delta y = \Delta y \times \Delta s$$

दोनों तरफ के पक्षों का Δy से विभाजित करने पर

$$\Delta I \times \Delta y / \Delta y = \Delta y \times \Delta s / \Delta y$$

$$\therefore \ \Delta I = \Delta s$$

इस प्रकार निम्न सूत्र के माध्यम से हैरोड और डोमर के समीकरण को स्पष्ट कर सकते हैं।

हैरोड का $Gw = S/Cr =$ डोमर का $\alpha\sigma$

2. असमानताओं के आधार पर

1. हैरोड का विकास मॉडल त्वरक का प्रयोग करता है जबकि डोमर का विकास मॉडल गुणक का प्रयोग करता है।
2. हैरोड ने विकास दर को ज्ञान करने के लिए तीन प्रकार की वृद्धि दर वास्तविक, इच्छित एवं प्राकृतिक दर का अध्ययन किया जबकि डोमर ने केवल सामान्य विकास दर के विषय में ही व्याख्या की है।
3. हैरोड ने अपने विकास मॉडल में असाम्य से साम्य की ओर बढ़ने को महत्ता दी है जबकि डोमर ने अपने मॉडल में केवल साम्य प्रोद्योगिकी (प्रगति) का ही विश्लेषण किया है।
4. हैरोड के द्वारा व्यक्त किए गए तीन समीकरण एक सम्पूर्ण सिद्धान्त की रचना करते हैं जबकि डोमर न आर्थिक विकास स्तर में बढ़ोतरी के लिए केवल एक समीकरण की ही व्याख्या की है।
5. हैरोड ने उद्यमी को प्रेरित करने के लिए और आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए आय बचत अनुपात और पूंजी उत्पाद अनुपात को अनिवार्य माना है जबकि डोमर ने माना है कि पूर्ण रोजगार के स्तर को प्रेरित करने के लिए निवेश की दर किस प्रकार की होनी चाहिए।
6. हैरोड के मॉडल का अभिन्न अंग व्यापार चक्र है जबकि डोमर ने निवेश की औसत उत्पादकता के उतार चढ़ाव को ही विशेष महत्व दिया है।
7. हैरोड पूंजी उत्पाद अनुपात का प्रयोग करता है जबकि डोमर पूंजी उत्पादन अनुपात का व्युत्क्रम प्रयोग करता है।

8. हैरोड ने पूंजी निर्माण और वर्तमान उत्पादन के मध्य व्यावहारिक सम्बन्ध बनाया है जबकि डोमर न उत्पादन क्षमता के विकास और पूंजी निर्माण के मध्य तकनीकी सम्बन्ध बनाया है।

अपनी प्रगति जांचिए

13. हैरोड ने अपने विकास मॉडल में कितने घटकों को सम्मिलित किया है?
    (क) एक (ख) दो
    (ग) तीन (घ) चार
14. हैरोड–डोमर के विकास मॉडल में रोजगार की संतुलित वृद्धि के लिए G=GW की अनिवार्यता बताई गई है। यहाँ "G" किस के संकेतार्थ प्रयुक्त हुआ है?
    (क) पूंजीगत स्टॉक (ख) पूंजी उत्पाद
    (ग) अभीष्ट वृद्धि दर (घ) वास्तविक वृद्धि दर

3.9 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (घ)
3. (ख)
4. (ग)
5. (क)
6. (ग)
7. (ख)
8. (ग)
9. (घ)
10. (क)
11. (ख)
12. (क)
13. (ग)
14. (घ)

3.10 सारांश

अर्थशास्त्रियों की यह मान्यता है कि अल्पविकसित राष्ट्रों का विकास तीव्रता से होना चाहिए जिससे निर्धनता के खतरनाक चक्रव्यूह से बाहर आया जाए। इसके लिए यह

तरीका है कि विकास की दर को बढ़ाने के लिए कम प्रयास, कम लागत, कम पूंजी का प्रयोग करना पड़े इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सन्तुलित विकास आवश्यक है।

टिप्पणी

असंतुलित वृद्धि की अवधारणा को हर्षमैन की असंतुलित विकास की व्यूहरचना (Hirschman Strategy of Unbalanced Grwoth) के नाम से जाना जाता है। प्रो. हर्षमैन का यह सिद्धान्त सन्तुलित वृद्धि के सिद्धान्त से बिल्कुल अलग है इनका मानना है कि राष्ट्र के सभी क्षेत्रों में विकास न करके केवल कुछ ही क्षेत्रों का विकास किया जाना चाहिए क्योंकि अल्पविकसित देशों में पूँजी की अपर्याप्तता, श्रमिक और संगठन की अकुशलता और प्रबन्ध की अयोग्यता और संगठन का अभाव होता है जिसके कारण विकास तीव्र गति से नहीं हो पाता इसलिए अर्थव्यवस्था के कुछ ही क्षेत्रों में निवेश करना चाहिए जिससे विकास की गति को तीव्र किया जा सके।

रोजेन्स्टीन रोडान के बड़े धक्के के सिद्धान्त की महत्ता केवल प्रभावशाली प्रयत्नों की आवश्यकता पर ही केन्द्रित है। उनका सिद्धान्त उत्पादन फलन में अविभाज्यताओं और पूरकता की अधिक वास्तविक अवधारणाओं पर निर्भर करता है। यह सिद्धान्त संतुलन के मार्ग का निरीक्षण करता है। विशेष रूप से यह सिद्धान्त अपूर्ण बाजारो से सम्बन्धित विनियोग का सिद्धान्त है और ये सिद्धान्त उच्च न्यूनतम मात्रा में निवेश के द्वारा अर्थव्यवस्थाओं को आदर्शतम स्थिति में लाने का प्रयास करता है।

लुईस का विकास सिद्धान्त द्विक्षेत्रीय अर्थव्यवस्था का सिद्धान्त है। लुईस ने अल्पविकसित देशों की अर्थव्यवस्था को दो वर्गों मे विभाजित किया एक पूंजीवादी क्षेत्र दूसरा निर्वाह क्षेत्र, अन्य क्लासिकल अर्थशास्त्रियों की तरह लुईस का भी यह मानना था कि अल्पविकसित राष्ट्रों मे निर्वाह स्तर पर श्रम की पूर्ति असीमित होती है। विकास की स्थिति को प्राप्त करने के लिए निर्वाह क्षेत्र से हटकर पूंजीवादी क्षेत्रों में लगना होगा, ताकि पूंजी संचय हो, पूंजी पर नियन्त्रण पूंजीपतियों द्वारा ही हो सकता है।

हर्षमैन के अनुसार विकास का एक आदर्श ढांचा निर्मित करने के लिए असतुंलन को निश्चित रूप से कायम रखना आवश्यक है इसलिए विचारपूर्वक असंतुलन की पूर्व निर्धारित और उद्देश्यपूर्ण रणनीति तैयार करनी चाहिए जिससे विकास के क्रम को आगे बढ़ाया जा सके।

प्रो. लीबिंसटीन का मानना था कि यदि अल्पविकसित देशों का तीव्र विकास करना है तो उन्हें संतुलन अवस्था में रखना होगा ताकि विकास को स्थिर अवस्था में रखा जा सके। इसलिए प्रति व्यक्ति आय को उस सीमा तक बढ़ाना ही होगा जिस सीमा पर विकास को नियमित किया जा सके। इसके लिए विकास के कार्यक्रमों का सफलतापूर्वक क्रियान्वयन करने के लिए संसाधनों की एक न्यूनतम मात्रा का प्रयोग करना चाहिए इसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भरता के स्तर तक लाने में सहायता मिलेगी।

हैरोड ने अपने सिद्धान्त के सतत वृद्धि की सम्भावनाओं का परीक्षण किया जिसमें कहा गया कि विकास का मार्ग सपाट और निर्बाध नहीं होता इसको प्राप्त करने और कायम रखने के लिए काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अर्थव्यवस्था में असंतुलन पाया जाता है तो संचयी शक्तियाँ इस विचलन को बनाए रखने में सहायक होती हैं। जिससे दीर्घकालीन स्फीतियाँ अवस्फीति उत्पन्न हो सकती है।

डोमर का मानना है कि अर्थव्यवस्था पर आर्थिक क्रियाओं का दोहरा प्रभाव पड़ता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए डोमर ने विकास मॉडल का निर्माण किया क्योंकि निवेश में वृद्धि के फलस्वरूप न केवल आय में वृद्धि होती है बल्कि उद्यमी क्षमताओं में भी वृद्धि होती है, पूंजीगत भण्डार की बढ़ोतरी में भी सहायक होती है।

हैरोड ने पूंजी निर्माण और वर्तमान उत्पादन के मध्य व्यवहारिक सम्बन्ध बनाया है जबकि डोमर न उत्पादन क्षमता के विकास और पूंजी निर्माण के मध्य तकनीकी सम्बन्ध बनाया है।

3.11 मुख्य शब्दावली

- **संवृद्धि** : वृद्धि, विकास।
- **विनियोग** : स्वायत्तीकरण।
- **एकत्रीकरण** : एक जगह इकट्ठा करना।
- **खुली अर्थव्यवस्था** : व्यापार या अन्य आर्थिक गतिविधियों में व्यापारियों हेतु आसान नियमों वाली व्यवस्था।

3.12 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. रोजेन्स्टीन रोडान ने अपनी किस पुस्तक में संतुलित विकास के संकीर्ण विचारों को प्रस्तुत किया?
2. 'बड़े धक्के का सिद्धान्त' क्या है?
3. ए. लुईस ने अल्पविकसित देशों की अर्थव्यवस्था को कितने क्षेत्रों में वर्गीकृत किया है? नामोल्लेख करें?
4. असंतुलित विकास की व्यूहरचना व संतुलित विकास सिद्धांत में मूलभूत अंतर क्या है?
5. हैरोड–डोमर ने अपने मॉडलों में निवेश प्रक्रिया को प्रोत्साहित क्यों किया?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. संतुलित विकास सिद्धांत की परिभाषा स्पष्ट करते हुए उनकी विशेषताओं का उल्लेख करें।
2. 'बड़े धक्के का सिद्धांत' की समीक्षा करें।
3. असंतुलित वृद्धि की अवधारणा के सम्बन्ध में हर्षमैन के असन्तुलित विकास की व्यूह रचना का आलोचनात्मक विवेचन करें।
4. न्यूनतम प्रयत्न सिद्धांत की समीक्षा करें।
5. हैरोड व डोमर के विकास मॉडलों पर प्रकाश डालिए।

3.13 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

M L Jhingan. *Economics of Growth and Development.*

Hayami Y. *Development Economics,* Oxfor University Press.

Karpagam M. *Environmental Economics.*

योगेश शर्मा, 'पर्यावरण एवं मानव संसाधन विकास', पॉइन्ट पब्लिशर, जयपुर।

वी.सी. सिन्हा, 'विकास एवं पर्यावरणीय अर्थशास्त्र', एस.बी.पी.डी. पब्लिशर हाउस, आगरा।

पी.सी.त्रिवेदी / गरिमा गुप्ता, 'पर्यावरण अध्ययन', आविष्कार पब्लिकेशन, जयपुर।

दीप्ति शर्मा / महेन्द्र कुमार, 'पर्यावरण एवं संविकास', अर्जुन पब्लिशिंग, दिल्ली।

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी के नवीनतम प्रकाशन

इकाई 4 आर्थिक विकास और लिंग समानता

टिप्पणी

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 आर्थिक विकास और लिंग समानता की अवधारणा
 4.2.1 आर्थिक सशक्तीकरण
 4.2.2 महिला सशक्तीकरण
4.3 विकास की तकनीकें
 4.3.1 पूंजी–प्रधान तकनीक
 4.3.2 श्रम–प्रधान तकनीक
4.4 मानव विकास सूचकांक
4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

लैगिंक समानता और महिला सशक्तीकरण सबसे महत्वपूर्ण बिंदु हैं। महिला सशक्तीकरण केवल महिलाओं के लिए बनाया गया एजेंडा नहीं है, बल्कि पुरुषों को समान रूप से इसमें भाग लेना चाहिए।

अधिकारिता स्वायत्त की तरह कार्यवाई और नियंत्रण का काम करने के लिए व्यक्तियों को अधिकृत करने की एक प्रक्रिया है। इसमें मानवीय संसाधन (बौद्धिक, वित्तीय, शारीरिक) और विचारधारा (विश्वास, मूल्यों और व्यवहार) दोनों को शामिल किया गया है।

सशक्तीकरण लोगों के जीवन को नियंत्रित और प्रभावित करने के लिए उनकी क्षमताओं का विस्तार करता है। सशक्तीकरण एक सामाजिक वातावरण को बनाने के रूप में देखा जा सकता है, जिसमें सामाजिक परिवर्तन के लिए व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से निर्णय लिए जाते हैं। यह ज्ञान, शक्ति और अनुभव प्राप्त करने के माध्यम से जन्मजात क्षमता को मजबूत करता है।

सशक्तीकरण की एक और परिभाषा के अनुसार, यह एक जागरूक और महत्वपूर्ण चेतना की प्रक्रिया है, जो परिवर्तनकारी कार्यवाई करने के लिए योगदान करती है। महिलाओं और सत्ता के बीच संबंध कई स्तरों पर विभिन्न कारकों जैसे– परिवार, समाज, बाजार और राज्य से प्रभावित होते हैं। गौरतलब है कि मनोवैज्ञानिक स्तर पर स्वयं महिलाएं इस परिवर्तन के लिए तैयार नहीं हैं। सशक्तीकरण लोगों को नियंत्रण पाने में सहायता करता है। यह एक बहु–आयामी समाजिक कर प्रक्रिया है। यह स्वयं के जीवन समुदायों और अपने समाज के महत्वपूर्ण मुद्दों को परिभाषित करके स्वयं को भू–आयामी बनाता है।

इस इकाई में समाज के सम्यक विकास के लिए आवश्यक लिंग समानता व महिला सशक्तीकरण तथा आर्थिक विकास हेतु आवश्यक विकास की तकनीकों का विस्तृत अध्ययन किया गया है। साथ ही मानव विकास तथा मानव विकास सूचकांक की सूक्ष्मताओं का समीचीन अध्ययन किया गया है।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- आर्थिक विकास के लिए लिंग समानता की आवश्यकता से परिचित हो पाएंगे;
- आर्थिक सशक्तीकरण के लिए महिला सशक्तीकरण की अनिवार्यता जान पाएंगे;
- आर्थिक विकास की विभिन्न तकनीकों से परिचित हो पाएंगे;
- मानव–विकास तथा मानव विकास सूचकांक की सूक्ष्मताओं से अवगत हो पाएंगे।

4.2 आर्थिक विकास और लिंग समानता की अवधारणा

महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए भारत और विदेशों में कई नीतियों को शुरू किया गया है। महिला सशक्तीकरण भारत में महिलाओं के भविष्य को मजबूत करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण प्रणाली है। यह एक व्यवस्थित दृष्टिकोण है, जिसे भारत में अधिक गंभीरता से विकसित करने की जरूरत है। महिलाओं का सशक्तीकरण वास्तव में महिलाओं के खिलाफ पूर्वाग्रह की व्यवस्था को बदलने में सबसे अधिक सफल रहा है और इस तरह के परिवर्तन का असर लम्बे समय तक रहेगा। भारत सरकार ने महिलाओं और पुरुषों के समान भागीदारी पर ध्यान केंद्रित करने के लिए वर्ष 2001 को 'महिला सशक्तीकरण वर्ष' के रूप में घोषित किया।

सशक्तीकरण सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक क्षेत्रों में और व्यक्ति, समूह, समुदाय जैसे विभिन्न स्तरों पर पाया जाता है और व्यक्तिगत व सामाजिक अधिकारों में निर्णय लेने, संसाधनों का उपयोग करने और सामाजिक गतिशीलता के सम्बन्ध में हमारी मान्याताओं को चुनौती देता है। महिलाओं को सशक्त बनाने और सतत विकास के लिए शिक्षा और रोजगार पर ध्यान केंद्रित करना अत्यंत आवश्यक है।

महिला सशक्तीकरण के आमतौर पर पांच घटक हैं, सबसे पहला, स्वयं के विकास की भावना, दूसरा अपने जीवन पर स्वयं के नियंत्रण की शक्ति, तीसरा घर के भीतर, चौथा घर के बाहर और अंत में राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय और विश्वस्तर पर सामाजिक और आर्थिक रूप से सामाजिक परिवर्तन की दिशा को अपनी क्षमता द्वारा प्रभावित करना है।

महिला सशक्तीकरण और महिलाओं की स्थिति मानवीय अधिकारों व विकासों के लिए महत्वपूर्ण हो गयी है। 1994 में संयुक्त राष्ट्र (यूएन) द्वारा जनसंख्या और विकास पर आधारित काहिरा सम्मलेन में महिला सशक्तीकरण सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा था और इसमें संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) द्वारा महिलाओं के सशक्तीकरण की दिशा में ध्यान केंद्रित करने पर बल दिया गया।

इस प्रक्रिया को आगे परिवार और सार्वजनिक जीवन के कई क्षेत्रों में तेजी से चलाने के लिए सजग महिलाओं के कुछ वर्गों को शुरू किया गया।

महिलाओं और लड़कियों के लिए शिक्षा के समान अधिकार सुनिश्चित करने, भेदभाव मिटाने, शिक्षा को जन–जन तक पहुंचाने, निरक्षरता को दूर करने, लिंग संवेदी शिक्षा पद्धति बनाने, लड़कियों के नामांकन और अवधारणा की दरों में वृद्धि करने के विशेष उपाय किए जा रहे हैं। इसके साथ ही महिलाओं को रोजगार/व्यावसायिक/तकनीकी कौशलों के साथ–साथ जीवन पर्यंत शिक्षण को सुलभ बनाने के लिए शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए विशेष उपाय किए जा रहे हैं।

बीजिंग सम्मलेन में कार्य योजना घोषणा पत्र (Platform for Action–PFA) को अपनाया गया, जो महिलाओं के प्रति सभी प्रकार के भेदभावों को समाप्त करने हेतु अभिसमय (Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination Against Women–CEDAW) तथा संयुक्त राष्ट्र महासभा तथा आर्थिक एवं सामाजिक विकास संगठन (ECOSCO) द्वारा अपनाये गये प्रासंगिक प्रस्तावों को अनुमोदित करता है। पीएफए महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए प्राथमिक महत्व वाले कार्यों का समूह निर्धारित करता है, जिसका अगले पांच वर्षों में सरकारों, अंतरराष्ट्रीय संगठनों तथा संस्थाओं द्वारा सभी स्तरों पर क्रियान्वयन होता है। पीएफए यह स्वीकार करता है कि, (i) बालिका शिशु और महिलाओं के मानवाधिकार सार्वभौमिक मानवाधिकारों के अभिन्न और अहरणीय भाग हैं, तथा; (ii) सभी देशों, चाहे उनकी राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रणालियां कुछ भी हो, का यह दायित्व होता है कि वे सभी मानवाधिकारों और मौलिक स्वतंत्रता की रक्षा करें। पीएफए महिलाओं के सशक्तीकरण के लिये अग्रलिखित कुछ क्षेत्रों में कदम उठाने की अनुशंसा करता है– महिलाओं पर गरीबी की मार को कम करना; उनकी शैक्षणिक स्थिति में सुधार लाना; उनके स्वास्थ्य में सुधार लाना तथा महिलाओं के प्रति हिंसा के विरुद्ध कार्य करना; विवादों को समाप्त करने में महिलाओं की भागीदारी की बढ़ाना एवं मजबूत करना, तथा; आर्थिक भागीदारी को प्रोत्साहित करना; अधिकार–संरचना और निर्णय प्रक्रिया में महिलाओं की पूर्ण और एकसमान भागीदारी सुनिश्चित करना तथा सभी विधानों, लोक नीतियों, कार्यक्रमों और परियोजनाओं में लिंग परिप्रेक्ष्यों को एकीकृत करना; अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संधियों के अनुमोदन को प्रोत्साहित करना और उनके क्रियान्वयन को गतिशील बनाना; मीडिया में महिलाओं के निरूपण में सुधार लाना तथा सूचना और मीडिया क्षेत्रों में समानता के आधार पर महिलाओं की पहुंच को सुनिश्चित करना; पर्यावरण संबंधी नीतियों में लिंगात्मक पहलुओं को एकीकृत करना, तथा; बालिका शिशुओं के अधिकारों को स्वीकार करना तथा उनके प्रति भेदभावों को समाप्त करना।

1995 के बीजिंग सम्मेलन के कुछ मात्रात्मक और गुणात्मक सूचक इस प्रकार हैं–

गुणात्मक सूचक

- आत्मसम्मान, व्यक्तिगत और सामूहिक आत्मविश्वास में वृद्धि
- अभिव्यक्ति ज्ञान में वृद्धि और स्वास्थ्य के बारे में जागरूकता, पोषण प्रजनन अधिकार, कानून और साक्षरता

- बच्चे की देखभाल और व्यक्तिगत समय में वृद्धि और कमी
- नए कार्यक्रमों में कार्यभार की कमी या वृद्धि
- परिवार या समुदाय में भूमिकाओं और जिम्मेदारी में परिवर्तन
- महिलाओं और लड़कियों पर हिंसा में प्रत्यक्ष कमी
- विधवाओं से भेदभाव, बाल–विवाह दहेज, जैसे सामाजिक रीति–रिवाजों में परिवर्तन
- महिलाओं की भागीदारी के स्तर, बैठकों में उपस्थिति, भागीदारी और भागीदारी की मांग में परिवर्तन
- घर पर समुदाय और सामूहिक सौदेबाजी में वृद्धि
- जानकारी इकठ्ठा करने की क्षमता और पहुंच
- महिलाओं का सामुदायिक गठन
- समाजिक व्यवहार में सकरात्मक परिवर्तन
- घर के भीतर और घर के बाहर महिलाओं के आर्थिक योगदान की जागरूकता
- महिलाओं को उनके काम और आय में निर्णय लेने के अधिकार

मात्रात्मक सूचक

(1) **जनसांख्यिकीय रूझान**
- मातृ–मृत्युदर
- प्रजनन दर
- लिंग अनुपात
- जन्म के समय जीवन प्रत्याशा
- शादी की औसत उम्र

(2) विभिन्न विकास कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए महिलाओं की संख्या

(3) सामुदायिक संसाधनों, सरकारी समिति, सहकारी समिति और अनौपचारिक शिक्षा का अधिक–से–अधिक उपयोग और नियंत्रण। योजनाएं, शिशु–गृह, जमाधन, औपचारिक शिक्षा और पोषण स्तरों में सुधार

(4) शारीरिक स्वास्थ्य की स्थिति और पोषण के स्तर में प्रत्यक्ष परिवर्तन

(5) साक्षरता और नामांकन के स्तर में परिवर्तन

भारत में लिंग अनुपात में गिरावट, भ्रूण हत्या और शिशु हत्या के माध्यम से होती है, इसको व्यस्थित उपेक्षा और व्यापक कार्रवाई की आवश्यकता है। यह प्रत्यक्ष रूप से प्रमाणित है कि कम साक्षरता, सामाजिक असमानता और स्थानीय पोषण में कमी महत्वपूर्ण रूप से लैंगिक समानता से सम्बंधित है।

शिक्षा के माध्यम से महिला सशक्तीकरण

शिक्षा प्राप्ति और आर्थिक भागीदारी, महिलाओं के सशक्तीकरण को सुनिश्चित करने में एक महत्वपूर्ण घटक है। महिला सशक्तीकरण के राजनितिक अधिकारों के लिए

टिप्पणी

दुनियाभर में कई औपचारिक और अनौपचारिक अभियान सबसे बड़ा वैश्विक मुद्दा हैं। महिला सशक्तीकरण की अवधारणा 1985 में शिक्षा के क्षेत्र में हुए अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन, नैरोबी में पेश की गई थी। इसकी चुनौतियां अपनी पारंपरिक भूमिका का सामना करने और उनके जीवन को बदलने के लिए उन्हें सक्षम बनाना है, क्योंकि महिला सशक्तीकरण के मामले में महिलाओं में शिक्षा के महत्व को बढ़ाना एक मील का पत्थर है। भारत महिला सशक्तीकरण के द्वारा 2020 तक महाशक्ति बनने की ओर अग्रसर है। 2014 में संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार भारत में निरक्षरों की संख्या सबसे अधिक है। भारत में पुरुष साक्षरता दर 82.14 फीसदी है, जबकि आर्थिक सर्वेक्षण 2012–2013 के अनुसार महिला साक्षरता दर 65.46 फीसदी है। पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974–1978) के बाद महिलाओं के विकास के लिए उल्लेखनीय परिवर्तन किये गए हैं। हाल हीं के वर्षो में महिला सशक्तीकरण को महिलाओं की स्थिति का निर्धारण करने में एक केंद्रीय मुद्दे के रूप में पहचाना गया है। महिलाओं के कानूनी अधिकारों की रक्षा के लिए 1990 में संसद के एक अधिनियम द्वारा (जोकि 1992 में स्थापित किया गया था) महिला आयोग को स्थापित किया गया था। भारत के संविधान के 73वें और 74वें संशोधन (1993) में स्थानीय स्तर पर निर्णय लेने में महिलाओं की भागीदारी की मजबूत नींव रखी गयी। महिलाओं के लिए पंचायतों और नगर–पालिकाओं के स्थानीय निकायों में सीटों के आरक्षण भी प्रदान किये गए।

मानव अधिकार और उनकी क्षमता के उत्कर्ष के लिए महिलाओं की शिक्षा आंतरिक रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण है। शैक्षिक और आर्थिक सशक्तीकरण के अलावा महिलाओं की गतिशीलता और समाजिक संबंधों में परिवर्तन और घर के निर्णय लेने में परिवर्तन लाना जरूरी है।

4.2.1 आर्थिक सशक्तीकरण

महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण, महिलाओं की सामाजिक स्थिति के उत्थान के लिए सबसे महत्वपूर्ण शर्तों में से एक है। महिलाएं आर्थिक रूप से स्वतंत्र अपने परिवार के लिए लगभग बराबर आर्थिक योगदान करती हैं। लिंग आधारित भेदभाव या महिलाओं की अधीनता काफी हद तक पुरुषों पर आर्थिक निर्भर रहने में निहित है।

महिलाओं का आर्थिक सशक्तीकरण किसी भी देश में मजबूत आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण तत्व हैं। महिलाओं का सशक्त होना और उनकी क्षमता में परिवर्तन पूरे समाज को प्रभावित करता है। वे सभी पहलुओं में पुरुषों के बराबर हैं। महिलाएं उत्पन्न करने की क्षमता, पालन–पोषण और स्वयं को बदलने में सम्पन्न हैं।

आज महिलाएं चिकित्सा, अंतरिक्ष, इंजीनियरिंग, कानून, राजनीति, शिक्षा, व्यापार, वैज्ञानिक क्षेत्रों में उभर कर आ रही हैं, उनके सशक्तीकरण की आज दुनिया को जरूरत है। भारत में सशक्तीकरण की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है, अब हम स्कूलों, कॉलेजों में और यहां तक कि व्यावसायिक स्थानो में महिलाओं के नामांकन में लगातार सुधार देख रहे हैं। बढ़ते वैश्वीकरण और सूचना प्रौद्योगिकी के प्रभाव के कारण, महिलाओं में उद्यमिता के नए रास्ते खुल गये हैं। विकसित शहरों में उच्चवर्गों के परिवारों के बीच यह अधिक दिखाई दे रहा है।

कृषि सेवाओं एवं व्यवसायों में महिलाएं

परंपरागत ग्रामीण समुदायों में, प्रचलित व्यवसायों में खेती, हस्तशिल्प और छोटे–छोटे काम करने वाले लोग आते हैं। इनमें से प्रत्येक वर्ग में अपने परिवारों के लिए जीविकोपार्जन की प्रक्रिया में महिलाएँ शामिल हैं, कृषि उत्पादों के उत्पादन और विपणन में लगभग पुरुषों के बराबर श्रम करती हुईं। भारत के ज्यादातर हिस्सों में महिलाएँ आज भी शाक–सब्जियों, प्रसंस्कृत एवं अर्ध प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों और हस्तशिल्पों जैसी वस्तुओं के उत्पादन व विपणन में शामिल हैं।

खेती महिलाओं का मुख्य आर्थिक कार्य है, क्योंकि भारत की अर्थव्यवस्थ मुख्य रूप से एक कृषि अर्थव्यवस्था है। ग्रामीण क्षेत्रों में, महिला श्रम शक्ति का लगभग 80 प्रतिशत अंश खेती और उससे जुड़ी गतिविधियों में लगा है। बीते कुछ दशकों के दौरान ग्रामीण क्षेत्रों में खेती के क्षेत्र में महिला खेतिहरों में तीव्र ह्रास और खेतिहर मजदूरों के प्रतिशत में वृद्धि हुई है। ऐसा बढ़ती गरीबी हुआ है जिसके फलस्वरूप परिवार के स्वामित्व वाली जमीन अथवा खेती में जमीन का ह्रास हुआ है या उत्पादनक्षम रोजगार के अवसरों में हुई वृद्धि अपर्याप्त है। इसके परिणामस्वरूप उन महिलाओं के अनुपात में कमी आई है, जो पहले खतिहर थीं। कृषि मजदूरों की संख्या में वृद्धि और खेतिहरों में एक तिहाई से लगभग 50 प्रतिशत की कमी बढ़ती गरीबी और रोजगार के स्तरों में कमी की द्योतक है।

हिमालयी भूभाग में, कृषि उत्पादन क्षेत्र में महिलाएँ मुख्य भूमिका निभाती हैं, जहाँ झूम कृषि (स्थानांतरण कृषि) का चलन है; यहाँ पुरुषों की भूमिका वनों में किसी क्षेत्र की सफाई के लिए पेड़ों की कटाई तक सीमित है। अनाज की बोआई, कटाई और भंडारण का कार्य महिलाएँ करती हैं। उन क्षेत्रों में जहाँ सीढ़ीदार खेती होती है, पुरुष जमीन की जोताई करते हैं। आर्थिक प्रक्रिया में मुख्यतः महिलाओं का वर्चस्व है। आवश्यकता पड़ने पर शिक्षित महिलाएँ भी खेती का शारीरिक कार्य करती हैं। देश के अलग–अलग हिस्सों में महिलाओं का हल चलाना वर्जित है, किंतु यदि ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हों तो महिलाएँ ये कार्य भी करती हैं। देश के अलग–अलग क्षेत्रों में महिलाएँ खेती के जो कार्य करती हैं उनमें रोपाई, बोआई, निराई, कटाई, ओसाई–फटकाई और गहाई शामिल हैं।

खेती के अतिरिक्त, महिलाएँ भारी संख्या में असंगठित क्षेत्र के विभिन्न उद्योगों और सेवाओं में लगी हैं। इनमें परंपरागत ग्राम एवं कुटीर उद्योग, जैसे हथकरघा और खादी, रेशम उत्पादन, नारियल–जटा निर्माण, काजू प्रसंस्करण, बीड़ी उत्पादन, चमड़ा शोधन, चावल व दाल मिल उद्यम, कॉफी प्रसंस्करण और टोकड़ बुनाई, काष्ठ कला आदि, शामिल हैं।

अठारहवीं शताब्दी से हस्तशिल्पों में आई कमी के कारण खेती पर निर्भर आबादी के अनुपात में वृद्धि हुई। इसके फलस्वरूप बागवानी, खनन, पटसन और कपड़ा उद्योग में महिलाओं के रोजगार में वृद्धि हुई। खेती में गिरावट और ग्राम हस्तशिल्प में कमी के फलस्वरूप उद्योगों और कारखानों में काम के लिए गाँवों से लोगों का शहरों को बड़े पैमाने पर पलायन हुआ।

शहरी क्षेत्रों में बड़ी संख्या में महिलाएँ असंगठित क्षेत्र में काम कर रही हैं। ठेकेदार उनमें से बहुतों को भवन निर्माण उद्योग में दिहाड़ी मजदूर के रूप में बहाल कर लेते हैं। महिलाओं को मिट्टी, गारे या ईंटें ढोने, ईंटें तोड़ने और चापा–कल चलाने के लिए अकुशल मजदूरों के रूप में बहाल किया जाता है। उन्हें घरेलू नौकरों के रूप में भी बहाल किया जाता है, जहाँ वे खाना पकाने, धुलाई–सफाई करने, झाडू लगाने और कपड़े धोने जैसे घरेलू काम करती हैं।वे छोटे–छोटे उद्योग–व्यापार भी करती हैं जैसे भोजन और खाद्य उत्पाद (स्वगृह भोजन, लिज्जत पापड़ उद्योग), घरेलू सामान, कागज के थैले, अगरबत्तियाँ, अगरबत्ती और तंबाकू के डिब्बे आदि बनाना। परिधान निर्माण उद्योग में भी, खास तौर पर उत्तर प्रदेश में, महिलाओं का वर्चस्व है। महिलाएँ खानों में अनियमित मजदूरों के रूप में काम करती हैं, जहाँ वे गाड़ी में लदान या फिर मिट्टी कटाई का काम करती हैं। वे पटसन उद्योग में सहायक कामगार के रूप में भी काम करती हैं।

महिलाएँ बुनाई (भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में), गाँव के बाजारों और शहरी क्षेत्रों में खुदरा व्यापार जैसे शाक–सब्जियों, मसालों, और बरतन–वासनों की बिक्री (दैनिक और साप्ताहिक बाजारों में कृषि और कृषि इतर उत्पादों की बिक्री) के क्षेत्रों में स्वरोजगार की योजनाएँ शुरू कर सकती हैं। महिलाएँ अचार, जैम, जूस और स्क्वैश, पापड़ और अन्य खाद्य उत्पादों का उत्पादन और विपणन भी करती हैं।

भारत में संगठित क्षेत्र में केंद्र, राज्य और स्थानीय सरकारों के अधीन सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र की कृषि इतर सभी कंपनियाँ आती हैं। इस संगठित क्षेत्र में औद्योगिक क्षेत्र और सेवा क्षेत्र शामिल हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में महिलाओं की संख्या निजी क्षेत्र से बहुत ज्यादा है। महिला साक्षरता दर और व्यावसायिक कौशलों में वृद्धि के कारण संगठित क्षेत्रों में शामिल होने वाली महिलाओं की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। वृद्धि और विकास में हुई वृद्धि के फलस्वरूप तृतीयक अथवा सेवा क्षेत्र में हुए रोजगार के अवसरों का विस्तार भी इस परिवर्तन का एक कारण है। महिला कामगार प्रशासनिक और लिपिकीय पदों पर विशेष ध्यान देती हैं। पदाधिकारी और प्रबंधकीय पदों में वृद्धि भी उत्साहवर्धक रही है। सेवा क्षेत्र में महिलाएँ मुख्यतः अध्यापन, नर्सिंग, बीमा, समाज सेवा, खेल एवं मनोरंजन के क्षेत्र में जाना चाहती हैं।तकनीकी और व्यावसायिक पदों में, और उच्चतर प्रबंधकीय वर्गों में, महिलाओं का अनुपात अभी भी सीमित है, हालाँकि इन क्षेत्रों में महिला रोजगार के रुझान में वृद्धि दिखाई देती है।

न केवल भारत में बल्कि विश्व के विभिन्न हिस्सों में श्रम शक्ति में महिलाओं की न्यून भागीदारी के अनेकानेक कारण हैं। काम पर जाने वाली महिलाओं को नानाविध समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इनमें से कुछ समस्याएँ इस प्रकार हैं :

- परिवार और काम के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए महिलाएँ आम तौर पर अंश–कालिक काम किया करती हैं। कई कंपनियाँ महिलाओं को अंश–कालिक काम देने से हिचकती हैं, क्योंकि माना जाता है कि इससे पूर्ण–कालिक रोजगार के अवसरों पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है, या फिर इसका परिणाम रोजगार व प्रोन्नति के क्षेत्र में भेदभाव और शोषण हो सकता है।

- महिलाएँ मातृ अवकाश पर जा सकती हैं, जिससे स्थिति में एक शून्यता आ जाती है। कंपनियों को अस्थायी आधार पर दूसरों को बहाल करना पड़ सकता है।

- महिलाओं के समक्ष एक और समस्या है और वह है श्रम बाजार में उनका बहुत बाद में प्रवेश। महिलाएँ देर से काम शुरू करती हैं और वह भी पूर्व अनुभव के बिना। ऐसा आम तौर पर आर्थिक कारणों से होता है, जिसमें वित्तीय सहायता की कमी, विधवापन, पतियों के रोजगार की कमी आदि होते हैं।
- कई कामगार महिलाओं को शिशु देखभाल की पर्याप्त सहायता या सेवाएँ नहीं मिल पातीं। संगठित क्षेत्र में महिलाओं के लिए शिशु सदनों (क्रेश) और दिवस परिचर्या केंद्रों (डे–केअर सेंटर) की सुविधा होती है, हालाँकि इस क्षेत्र में भी बहुत सी कंपनियों में ये सुविधाएँ उपलब्ध हैं।
- शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में कामगार महिलाओं के लिए आवास की समस्या एक बड़ी समस्या है।
- कई पढ़ी–लिखी महिलाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने के लिए जाना नहीं चाहतीं, न केवल ग्रामीण क्षेत्रों के प्रति पूर्वाग्रह के कारण बल्कि दूरी और सुरक्षा के अभाव के कारण भी।
- महिलाओं को सेवाओं शर्तों से जुड़ी नानाविध समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है। कई महिलाएँ तदर्थ (अनौपचारिक) आधार पर काम करती हैं, और साल में उनकी सेवा अवधि बढ़ाई जाती है। उन्हें प्रोन्नति के असरों और उचित वेतन मान से वंचित रखा जाता हे। उन्हें ठेके के आधार पर भी बहाल किया जाता है, और लंबे समय तक सेवा देने के बावजूद उन्हें स्थायी नहीं किया जाता। महिलाएँ कहती हैं कि उनके प्रति न केवल निजी कंपनियों के स्वामी बल्कि सरकार भी भेदभाव करती है।
- महिलाओं को स्थानांतरण की समस्या का सामना करना पड़ता है। महिलाओं के लिए स्थानांतरण स्वीकार करना कठिन हो सकता है, खास कर परिवार के कारण।
- निजी क्षेत्रों में, मातृत्व लाभ बहुत सीमित होता है, और महिलाओं को यथाशीघ्र (आम तौर पर जनन के एक महीने के भीतर) काम पर वापस जाना अथवा वेतनरहित अवकाश लेना पड़ता है।

लेखिका अनीता आर्य भारत में महिलाओं के जीवन और जीवन चर्या को अपेक्षाकृत अधिक खुशहाल बनाने की कुछ अनुशंसाएँ प्रस्तुत करती हैं। इनमें से कुछ अनुशंसाएँ यहाँ प्रस्तुत हैं :

- सरकार के लिए रोजगार की एक सुस्पष्ट सृजन एवं प्रशिक्षण नीति तैयार करना आवश्यक है जिसका लक्ष्य महिलाओं की उत्पादन मूलक भागीदारी में वृद्धि हो। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (आइएलओ) की अनुशंसाओं को अनिवार्य रूप से ध्यान में रखा चाहिए।
- मुख्य धारा के क्षेत्रों को अपने कार्यक्रमों में महिलाओं के एक घटक को शामिल करना चाहिए। संगठित क्षेत्र में विविधीकरण अथवा नए या गैर–पारंपरिक रोजगार में कौशल प्रशिक्षण का प्रबंध कर महिलाओं की रोजगार की संभावना में वृद्धि की जानी चाहिए।

- कार्य की माँग के अनुरूप आपूर्ति, और रोजगार के संभावित क्षेत्रों से रोजगार की जरूरतमंद महिलाओं को जोड़ा जाना आवश्यक है।
- महिलाओं के रोजगार का अर्थ परिवार की पोषण एवं आर्थिक जरूरतों के संदर्भ में आत्म–निर्भरता होना चाहिए।
- महिलाओं के वैकल्पिक कौशलों के स्थान पर आधुनिक एवं नई तकनीकी को अपनाया जाना चाहिए।
- महिलाओं को लघु उद्यमी बनने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए और वे स्वयं को सहकारी कंपनियों के रूप में संगठित करें।
- मजदूर संगठन की गतिविधियों से जुड़ने और उनमें भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ताकि उनकी मोल–तोल की क्षमता में वृद्धि हो।
- महज 'गृहिणी' के रूप में नहीं, बल्कि 'कामगार' और उपयोगी सहयोगी के रूप में अपनी पहचानन बनाने हेतु महिलाओं के लिए संगठन महत्वपूर्ण है।
- महिलाओं के लिए काम के सहभाजन, अंश–कालिक काम और बड़ी आयु में रोजगार में पुनः प्रवेश के प्रावधान तथा शैक्षिक अर्हता में छूट के साथ–साथ संगठित क्षेत्र में प्रवेश की महिलाओं की अधिकतम आयु सीमा बढ़ाकर 35 वर्ष की जानी चाहिए।
- सुविधाओं एवं हितलाभों में वृद्धि, जैसे बीमा कवर, जननी एवं स्वास्थ्य लाभ आदि।
- कार्मिक योजना और आर्थिक विकास से जुड़े निर्णय निर्माण के सभी निकायों में महिलाओं का पर्याप्त प्रतिनिधित्व होना चाहिए।
- असंगठित क्षेत्र के काम की स्थितियों में मजबूत सांगठनिक आधार के जरिए सुधार किया जाना चाहिए।
- रोजगार की रणनीति बनाते समय, खेती के क्षेत्र में महिलाओं के रोजगार पर बल दिया जाना चाहिए। महिलाओं को जमीन, भवन, ऋण, आवास एवं कौशल प्रशिक्षण जैसे लाभकारी साधन सुलभ होने चाहिए।
- एक बड़ी संख्या में महिलाएँ अनियत मजदूर के रूप में काम करती हैं, और उन्हें वेतन कम दिया जाता है और उनके लिए रोजगार के अवसर भी कम होते हैं। महिलाओं को न्यूनतम दैनिक मजदूरी, रोजगार की शर्तों और अंश–कालिक रोजगारी से अवगत कराने की व्यवस्था होनी चाहिए।
- महिला कामगारों की शिक्षा के लिए विशेष कार्यक्रम होने चाहिए। इनमें काम–काज (प्रकार्यात्मक) और कानून से जुड़े ज्ञान और पारिवारिक शिक्षा को शामिल किया जाए। ग्रामीण महिलाओं को व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए, जिसमें उत्पादक, प्रबंधकीय और सांगठनिक कौशल शामिल हों।
- महिलाओं के लिए यातायात एवं परिवहन, भंडारण, कच्चा माल और अन्य जैसी आधारभूत संरचना सुविधाएँ और अन्य जमीन, तकनीकी आदि जैसी उत्पादक सामग्री सुलभ होनी चाहिए।

- कार्य की स्थितियों में औपचारिक और अनौपचारिक दोनों क्षेत्रों में सुधार होना चाहिए। काम से जुड़े स्वास्थ्य संकटों से संरक्षण के उपायों का प्रभावशील ढंग से क्रियान्वयन हो। संकटप्रद कामों में महिलाओं के रोजगार पर कानूनी उपाय कर रोक लगाई जानी चाहिए।
- महिलाओं को प्रबंधकीय व्यवस्था में प्रवेश करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- महिलाओं के रोजगार में शोषण के प्रचलित वातावरण और कार्यवाहियों के विरुद्ध जागरूकता का संचार करने के लिए कंपनियों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

महिलाएँ एवं श्रम बाजार

इतिहास देखें तो पाते हैं कि महिलाएँ जीवन निर्वाह और वित्तीय सहायता के लिए हमेशा पुरुषों पर निर्भर रही हैं। संसार के ज्यादातर हिस्सों में व्याप्त समाज में महिलाओं को दिया गया गौण स्थान, अंध विश्वास और कर्मकांडों, धार्मिक वर्जनाओं व पहले से चली आ रही पैतृक मूल्य प्रणाली से यह सिद्ध हो गया है कि यह स्थिति बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक जारी रही। उस समय भी, परिवर्तन विश्व के केवल उन्हीं भागों में सामने आए जो विचार और प्रवृत्ति में अपेक्षाकृत अधिक विकसित और बंधनमुक्त थे। वह तो अभी हाल के दिनों में जाकर विकासशील और अल्पविकसित देशों की महिलाओं की स्थिति में बदलाव और श्रम शक्ति में उनकी भागीदारी देखने को मिली है। इसके फलस्वरूप विश्व भर की महिलाएँ अपने भविष्य के लिए धन की बचत और व्यवस्था करने की कोशिश करने लगी हैं। ज्यादा से ज्यादा महिलाएँ समझने लगी हैं कि आर्थिक आजादी और सशक्तीकरण के बिना वे अपने साथ हो रही लैंगिक असमानता से लड़ नहीं सकतीं। यह आर्थिक सशक्तीकरण है जो महिलाओं को भेदभाव और असमानता से लड़ने की क्षमता और शक्ति देती है।

बीते कुछ दशकों के दौरान, समाज में महिलाओं की स्थिति में धीरे–धीरे कुछ परिवर्तन आया है। इस अवधि के दौरान महिलाएँ पहले से कहीं ज्यादा संख्या में श्रम बाजार में पहुँची हैं, समाज में उनके योगदानों को महत्व दिया जाने लगा है। निस्संदेह, महिलाओं ने कृषि श्रमशक्ति और असंगठित क्षेत्र में हमेशा हिस्सा लिया है। किंतु, हाल के दिनों में संगठित क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि देखी गई है। इन परिवर्तनों में नानाविध कारकों का योगदान रहा है। औद्योगिकीकरण और तदनंतर आर्थिक वृद्धि ने उनके लिए एक विशाल बाजार तैयार कर दिया है। महिलाओं की शिक्षा और अन्य आधारभूत संरचना सुविधाओं में हुई वृद्धि ने उनके लिए अनेकानेक मार्ग खोल दिए हैं, फलतः घर के बाहर महिलाओं के रोजगार के अनुपात में तीव्र वृद्धि हुई है। कानून ने महिलाओं के लिए समान अवसर का मार्ग प्रशस्त कर दिया है; वहीं लोगों की अपेक्षाएँ बढ़ी हैं, जिसके फलस्वरूप पतियों और पत्नियों दोनों का धनोपार्जन करना अनिवार्य हो गया है। इसलिए, आज महिलाओं में लिपिकीय या गैर–प्रबंधकीय कार्यों के प्रति झुकाव देखा जाता है। परिवर्तन वित्त, सेवाओं (शिक्षण, नर्सिंग), प्रकाशन, खुदरा बिक्री, बैंकिंग उपभोक्ता सामग्री के उत्पादों जैसे परंपरागत व्यवसायों में दिखाई देता है – इन व्यवसायों में लचीलेपन की छूट है, और पारिवारिक जीवन के समायोजन की पर्याप्त

गुंजाइश के साथ क्रमिक नमनशील प्रभाव शामिल है। प्रबंधकीय संवर्गों में महिलाओं की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है, किंतु फिर भी इस संवर्ग की श्रमशक्ति में महिलाओं की भागीदारी लगभग 20 प्रतिशत ही है, जिससे स्पष्ट होता है कि कॉर्पोरेट जगत में महिलाओं का प्रतिनिधित्व असमान है। अभी हाल तक, कुछ उद्योगों में महिलाओं का वर्चस्व था, किंतु, उनमें भी वे कुछ ही पदों पर थीं।

महिलाओं के शिक्षा प्राप्त करने और श्रम बाजार में उनके कदम रखने के कई सकारात्मक परिणाम सामने आए हैं। देखा गया है कि किसी समाज की महिलाएँ जितनी शिक्षित और आर्थिक रूप से जितनी स्वतंत्र होती हैं, उस समाज की वृद्धि और सामाजिक–आर्थिक विकास में बाधाएँ कम आती हैं। वस्तुतः, ज्यादातर विकसित देशों में, महिला आबादी की साक्षरता व शिक्षा का स्तर, और श्रम बाजार में उनकी भागीदारी, विकासशील और अल्पविकसित देशों से कहीं ज्यादा हैं। यह किसी समाज की महिला शिक्षा एवं रोजगार, और विकास के स्तर के बीच एक सीधा संबंध स्थापित करता है।

घरेलू कार्य एवं आर्थिक स्थिति

लिखित इतिहास में यदि सर्वाधिक गौण पात्र कोई है तो वह गृहिणी है और कोई नहीं। गृहिणी और गृहकार्य की अवधारणा पर अक्सर टिप्पणी हुआ करती है। विश्व के विभिन्न देशों में वृद्धि और विकास के स्तरों पर, संसार के सभी हिस्सों में पुरुषों और महिलाओं के द्वारा किए गए कार्यों में एक बुनियादी अंतर है। ये परिवर्तन, कुछ हद तक, सामाजिक–सांस्कृतिक एवं आर्थिक कारकों द्वारा समर्थित जीव विज्ञानिक अंतरों पर आधारित हैं जिन्होंने महिला–पुरुष विशिष्टताओं, भूमिकाओं और कार्यकलापों को आकार दिया है। ज्यादातर विकासशील व अल्पविकसित देशों में, और कुछ हद तक विकसित देशों में भी पुरुष ही परिवार के पालक और धनोपार्जक हैं। दूसरी तरफ, महिलाओं के दायित्व भिन्न हैं – प्रजनन एवं संतानोत्पत्ति, संतान पालन और घर–परिवार के कल्याण के कार्य (परिवार की देखभाल और तमाम घरेलू कार्य करना) या लाभदायक कार्य (खेती के क्षेत्रों में, फसल की योजना, प्रसंस्करण, मवेशी की बढ़ोतरी, हस्तशिल्प आदि में महिलाएँ प्रत्यक्ष रूप से शामिल होती हैं), और सामुदायिक प्रबंधन (सामुदायिक सेवाओं, जैसे स्वास्थ्य देखभाल, पोषण एवं जलापूर्ति का प्रबंध)। ये कारक संसार भर के विभिन्न देशों में वृद्धि और विकास के स्तरों के परे। नहीं तो और कौन हो सकता है? कई विकासशील देशों में पुरुषों की तुलना में महिलाओं का कार्य छोटा और धीमा है और नितांत रूप से समाज और संस्कृति के अनुरूप निर्धारित कार्यों को पूरा करने हेतु महिलाओं की आवश्यकता पर आधारित है।

महिलाएँ जो कार्य करती हैं उसका उनकी स्थिति पर प्रभाव पड़ता है। सामान्य स्थिति में, आर्थिक भाव के कार्य का अर्थ सवेतन रोजगार है। अभी हाल तक, और आज भी, महिलाओं द्वारा किया जाने वाले कार्यों में ज्यादातर घरेलू कार्य होते हैं, इसलिए उन्हें महत्वहीन समझा जाता है और उचित स्थान नहीं दिया जाता। ज्यादातर मामलों में, जब तक वे जगी होती हैं, अपना अधिकांश समय घरेलू कार्यों में लगा देती हैं, वे कार्य जिन्हें न तो कोई महत्व दिया जाता न ही कोई आर्थिक मेहनताना। घर में महिलाओं के पारिश्रमिक रहित कार्य के प्रश्न पर बीते चार या पाँच दशकों के दौरान प्रमुखता दी गई है और इस पर कई विद्वानों व बुद्धिजीवियों ने ध्यान दिया है, जो इस

टिप्पणी

स्थिति के निरंतर प्रबलतर होते जाने के कारणों का पता लगाने का प्रयास करते रहे हैं। घरेलू कार्यों पर असीम मेहनत करने वाली गृहिणी के रूप में महिलाओं के इस अंतहीन कार्य की एक व्याख्या महिलाओं के जननी–पोषक के रूप में आर्थिक कार्य है, अर्थात संतानोत्पत्ति एवं बच्चों का पालन–पोषण। इस भूमिका में, महिलाओं को संतानोत्पत्ति एवं श्रमशक्ति की सेवा करने वाली सहायक के रूप में देखा जाता है। मार्क्सवादियों का मानना है कि महिलाओं का वेतन रहित कार्य सभी तरह की आर्थिक प्रणालियों को, खास तौर पर पूँजीवाद को, सहायता पहुँचाता है। उनके अनुसार, अपने काम से गृहिणियाँ वस्तुतः पूँजीवाद की सहायता करती हैं, जो जननी–पोषक के रूप में पत्नियों की वेतन रहित सेवाओं के बिना कभी जीवित नहीं रह सकता था। यदि घर पर महिलाओं की सेवाएँ गौण हैं, तो भी वे परिवार और समाज के अस्तित्व के लिए अनिवार्य और अपरिहार्य हैं।

घर पर महिलाओं के कार्य का सही मूल्य बता पाना कठिन है। देखा यह जाना चाहिए कि साफ–सफाई से शिशु परिचर्या से खाना पकाने से हाट–बाजार करने तक घरेलू कार्य पर महिलाएँ कितने घंटे खर्च करती हैं। ये घंटे विकासशील और औद्योगीकृत दोनों अर्थव्यवस्थाओं में बहुत होते हैं। इस कार्य का क्या मूल्य हो और घरेलू कार्य के लिए समुचित पारिश्रमिक या मजदूरी क्या हो इसका मूल्यांकन करना और निष्कर्ष पर पहुँचना बहुत कठिन है। इस प्रश्न के उत्तर को लेकर घरेलू कार्य के मूल्य को स्पष्ट करने के प्रति समर्पित नारीवादी अर्थशास्त्रियों के मत अलग–अलग हैं। एक मत के अनुसार, जिसका समर्थन संयुक्त राष्ट्र विश्व महिला उत्थान शोध एवं प्रशिक्षण संस्थान करता है, घर में किए जाने वाले कार्य के मूल्य को बाजार के माल और सेवाओं, जो घर में बने माल के बराबर होते हैं (जैसे रेस्त्राँओं में परोसा जाने वाला भोजन या व्यावसायिक कंपनियों द्वारा की जाने वाली साफ–सफाई) के मूल्यों के बराबर माना जाना चाहिए। इन उत्पाद–आधारित मूल्यांकनों से पता चलता है कि वेतन रहित घरेलू उत्पादों की गणना करने पर औद्योगिकीकृत देशों के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में 30 से 60 प्रतिशत और विकासशील देशों में तो इससे कहीं ज्यादा वृद्धि होगी।

वेतन रहित घरेलू श्रम के मूल्य पर गौर करने पर आर्थिक गतिविधि और उत्पादन में महिलाओं के योगदानों के प्रति हमारी मान्यता पूरी तरह से बदल जाती है। यदि घरेलू उत्पादों को स्थूल–आर्थिक लेखों की प्रणाली में शामिल किया जाए, तो सरकारें बिलकुल भिन्न आर्थिक और सामाजिक नीतियाँ लागू कर सकती हैं, और असंगठित क्षेत्र की महिलाओं के कार्य को समुचित मान्यता और महत्व दे सकती हैं।

समान मूल्य व वेतन साम्य

'समान मूल्य' शब्द की उत्पत्ति पश्चिम में, विशेष रूप से संयुक्त राज्य में हुई। शब्द इस सिद्धांत पर आधारित है कि विभिन्न क्षेत्रों में लागू वेतन संरचना और भुगतान नीतियों में एक लिंग आधारित विसंगति है और कि जिन कार्यों के लिए समान कौशल, दायित्व और प्रयास की आवश्यकता हो उनके लिए पुरुषों व महिलाओं को समान पारिश्रमिक दिया जाना चाहिए। यह अवधारणा, जिसे यौनिक समानता भी कहा जाता है, पुरुष व महिलाओं द्वारा संचालित परंपरागत व्यवसायों में वेतन में विसंगतियों को दूर

करने और समान कार्य के लिए पुरुषों और महिलाओं को समान वेतन की माँग करने वाले सुधारकों ने दी। समान मूल्य का सिद्धांत इस विचार की सिफारिश करता है कि जब महिलाओं द्वारा किए जाने वाले कार्यों को 'समान' माना जाता है, तो दोनों का पारिश्रमिक समान होना चाहिए।

समान मूल्य प्रशासनिक विधियों से मजदूरी की दर निधारित करने का प्रयास करता है। यदि अंक सभी कार्यों को दिया जाए, तो कदाचित अल्प वेतन वाले कामों में लगे लोगों के लिए वेतन समान हो जाएगा जिनमें ज्यादातर महिलाएँ हैं। 'समान मूल्य', जिसे 'वेतन साम्य' या 'समान वेतन' भी कहा जाता है, के प्रयास इस मान्यता से शुरू हुए कि भेदभाव वेतन में लिंग आधारित अंतर के कारण होता है। ज्यादातर देशों ने समान वेतन के व्यापक स्तर पर स्वीकृत सिद्धांत को स्वीकार कर लिया है। किंतु, समान मूल्य इस मत पर आधारित है कि किसी नियोक्ता अथवा समाज के लिए किसी कार्य के 'मूल्य' का आकलन निष्पक्षता अथवा तटस्थ भाव से किया जा सकता है, और कार्यों की श्रेणी का निर्धारण उनके परिगणित मूल्य पर किया जा सकता है। समान मूल्य के समर्थकों का मानना है कि यदि किसी महिला वर्चस्व वाले कार्य का मूल्यांकन किसी उच्च पारिश्रमिक, पुरुष वर्चस्व वाले कार्य के 'समान मूल्यवान' के रूप में किया जाए, तो महिला वर्चस्व वाले कार्य के वेतन में वृद्धि होनी चाहिए। समान वेतन समान कार्य के सिद्धांत के विपरीत, समान मूल्य के समर्थक मानते हैं कि मानदंड समान वेतन समान मूल्य का होना चाहिए क्योंकि महिलाओं को न्यून पारिश्रमिक वाले उद्योग और व्यवसाय में काम करने के लिए 'बाध्य' किया जाता है, और महिला वर्चस्व वाले कार्यों को 'कमतर' माना जाता है।

वर्ष 1960 में महिला आंदोलन के प्रबल होने के समय से महिला–पुरुष पारिश्रमिक में अंतर की समय–समय पर समीक्षा होती रही है। शोध से पता चला है कि शिशु देखभाल हेतु काम के समय में कमी के लिए वरीयता के आधार पर पुरुषों और महिलाओं के पारिश्रमिक के विशाल अंतर की व्याख्या नहीं की जा सकती। पुरुष वर्चस्व और महिला वर्चस्व के कार्यों में वेतनमानों के बीच पर्याप्त अंतर है। नारीवादी और महिला अधिकारों के समर्थक महिलाओं और पुरुषों की आर्थिक स्थितियों में समानता लाने के लिए समान मूल्य को सर्वाधिक महत्वपूर्ण नवीन साधन मानते हैं। महिलाओं के मुख्य रूप से स्वास्थ्य देखभाल, शिशु परिचर्या और प्राथमिक शिक्षा जैसे व्यवसायों में पारिश्रमिक पुरुष वर्चस्व वाले इन्हीं व्यवसायों के पारिश्रमिक की तुलना में दुखद स्थिति तक कम है। अक्सर देखा गया है कि जिन व्यवसायों में समान कौशल, शिक्षा, जोखिम और दायित्व की आवश्यकता होती है, उनमें महिलाओं को पुरुषों की तुलना में वेतन कम दिया जाता है। वेतनमान में लिंग आधारित ये विसंगतियाँ सर्वथा अनुचित हैं।

मौजूदा प्रणाली केवल महिलाओं के लिए ही अनुचित नहीं है, बल्कि यह समाज पर भी बोझ डालती है। उदाहरण के लिए, यह बात कि पारिश्रमिक की ये विसंगतियाँ चलती हैं, आक्रोश, कार्य के निष्पादन में कमी और तनाव तथा संघर्ष पैदा कर सकती है। इसके अतिरिक्त पारिश्रमिक में इन विसंगतियों के कारण कामगारों और समाज दोनों को कई बुरे परिणामों का सामना भी करना पड़ता है। एक बात है, सच्चे हित या

क्षमता की बजाय ऊँचे वेतन के लोभ से प्रेरित कई पुरुष व महिलाएँ अब ऐसे व्यवसायों में प्रवेश करने लगे हैं, जिनके लिए वे उपयुक्त नहीं होते। इस अनुपयुक्त प्रोत्साहन के चलते बार–बार असंतोष होता है और कार्य का वांछित निष्पादन नहीं हो पाता। वहीं, में त्रुटियाँ रह जाती हैं। वहीं, शिशु परिचर्या एवं प्राथमिक शिक्षा जैसे क्षेत्रों में निराशाजनक पारिश्रमिक के फलस्वरूप इन कार्यों में अपेक्षाकृत कम योग्यता वाले लोगों का प्रवेश और हमारे समाज के भविष्य के लिए अनिवार्य क्षेत्रों में कार्मिकों की कमी हुई है। तर्क दिया जाता है कि कार्यों के मूल्य और उनके लिए आवश्यक कौशलों के निष्पक्ष मानदंडों के अनुरूप अल्प वेतन के 'महिला कार्यों' में कार्यरत कामगारों के पारिश्रमिक को बढ़ाकर समान मूल्य के 'पुरुष कार्य' के पारिश्रमिक के स्तर के बराबर किया जाना चाहिए। कुछ देशों में समान मूल्य के समर्थक, जो इसे 'वेतन साम्य' भी कहते हैं, महत्वपूर्ण राजनीतिक समर्थन प्राप्त करने में सफल रहे हैं। इसके फलस्वरूप अभियान के प्रति खिंचाव बढ़ा है।

समान मूल्य के आलोचक इस मत का विरोध करते हैं कि पारिश्रमिक की मौजूदा प्रणाली अनुचित है। उनके अनुसार, कार्यों में वेतन की असमानता उनमें व्याप्त भेदभाव के कारण नहीं, बल्कि बाजार के कारकों, खास तौर पर महिलाओं में कुछ खास कार्यों की अत्यधिक माँग, के कारण है। वे यह भी मानते हैं कि महिलाओं के वर्चस्व वाले व्यवसायों में आय कम होती है क्योंकि इन व्यवसायों को अपेक्षाकृत कम अनुभव और प्रशिक्षण की जरूरत होती है और ये महिलाओं के अनुरूप कार्यक्रम कार्य परिवेश उपलब्ध कराने के लिए नियोक्ताओं पर लागत का बोझ डाल सकते हैं। एक और तर्क दिया जाता है, वह यह कि संबद्ध क्षेत्र में अपेक्षाकृत कम अनुभव होने के कारण 'पुरुष–प्रधान कार्यों' में महिलाओं का उपार्जन कम हो सकता है। समान मूल्य के विरोधी भी दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि बृहत स्तर पर समान मूल्य कार्यक्रमों को लागू करने से लागत में वृद्धि होगी और इस तरह नियोक्ताओं को हानि का सामना करना होगा। फलस्वरूप कई कंपनियाँ बंद हो जा सकती हैं, जिससे बेरोजगारी पनपेगी।

ऊपर की चर्चा से स्पष्ट हो जाना चाहिए कि समान मूल्य से जुड़ी समस्याएँ अत्यंत जटिल हैं और कई प्रश्न खड़े करती हैं। साक्ष्यों के अनुरूप, महिला–पुरुष के बीच वेतन की समानता कायम करने हेतु क्या उग्र सुधारवादी प्रणालियों की कोई जरूरत है? समान मूल्य की नीतियाँ कैसे लागू की जा सकती हैं?

भेदभाव रहित कारकों के जरिए महिलाओं और पुरुषों के बीच पारिश्रमिक के जिस अंतर का लेखा किया जाता है उसके घटकों का निर्धारण करने के समाज विज्ञानियों के प्रयास क्यों किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाए हैं, इसके कुछ कारण हैं। प्रथमतः, किसी काम के प्रति समर्पण या अर्थशास्त्रियों के अनुसार जीवन चर्या के प्रति लगाव की गहराई का पता लगाना बहुत कठिन है। ऐसे अनेकानेक शोध हुए हैं, जिनसे पता चलता है कि महिलाओं और पुरुषों के बीच पारिश्रमिक का लगभग आधे अंतर का कारण अनुभव में अंतर और स्कूली शिक्षा है। शोधों से यह भी पता चला है कि यदि समान शैक्षिक पृष्ठभूमि और अर्हताओं के पुरुषों व महिलाओं की तुलना की जाए, तो उनके बीच पारिश्रमिक का अंतर काफी कम हो सकता है। उदाहरणस्वरूप, देखा गया है कि अर्थशास्त्र में डॉक्टरेट की शिक्षा प्राप्त पुरुषों और महिलाओं के वेतन में अंतर लगभग 5 प्रतिशत है।

इसमें संदेह कम है कि कार्यस्थल पर महिलाओं के साथ भेदभाव होता है। किंतु, जिस रूप में यह भेदभाव होता है उसका प्रभाव ऊँचे पदों पर अवस्थित महिलाओं पर नहीं पड़ता।

4.2.2 महिला सशक्तीकरण

अनेकानेक मानव विज्ञानियों और इतिहासज्ञों ने कहा है कि महिलाएँ, समस्त मानव इतिहास में, भोजन, वस्त्र और हस्तशिल्पों की मुख्य उत्पादक रही हैं। जहाँ उत्पादन अभी भी लघु जीविका–निर्वाह क्षेत्र में है, वहाँ श्रम निवेश में आज भी महिलाओं का महत्वपूर्ण योगदान है। महिलाओं के कार्य के स्वरूप, सीमा और पैमाने का निर्धारण करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है क्योंकि जो कार्य महिलाएँ करती हैं उसका अधिकांश या तो सामने नहीं होता या फिर कार्य की भागीदारी के आँकड़ों में दर्ज नहीं होता। जो कार्य महिलाएँ करती हैं वह समाज में महिला की स्थिति और सामाजिक तारतम्य में परिवार की अवस्थिति पर निर्भर करता है।

महिलाओं के कार्य के विभिन्न प्रकारों में शामिल हैं :

- घरेलू कार्य;
- घर में की जाने वाली शिल्प गतिविधियों से जुड़े मजदूरी सहित और रहित कार्य
- गृह उद्यम या व्यवसाय और घर से बाहर वैतनिक कार्य

किसी घर के भीतर महिलाओं द्वारा किए जाने वाले कार्य के अपरिहार्य पहलू श्रम के महिला–पुरुष आधारित विभाजन से जुड़े होते हैं। 'गृह कार्य' के रूप में क्या होता है, यह आयु, लिंग, आय, अवस्थिति और परिवार के आकार पर निर्भर करता है।

उत्पादन एवं संतानोत्पत्ति

अध्ययन के क्षेत्र के रूप में अर्थशास्त्र को मान्यता मिलने के आरंभिक वर्षों में, सिद्धांतकारों ने मानव अर्थशास्त्र के केंद्रीय सम्मिलन घटकों (confluence) को स्वीकार किया : उत्पादन और जनन के बीच जोड़। उदाहरण के लिए, माल्थस जैसे सिद्धांतकारों ने खेती में वृद्धि और मानव आवादी के बीच संबंध की चर्चा की। किंतु, आगे चलकर जनन श्रम को आर्थिक विश्लेषण और सिद्धांत से निचोड़कर बाहर कर दिया गया। जनन श्रम का अर्थ है शिशु देखभाल, वैवाहिक काम और घरेलू कार्य, जैसे भोजन पकाना। नारीवादी विद्वान नैंसी फोलब्रे ने तर्क दिया है कि महिलाओं के लिए काम जन्य आजादी और आर्थिक अधिकारों के अभाव के चलते पुनरुत्पादी श्रम अर्थशास्त्र के चिंतन से गायब हो गया। किंतु, जनन श्रम का मुद्रीकरण नहीं हुआ है इसलिए इसकी अनदेखी की समस्या इसका एकमात्र कारण नहीं है कि क्यों जनन श्रम पर नए सिरे से जोर दिया जाए। जनन श्रम के महत्व को पुनः अपनाना परमावश्यक है क्योंकि आर्थिक क्षेत्र में महिला–पुरुष समानता की दिशा में यह एक गंभीर पहलू है।

समस्त मानव इतिहास में, महिलाओं को सुनियोजित ढंग से धनोपार्जन के पूरे क्षेत्र से अलग रखा गया है, न केवल वैतनिक कार्य से बल्कि जमीन–जायदाद और निवेश से भी। इस तरह, महिलाएँ आत्यंतिक रूप (fundamentally) से मौद्रीकरण से वंचित रही हैं (unmonetized)। यह वह स्थिति है जिसने महिलाओं को संकटग्रस्त और

पुरुषों पर निर्भर बना रखा है और जिसके परिणामस्वरूप महिलाएँ अपने घरों में बदतर अपमानजनक स्थितियों का सामना करने को विवश हैं क्योंकि जीविकोपार्जन का उनका अपना कोई स्वतंत्र साधन नहीं है। इसके अतिरिक्त, आज भी, कई परंपरागत समाजों में यह मान्यता प्रचलित है कि महिलाएँ केवल 'परिवार के पालन–पोषण के लिए' ठीक हैं। इसके फलस्वरूप परिवार अपनी बेटियों की शिक्षा में निवेश नहीं करते। सामाजिक बंधनों और कौशल–ज्ञान नहीं मिलने के कारण, यदि कोई महिला अपने तरीके से धनोपार्जन नहीं कर पाती, तो विवाह या घरेलू दासता के अलावा उसके पास कोई और रास्ता नहीं रह जाता।

इस तरह यह स्पष्ट है कि महिलाओं को महज वेतन के एक चेक से वंचित रखते हुए इस उपेक्षा के अनेकानेक प्रतिकूल प्रभाव होते हैं कि उत्पादन कार्य करने के लिए बाहर जाने की बजाय जनन कार्य करती हुईं, वे जहाँ हैं वहीं रहें। महिलाओं को जनन कार्य तक सीमित रखने–और उत्पादन कार्य से उन्हें दूर रखने–पर इस जोर से घरेलू हिंसा और गुलामी, और कई अन्य मानवीय त्रासदियाँ भी प्रबल होती हैं। यह रिवाज किसी प्रणाली का वह केंद्रबिंदु है जो समस्त संसार में महिला–पुरुष असमानता को कायम रखता है।

आर्थिक गतिविधि में महिला भागीदारी का लोप

घरेलू कार्य

आर्थिक सिद्धांत बाजार के लिए उत्पादन और स्व–उपयोग के लिए उत्पादन में अंतर करता है; यह केवल बाजार के लिए उत्पादन है जिसे कार्य के रूप में मान्यता दी जाती है। महिलाएँ मुख्यतः घर और उसमें रहने वालों की देखभाल से जुड़े अधिकांश कार्य करती हैं, इस कार्य को सामाजिक या आर्थिक स्तर पर महत्व बहुत कम या फिर नहीं दिया जाता, और परिणामस्वरूप, महिलाओं का महत्व गौण रह जाता है। ज्यादातर पारिश्रमिक रहित कार्य जो महिलाएँ घरेलू उद्योगों में करती हैं, उनमें भोजन पकाने, बच्चों की देखभाल, लकड़ी और पानी लाने, मवेशी की देखभाल आदि समेत सभी तरह के कार्य आते हैं। इस काम का कोई पारिश्रमिक नहीं होता, इसलिए इसे 'फलोत्पादी' कार्य नहीं माना जाता क्योंकि इसे स्व–उपयोग के लिए समझा जाता है। 'कार्य' की परंपरागत परिभाषा में वे गतिविधियाँ नहीं आतीं जिनका उपयोग–मूल्य होता है और विनिमय–मूल्य नहीं होता। खेती के क्षेत्र में, छोटे और उपांतीय किसान परिवार पारिवारिक श्रम का उपयोग करते हैं, क्योंकि वे बड़े जमींदारों की तरह भाड़े का श्रमिक नहीं रख सकते। हस्तशिल्प, हथकरघा बुनाई, बरतन निर्माण, पशुपालन, मुर्गी पालन, खाद्य संरक्षण व प्रसंस्करण आदि जैसे क्षेत्रों में भारी संख्या में महिलाएँ अपने घरों से कार्य करती हैं, फिर भी उन्हें कार्यकर्ता का स्थान नहीं दिया जाता। महिलाओं के घर के भीतर उनके पारिश्रमिक रहित कार्य के इस अमूल्यीकरण के कारण उनकी आर्थिक भूमिका के महत्व की कोई गणना नहीं होती। इकॉनॉमिक टाइम्स में प्रकाशित राजीव जायसवाल के एक आलेख में उल्लेख है कि भारत में महिलाओं द्वारा किए जाने वाले घरेलू कार्य को सरकार परिगणित करेगी, 'सरकार भारत में महिलाओं द्वारा मौन रहकर किए जाने वाले कार्यों का परिगणन करने और उन्हें सशक्त करने की रणनीतियों का पता लगाने पर विचार कर रही है'। तत्कालीन महिला एवं बाल विकास मंत्री कृष्णा

तीरथ के अनुसार पुरुष प्रभावित पितृसत्तात्मक समाज का एक बड़ा हिस्सा घर में महिलाओं के श्रम के योगदान को महत्वहीन मानता है, हालाँकि ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में महिलाओं द्वारा किया जाने वाला कार्य भारी और अत्यंत श्रम साध्य होता है, जिसने घर में भी पुरुषों की उत्पादकता के संवर्धन में सहायता की। इस 'अपरोक्ष' कार्य और इसके महत्व को समझने की जरूरत है। इस पारिश्रमिक रहित और अमान्य श्रम का मूल्य–निर्धारण बहुत जरूरी है, जो अंततः अर्थव्यवस्था में योगदान करता है।

अप्रत्यक्ष कार्य (Invisible Work)

जैसा कि आप जानते हैं, समस्त विश्व में पुरुषों और महिलाओं द्वारा किए जाने वाले कार्य में, विभिन्न देशों में वृद्धि और विकास के स्तरों के निरपेक्ष, एक बुनियादी अंतर है। ये अंतर एक खास सीमा तक शारीरिक अंतरों पर आधारित, किंतु सामाजिक सांस्कृतिक एवं आर्थिक कारकों (रोजगार के सांस्कृतिक और पारंपरिक ढाँचे, पितृसत्तात्मक प्रणाली, शिशु देखभाल) द्वारा प्रबलित हैं, जिन्होंने महिला–पुरुष अभिलक्षणों, कार्यों और गतिविधियों को आकार दिया है। अधिकांश विकासशील और अल्पविकसित देशों में, और कुछ हद तक विकसित देशों में भी, पुरुष ही भोजन का प्रबंध (breadwinner) और आय का उपार्जन करते हैं। दूसरी तरफ, महिलाओं के नानाविध दायित्व हैं – जनन, शिशुपालन और गृह कल्याणकारी कार्य, घर के कामकाज या उत्पादन कार्य और समुदाय प्रबंधन। कई विकासशील देशों में, महिलाओं का कार्य आत्यंतिक रूप से महिलाओं के समाजिक और सांस्कृतिक भूमिकाओं पूरा करने की जरूरत पर आधारित होता है।

महिलाएँ जो काम करती हैं उसका प्रभाव उनकी स्थिति पर पड़ता है। सामान्यतः, आर्थिक संदर्भ के कार्य का अर्थ पारिश्रमिक सहित रोजगार होता है। हाल तक, महिलाओं द्वारा किया जाने वाला ज्यादातर काम घरेलू रहा है, और आज भी है, इसलिए इसे हमेशा taken for granted और समुचित मान्यत नहीं दी गई है। ज्यादातर मामलों में, महिलाएँ अपना ज्यादातर उपयोगी समय घरेलू कार्यों में लगाती हैं, वे कार्य जिन्हें न तो कभी महत्व दिया जाता न ही जिनका कोई आर्थिक लाभ मिल पाता। घर पर महिलाओं के बेगार (unpaid work) का प्रश्न बीते चार या पाँच दशकों के दौरान प्रमुखता से उठाया गया है, और इसने अनेकानेक विद्वानों व बुद्धिजीवियों का ध्यान खींचा है, जिन्होंने इस यथा स्थिति के निरंतर बने रहने के कारणों का पता लगाने का प्रयास किया है। घरेलू कार्यों पर असीम परिश्रम करती एक गृहिणी (homemaker) के रूप में महिला के इस निरंतर जारी कार्य की एक व्याख्या जननी–पोषक, यानी, बच्चे उत्पन्न और उनका पोषण करने वाली के रूप में महिला के आर्थिक कार्य के रूप में की गई है। इस भूमिका में, महिलाओं को जनन कार्य एवं कामकाजियों की सेवा में सहायक के रूप में देखा जाता है। मार्क्सवादियों का मानना है कि महिलाओं का बेगार (unpaid work) सभी आर्थिक प्रणालियों, खास कर पूँजीवाद, की आर्थिक सहायता करता है। उनके अनुसार, गृहिणियाँ, अपने कार्यों से, वस्तुतः पूँजीवाद की आर्थिक सहायता करती हैं, जो जननी–पोषक के रूप में पत्नी के बेगार सेवा के बिना कभी जीवित नहीं रह सकता था। घर पर महिलाओं की सेवाएँ भले ही अप्रत्यक्ष हों, फिर भी वे परिवार और सामाज के बने रहने के लिए नितांत अपरिहार्य हैं।

टिप्पणी

घर में महिलाओं के कार्य के मूल्य की विश्वसनीय संख्या प्रस्तुत करना कठिन है; यह देखा जाना चाहिए कि घरेलू कार्य में महिलाएँ कितने घंटे लगाती हैं। विकासशील और औद्योगीकृत अर्थव्यवस्थाओं में घंटों की गणना की जाती है। घरेलू कार्य को क्या मूल्य दिया जाना चाहिए, और उसका समुचित या न्यायोचित परिलाभ अथवा पारिश्रमिक क्या हो, इसका मूल्यांकन और निर्णय करना बहुत कठिन है। नारीवादी धरे के अर्थशास्त्रियों ने घर के अप्रत्यक्ष कार्य को महत्व देने के एक मार्ग का पता लगाने का प्रयास किया है। संयुक्त राष्ट्र विश्व महिला उत्थान शोध एवं प्रशिक्षण संस्थान (यूनाइटेड नेशन्स इंटरनेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग इंस्टिट्यूट फॉर दि एडवांसमेंट ऑफ वीमेन/आइएनएसटआरएडब्ल्यू) ने इससे संबद्ध विचारों में से एक का पक्ष लिया है। इस विचार के अनुसार, किसी घर में किए जाने वाले कार्य का बाजार मूल्य बाजार के माल एवं सेवाओं के मूल्य पर आधारित होता है जिनकी तुलना घर में किए गए उत्पादन और सेवाओं से की जानी चाहिए। परिणाम आधारित इन मूल्यांकनों से पता चलता है कि घर के बेगार कार्यों को शामिल करने से औद्योगीकृत पश्चिमी देशों के सकल घरेलू उत्पाद में 30 से 6 प्रतिशत तक की वृद्धि होगी। विकासशील देशों में यह प्रतिशत और भी ऊँचा होगा।

घरेलू अप्रत्यक्ष कार्य के मूल्यांकन का एक अन्य दृष्टिकोण घरेलू उत्पादन, यानी भोजन पकाने, धुलाई–सफाई करने, शिशु देखभाल आदि में लगने वाले श्रम के योगदानों पर विचार करने का है। इस दृष्टिकोण को मानने वाले निम्नलिखित विध्यिों का उपयोग करते हैं :

- अवसर लागतों, अर्थात् महिलाओं के घर के बाहर पुरुष के समतुल्य घंटों तक काम करने की स्थिति में उन्हें मिलने वाले पारिश्रमिक, को अपनी गणनाओं का आधार बनाना
- काम के लिए किसी को, वह चाहे घरेलू नौकर जैसा कोई साधारण मजदूर हो या फिर बावर्ची (बीमर्ा) जैसा कोई विशेषज्ञ, बहाल करने पर आने वाली लागत को अपनी गणना का आधार बनाना, और फिर उन पारिश्रमिकों को घरेलू श्रम में बाँट देना। यह विधि घर के भीतर बेगार अप्रत्यक्ष कार्य के आकलन की सर्वाधिक उपयोगी विधि सिद्ध हुई है।

बेगार (पारिश्रमिक रहित) घरेलू कार्य की मान्यता देने से समाज को महिलाओं के आर्थिक योगदान के प्रति ज्ञान सार्थक ढंग से बदल जाता है। यदि घरेलू उत्पाद को बृहत (स्थूल) आर्थिक परिकलन की प्रणाली से जोड़ दिया जाए, तो देश विकास की पूर्णतः भिन्न नीतियाँ और कार्यक्रम अच्छी तरह से लागू कर सकते हैं, और महिलाओं के असंगठित कार्य को यथोचित मान्यता व महत्व मिल सकता है।

'महिलाओं के तथाकथित कार्य' को कमतर आँकना एक बहुत बड़ी समस्या है। निश्चित रूप से, घर में कार्य का तात्पर्य धुलाई–सफाई, भोजन पकाने, शिशु पालन और कई अन्य कार्यों से है। इस तरह यह बोझ पहले ही घर से बाहर काम कर रही महिला कामगार पर पड़ता है, यह एक भारी बोझ होता है। किंतु, महिलाओं के लिए इस कटु यथार्थ से बच निकलने का कोई रास्ता नहीं है – कि महिलाओं को घर का अधिकांश काम करना है, वे चाहे काम करने के लिए बाहर भी क्यों न जाती हों।

महिलाओं का कार्य और तकनीकी

वैश्वीकरण के फलस्वरूप, विश्व में तकनीकी और सामाज में परिवर्तन जिस तेजी से आज हो रहा है, इससे पहले नहीं देखा गया। साथ ही, महिला–पुरुष मुद्‌दों को मुख्य धारा में लाने से समाज में महिलाओं की स्थिति में सुधार किस प्रकार लाया जाए इस पर लोगों का खास ध्यान गया है। बीसवीं शताब्दी के इतिहास से यह बात सामने आई है कि किस प्रकार सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी शक्तियाँ ऐसे नव परिवर्तन को हवा दे सकती हैं जो जीवन का सुधार कर सके। नई संकल्पनाओं और उद्यमिता कौशल, नई–नई तकनीकियों, उत्पादों और प्रणालियों के उपयोग से महिलाओं और विशेष रूप से बालिकाओं के कल्याण पर यथेष्ट प्रभाव पड़ सकता है। इन नव परिवतनों से महिलाओं के लिए आर्थिक, उद्यमिता जन्य या शैक्षिक अवसर सामने आ सकते हैं और समाज में महिलाओं की स्थिति में सुधार की संभावना बन सकती है।

वैज्ञानिक शोध से पता चला है कि महिलाओं के सशक्तीकरण में संभावनाओं की सहायता लेने में तकनीकियों का बहुत कम उपयोग किया गया है और यह कि समाज में तकनॉलॉजी के स्तर पर महिला–पुरुष का एक विशाल अंतर बना हुआ है। उदाहरण के लिए, कई विकासशील देशों में, जहाँ तक टेलीफोन, इंटरनेट या रेडियो के उपयोग की बात है, उसमें महिलाएँ पुरुषों से बहुत पीछे हैं। कई समाजों में, महिलाओं को शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य और साफ–सफाई की सुविधा बहुत कम सुलभ हो पाती है, इसलिए महिलाओं को यदि टैक्नोलॉजी की सुविधा पुरुषों से कम उपलब्ध होती हो, इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

शोधों से यह भी पता चला है कि महिला–पुरुष के विशाल अंतरों के कारण समस्त विश्व में महिलाओं को तक्नॉलॉजी के उपयोग और उपलब्धता में बाधाओं का सामना करना पड़ता है। इसके प्रधान कारण इस प्रकार हैं :

- सामाजिक मानदंडों या भेदभाव के कारण तकनीकी सुविधा का अभाव
- प्रशिक्षण या शिक्षा का अभाव
- पाविारिक दायित्वों के चलते समय का अभाव
- उपकरण का महँगा होना
- तकनीकी में महिलाओं की आवश्यकताओं को स्थान नहीं

तकनीकी के उपयोग में महिला–पुरुष अंतर के बावजूद, एक शोध से पता चलता है कि 'वैश्विक अर्थव्यवस्था और इसमें तेजी से हो रहे तकनीकी परिवर्तनों से विकासशील देशों में महिला–पुरुष असमानता और तकनीकी के स्तर पर भेद को पाटने के विशाल अवसर बनते हैं और निम्न व मध्यम आय वर्ग की महिलाओं के आर्थिक उत्थान को गति देने में तकनीकी के लाभ संतुलित रूप से मिलते हैं।' महिलाओं को सशक्त करने के लिए तकनीकी के उपयोग की एक विधि यह है कि महिलाओं के लिए शिक्षा या उद्यमिता और व्यवसाय साक्षरता में कुछ कौशलों का विकास करने हेतु वे कार्यक्रम तय किए जाएँ जिनमें कनीकियों का उपयोग होता हो।

आइसीआरडब्ल्यू के शोध में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि तक्नॉलॉजी आर्थिक विकास का एक इंजिन है। खाड़ी के देशों में हुए एक शोध से पता चलता है कि वृद्धि

और आर्थिक संपन्नता के लिए तक्नॉलॉजी इतनी महत्वपूर्ण है कि यदि निम्न स्तर के निवेश और मानव संसाधन के विकास के साथ तक्नॉलॉजी के दोषों को दूर कर दिया जाए, तो यह क्षेत्र प्रभावशाली ढंग से जी–7 के देशों के साथ अपनी आय की खाई को वर्ष 2050 तक भर सकता है।

इस तथ्य के बावजूद कि नई तकनीकियाँ और महिलाओं का उत्थान घनिष्टता से जुड़े हैं, इस संदर्भ में उन पर कभी चर्चा नहीं की जाती। अंतरराष्ट्रीय महिला शोध केंद्र (आइसीआरडब्ल्यू) के एक शोध से पता चला है कि महिलाओं की तक्नॉलॉजी तक पहुँच को सरल करने और उसके उपयोग में उनके आर्थिक उत्थान को सहज करने की संभावना है और नीचे वर्णित कार्यों से आर्थिक वृद्धि को और विस्तार दिया जा सकता है :

(क) चालू गतिविधियों में महिलाओं की उत्पादन क्षमता में सुधार या उन्हें आय अर्जन के अन्य अवसरों का लाभ लेने की छूट;

(ख) उनकी अपनी सहायता के लिए कौशल का विकास और और आत्म–विश्वास जगाने के साथ–साथ आय और संसाधनों तक पहुँच का प्रबंध;

(ग) विस्तृत सामाजिक लाभों का अवसर – जैसे उनके बच्चों के लिए बेहतर स्वास्थ्य और शिक्षा की सुविधा; और

(घ) उनके घरों और समुदायों की आर्थिक स्थितियों में सुधार

महिलाओं और पुरुषों के बीच तकनीकी के उपयोग में भेदभाव को संयुक्त राष्ट्र ने भी माना है।

संयुक्त राष्ट्र की भूमिका

बीते 30 वर्षों के दौरान, संयुक्त राष्ट्र महासभा और संयुक्त राष्ट्र आर्थिक एवं सामाजिक आयोग (ईसीओएसओसी) ने महिलाओं की शिक्षा, तकनीकी, प्रशिक्षण और श्रम बाजार की सुविधा में असमानताओं, अभावों, और विषमताओं से जुड़े मुद्दों पर बल दिया है। इस विषय पर संयुक्त राष्ट्र महिला एवं विकास दशक (1975–1985) समेत कई महत्वपूर्ण अंतरराष्ट्रीय प्रयास शुरू किए गए हैं, और विज्ञान एवं तकनीकी में महिलाओं की भूमिका के प्रति विशेष ध्यान दिया गया है। महिला–पुरुष समानता संयुक्त राष्ट्र के आठ सहस्राब्द विकास लक्ष्यों (आठ संयुक्त राष्ट्र सहस्राब्द विकास लक्ष्य/यूनाइटेड नेशंस मिलेनियम डिवेलपमेंट गोल्स) में से एक है, जो विज्ञान, तकनीकी और लिंग से जुड़ी गतिविधि के लिए नितांत आवश्यक है। इस पृष्ठभूमि के मद्देनजर, और विज्ञान में इसकी अनिवार्यता को देखते हुए, ऊपर वर्णित मुद्दों–समस्याओं के समाधान, संबद्ध अनुशंसाओं के क्रियान्वयन और विज्ञान एवं तकनीकी में महिलाओं की भूमिका और महिला–पुरुष आयाम के प्रति अपने कार्यक्रमों और गतिविधियों के साथ संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) से एक महती भूमिका के निर्वाह की दिशा में अग्रसर है।

असंगठित एवं संगठित क्षेत्रों में महिलाएँ

अर्थव्यवस्था में महिलाओं के योगदान की अनदेखी नहीं की जा सकती, खास तौर पर तीसरे विश्व में जहाँ खेती अर्थव्यवस्था के मुख्य स्रोतों में से एक है। इन देशों में कृषि

श्रम शक्ति का एक बड़ा हिस्सा महिलाओं का है। खेती के विकास हेतु शुरू की गई रणनीतियों का लक्ष्य मशीनीकरण के जरिए उत्पादन में वृद्धि करना है किंतु, कृषि श्रम शक्ति में महिला–पुरुष अनुपात की उपेक्षा की जाती है। बढ़ते समय के साथ–साथ पुरुषों ने तकनीकी विकास का लाभ उठाया जबकि महिलाएँ हाशिए पर ही रह गईं। अनेकानेक शोधों से पता चलता है कि महिलाएँ पुरुषों से छह से सात गुणा अधिक बेरोजगार हैं; इसलिए वे ज्यादातर अल्प मजदूरी की अनियत मजदूरों के रूप में कार्य करती हैं।

भारत की कुल आबादी में 48.26 प्रतिशत महिलाएँ हैं। ग्रामीण भारत में, लगभग 30 लाख महिलाओं की आजीविका खेती और मवेशी पालन पर निर्भर करती है। वर्ष 1995 से 2001 के दौरान 1,47,000 महिलाएँ वस्त्र उद्योग में कार्यरत थीं। भारत में 397 मिलियन कामगार हैं जिनमें 123.9 मिलियन महिलाएँ हैं – इनमें 106 मिलियन ग्रामीण भारत में और शेष 18 मिलियन कामगार शहरी क्षेत्रों में हैं। महिला कामगारों की भागीदारी 19.7 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 2001 में 25.7 प्रतिशत हो गई। काम की भागीदारी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, किंतु ज्यादातर अल्प मजदूरी के कामों में जहाँ महिलाएँ अधिक समय तक काम करती हैं, उन्हें कोई विशेष सहायता भी नहीं दी जाती और आर्थिक व शारीरिक दोनों उत्पीड़नों से उनका सामना होता है।

मजदूरी में एक विशाल अंतर एक अन्य समस्या है जिसका कृषि महिला कामगारों को सामना करना पड़ता है। भुगतानों से संबंधित कई कानूनों के बावजूद और समान कार्य समान वेतन मुहैया कराने के कानूनी विनिर्देशों के परे, महिलाओं के विरुद्ध मजदूरी में भेदभाव भारत में, विशेष रूप से खेती और भवन निर्माण स्थलों जैसे असंठित क्षेत्रों में सर्वत्र, व्याप्त है। अपने स्वरूप में खेती मौसमी होती है; इसलिए अपने अवकाश के समय के दौरान और अकाल जैसी परिस्थितियों में महिलाओं को आय के वैकल्पिक स्रोतों की तलाश करनी पड़ती है। इन परिस्थितियों में, अनेकानेक महिलाएँ शहरी क्षेत्रों में चली जाती हैं। कभी–कभी पुरुष सदस्य अपने पीछे अपनी पत्नियों और बच्चों को गरीबी व भूख की प्रतिकूल परिस्थितियों से लड़ने के लिए छोड़कर चले जाते हैं। कभी–कभी कई काश्तकार अपनी जमीन–जायदाद को गिरबी रखकर और उसे वापस प्राप्त करने की मंशा से धनोपार्जन के लिए चले जाते/जाती हैं।

ग्रामीण महिलाओं की ज्यादातर समस्याएँ गरीबी के कारण पनपती हैं, जो उन्हें दुःख–तकलीफ और दरिद्रता का जीवन जीने को विवश करती है। विभिन्न योजनाओं के जरिए उन्हें विकास कार्यक्रमों की मुख्य धारा में लाने के लिए भारत सरकार ने कई प्रयास किए हैं। किंतु ग्रामीण महिलाओं की स्थिति संतोषजनक नहीं है। पहली पंचवर्षीय योजना में महिलाओं के कल्याण पर बल दिया गया था। अंतरराष्ट्रीय (विश्व) महिला दशक 1975–85 का महिलाओं से जुड़ी योजना प्रक्रिया पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। नौवीं योजना ने महिला सशक्तिकरण को महिलाओं के हितों के विकास के एक मापन उपकरण के रूप में अपनाया। वर्ष 2001 की भारत में महिला सशक्तिकरण वर्ष के रूप में घोषणा की गई है और भारत ने महिला सशक्तिकरण की एक राष्ट्रीय योजना तैयार की है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. सामान्य महिला सशक्तीकरण के कितने घटक माने गए हैं?
   (क) तीन (ख) चार
   (ग) पांच (घ) छः
2. अंतर्राष्ट्रीय महिला दशक कौन–सा था?
   (क) 1955–65 (ख) 1975–85
   (ग) 1985–1995 (घ) 1995–2005

4.3 विकास की तकनीकें

तकनीक के चुनाव की समस्या मुख्य रूप से उत्पादन के श्रम प्रधान और पूंजी प्रधान तकनीकों के बीच चुनाव करने की है। प्रो. ए.के. सैन ने तकनीक के चुनाव की समस्या के विषय में अपने विचार रखते हुए कहा ''आर्थिक नियोजन की सफलता विनियोग व्यवस्था और नियोजन के स्वरूप पर इतनी निर्भर नहीं करती जितनी कि यह उस तकनीक पर निर्भर करती है जिसको नियोजन हेतु स्वीकार किया गया है, यदि किसी कारणवश एक गलत तकनीक का चयन कर लिया जाए तो इससे नियोजन की असफलता का डर बना रहता है।'' विकास नियोजन की दृष्टि से तकनीक के चुनाव की समस्या का अत्यधिक महत्व है, क्योंकि विकास दर, विनियोग संरचना, कीमत यंत्र, लागत संरचना तथा उत्पादन की मात्रा जैसे अनेक पहलू तकनीक के चुनाव से ही संबंधित है।

4.3.1 पूंजी–प्रधान तकनीक

पूंजी प्रधान तकनीक वह तकनीक है जिसमें पूंजी का अधिक मात्रा में और श्रम का कम मात्रा में प्रयोग किया जाता है। इसमें अधिक पूंजी को कम श्रम के साथ मिलाया जाता है। इस प्रकार यह तकनीक श्रम की अपेक्षा पूंजी पर अधिक जोर देती है। इस तकनीक को पूंजी अथवा श्रम बचतकारी तकनीक भी कहा जाता है। पूंजी प्रधान तकनीक को निम्न रेखाचित्र की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है–

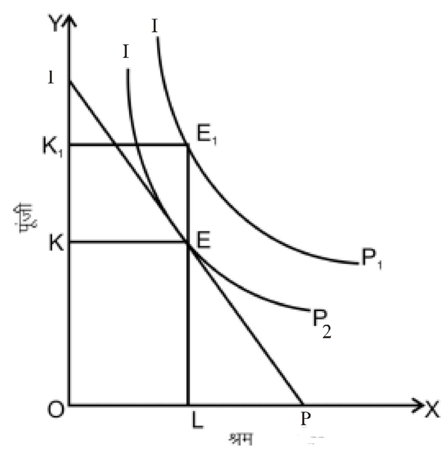

रेखाचित्र में IP समोत्पाद वक्र उत्पादन के प्रारंभिक स्तर को दिखलाता है जो पूंजी की OK मात्रा तथा श्रम की OL मात्रा के संयोग द्वारा उत्पन्न किया जा रहा है। अब उत्पादन की नई तकनीक अपनाने पर पूंजी की अधिक मात्रा OK_1 किंतु श्रम की उतनी ही मात्रा OL का प्रयोग करके उत्पादन का ऊंचा स्तर प्राप्त किया जा सकता है। इसे समोत्पाद वक्र IP_1 द्वारा दर्शाया गया है।

पूंजी प्रधान तकनीक के लाभ

अल्प विकसित देशों में पूंजी प्रधान तकनीक के प्रयोग किये जाने के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं–

1. **रोजगार में वृद्धि**– पूंजी प्रधान तकनीक के अंतर्गत श्रम प्रधान तकनीक की अपेक्षा विकास की दर अधिक तेजी से बढ़ती है जिससे अधिकाधिक श्रमशक्ति को रोजगार मिलता है।
2. **आधुनिक तकनीक के लाभ**– पूंजी प्रधान तकनीक को अपनाकर आधुनिक तकनीक के लाभ प्राप्त होते हैं क्योंकि इसके द्वारा कुशल उत्पादक इकाइयों की स्थापना होती है। पाल बरान के शब्दों में, ''श्रम प्रधान तकनीक के अपनाए जाने का अर्थ होगा, तकनीकी प्रगति का अंत करना जिसके फलस्वरूप आर्थिक विकास का कार्य रूक जाएगा और आज के इस प्रगतिशील युग में संभवतः कोई भी विकासशील राष्ट्र विकास को अवरुद्ध करने और तकनीकी प्रगति के लाभों से वंचित रहने का खतरा मोल नहीं ले सकता।''
3. **श्रमशक्ति का उचित उपयोग**– अल्पविकसित देशों में श्रम का आधिक्य एक अस्थायी स्थिति है। विकास प्रक्रिया के दीर्घकाल तक चलते रहने पर यह हो सकता है कि श्रम सुलभ साधन न रहकर दुर्लभ साधन हो जाए। अतः इन्हें प्रारंभ से ही 'श्रम बचतकारी' उपायों को अपनाना चाहिए।
4. **रहन–सहन के स्तर में वृद्धि**– पूंजी प्रधान तकनीक अपनाने पर बड़े पैमाने पर उत्पादन संभव होता है। फलतः कम उत्पादन लागत पर अच्छे किस्म की वस्तुएं उत्पन्न की जा सकती हैं। इससे उपभोक्ताओं को कम कीमत पर अधिक वस्तुएं उपलब्ध होने लगती है और उनके रहन–सहन का स्तर ऊपर उठने लगता है। प्रो. राव का मत है कि देश में श्रम–प्रधान तकनीक को पूंजी प्रधान तकनीक से प्रतिस्थापित करने पर बचतों में लगभग 30 प्रतिशत वृद्धि हो सकती है।
5. **तीव्र आर्थिक विकास**– पूंजी प्रधान तकनीक आर्थिक विकास को तीव्र करती है इसका कारण यह है कि श्रम प्रधान तकनीक के अपनाने पर राष्ट्रीय आय का एक बड़ा भाग साहसियों को प्राप्त होता है इनकी बचत प्रवृत्ति अपेक्षाकृत अधिक होती है। इस बचत के पुनर्विचार किये जाने पर पूंजी निर्माण की दर बढ़ जाती है जिससे देश का तीव्र आर्थिक विकास संभव होता है।
6. **उत्पादकता में वृद्धि**– पूंजी प्रधान तकनीक के अपनाने पर प्रति श्रमिक उत्पादकता में तेजी के साथ वृद्धि होती है। प्रो. हर्षमैन के शब्दों में ''पूंजी प्रधान तकनीक आवश्यक रूप से श्रमिकों की कुशलता अर्थात उत्पादकता को बढ़ाती

टिप्पणी

है और यह आर्थिक विकास का अच्छा प्रतीक है क्योंकि इससे पूंजी निर्माण को बल मिलता है।''

7. **कार्य कुशलता में वृद्धि**– पूंजी प्रधान तकनीक अपनाने पर श्रम व प्रबंध की कार्य कुशलता में वृद्धि होती है।
8. **मितव्ययी**– उत्पादकता की दृष्टि से पूंजी प्रधान तकनीक श्रम प्रधान तकनीक की अपेक्षा अधिक लाभप्रद मानी जाती है। इसका मुख्य कारण बड़े पैमाने की बचतों का प्राप्त होना है जिससे लागत की तुलना में तेजी से वृद्धि होती है।
9. **विस्तार प्रभाव**– पूंजी प्रधान तकनीक का आर्थिक विकास पर दीर्घकालीन प्रभाव पड़ता है और इनका कुल प्रभाव मिलकर अपेक्षाकृत अधिक होता है।
10. **अवसंरचना का विकास**– अल्पविकसित देशों में सामाजिक उपरिपूंजी का अभाव पाया जाता है। यह अवसंरचना किसी भी देश की आर्थिक प्रगति की एक पूर्व शर्त है। अवसंरचना के विकास के कार्यक्रम सामान्यतः पूंजी प्रधान होते हैं। अतः इन देशों में आर्थिक उपरिपूंजी के विकास के लिए पूंजी प्रधान तकनीक अपनाई जाती है।
11. **विकासोन्मुखी वातावरण तैयार करना**– अधिकांश अल्प विकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि दर बहुत ऊंची होती है। अतः उत्पादकता में वृद्धि करने के लिए पूंजी श्रम अनुपात में वृद्धि करना आवश्यक है।
12. **श्रम प्रधान तकनीक अंततः पूंजी प्रधान तकनीक होती है**– प्रो. बरान के अनुसार, श्रम प्रधान तकनीक सभी अर्थों में पूंजी प्रधान तकनीक ही है। वास्तव में श्रम प्रधान तकनीक के अपनाये जाने पर ग्रामीण जनसंख्या रोजगार प्राप्त करने की दृष्टि से शहरी क्षेत्रों की ओर प्रवास करने लगती है जिसके लिए शहरों में विभिन्न सुविधाएं जुटानी होती है। इस मद पर उससे कहीं अधिक व्यय करना पड़ता है, जितना वैकल्पिक पूंजी प्रधान तकनीक में व्यय करना पड़ता है।

पूंजी प्रधान तकनीक के दोष या सीमाएं

पूंजी प्रधान तकनीक की सीमाएं निम्नलिखित हैं–

1. अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाओं में पूंजी प्रधान तकनीक पूंजी का अपव्यय है।
2. अल्प विकसित देशों में आर्थिक एवं सामाजिक उपरिपूंजी का प्रायः अभाव पाया जाता है, जिसके कारण यह तकनीक अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं होती।
3. स्वचलित यंत्र जो उन्नत औद्योगिक देशों की दशाओं में उपयुक्त होते हैं वे अल्प विकसित देशों में प्रायः उपयुक्त पड़े रहते हैं।
4. आयातित उपकरणों की मरम्मत व मैनटेनेंस पर बड़ी मात्रा में व्यय करना पड़ता है।
5. पूंजी प्रधान तकनीक के अपनाने से बड़ी मात्रा में विनियोग की आवश्यकता होती है जो अल्पविकसित देशों की पहुंच से बाहर है।

6. पूंजी प्रधान तकनीक अपनाने पर अल्पविकसित देशों को बड़ी मात्रा में पूंजीगत उपकरणों एवं तकनीकी ज्ञान के आयात की आवश्यकता होती है इसका इन देशों के भुगतान संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
7. इन देशों में श्रम की प्रचुरता पायी जाती है और पूंजी दुर्लभ होती है अतः यह तकनीक अल्पविकसित देशों के लिए उपयुक्त नहीं है।

   सार रूप में कहा जा सकता है, कि दोनों तकनीकों की अपनी–अपनी सीमाएं हैं। अतः हमें इनमें से एक ऐसे विकल्प की तलाश करनी चाहिए जो अल्प विकसित देशों के लिए उपयुक्त हो। अर्थात ऐसी तकनीक का चुनाव किया जाना चाहिए तो एक ओर आयवृद्धि की ऊंची दर तथा उपभोग के ऊंचे स्तर को प्राप्त करे और दूसरी ओर अधिक रोजगार प्रदान कर सके। इस दृष्टि से इन देशों के लिए सबसे अच्छा तरीका संभवतः यह होगा कि भारी एवं आधारभूत उद्योगों तथा अवसंरचना के विकास में पूंजी प्रधान तकनीक का प्रयोग किया जाए तथा कृषि एवं अन्य उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में श्रम प्रधान तकनीक का प्रयोग किया जाए।

4.3.2 श्रम–प्रधान तकनीक

अल्प विकसित देश के लिए श्रम तथा पूंजी –तकनीकों के बीच, हल्के तथा भारी उद्योगों के बीच, कृषि तथा उद्योगों के बीच विकल्प विद्यमान रहते हैं, परंतु अंतिम चुनाव श्रम गहन तथा पूंजी गहन–विधियों में से चुनने का रहता है, चाहे वह कृषि हो या उद्योग अथवा हल्के भारी उद्योगों में हो ''विभिन्न तकनीकों का अभिप्राय होता है कि अर्थव्यवस्था का निष्पादन केवल विभिन्न प्रयत्नों का आर्थिक विकास की बिल्कुल विभिन्न कूटनीतियों के साथ सामंजस्य बैठाना। इसका अंतिम उद्देश्य उस तकनीक का चुनाव करना होता है जो वर्तमान साधन अनुपातों को ध्यान में रखते हुए अन्य तकनीक की अपेक्षा अधिक दक्ष हों।''

श्रम–प्रधान तकनीक उत्पादन की वह तकनीक है जिसमें तुलनात्मक रूप से श्रम की अधिक मात्रा और पूंजी की कम मात्रा का प्रयोग किया जाता है अर्थात यह उत्पादन की वह तकनीक है जिसमें श्रम की अधिक मात्रा को पूंजी की कम मात्रा के साथ मिलाया जाता है। यह तकनीक श्रम गहन अथवा पूंजी बचतकारी तकनीक भी कहलाती है। तुलनात्मक दृष्टि से श्रम की अधिक मात्रा और पूंजी की कम मात्रा का प्रयोग करने के कारण इस तकनीक को श्रम प्रधान तकनीक कहते हैं। श्रम–प्रधान तकनीक के उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव को निम्न रेखाचित्र की सहायता से दर्शाया जा सकता है–

टिप्पणी

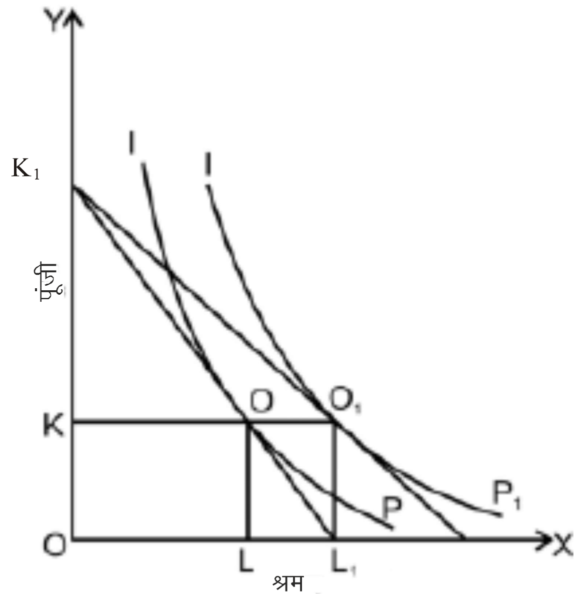

रेखाचित्र में IP समोत्पाद वक्र उत्पादन के प्रारंभिक स्तर को बतलाता है, जो अर्थव्यवस्था में श्रम की OL मात्रा तथा पूंजी की OK मात्रा के संयोग द्वारा उत्पन्न किया जा रहा है। उत्पादन की नई तकनीक अपनाने पर पूंजी की उतनी मात्रा अर्थात OK से, श्रम की अधिक मात्रा OL_1 का अधिक ऊंचा स्तर प्राप्त किया जा सकता है जिसे IP_1 समोत्पाद वक्र द्वारा दिखाया गया है।

श्रम प्रधान तकनीक के लाभ

अल्प विकसित देशों में प्रायः श्रम की प्रधानता होती है इसलिए श्रम प्रधान तकनीक ही इन देशों के लिए अधिक उपयुक्त है, इस तकनीक के विभिन्न लाभ या पक्ष में तर्क इस प्रकार हैं–

1. **मितव्ययी विधि–** अल्पविकसित देशों में पूंजी सस्ती तथा श्रम महंगा होता है। अतः इन देशों को उच्च श्रम पूंजी अनुपात को प्राथमिकता देनी चाहिए ताकि अर्थव्यवस्था पर आर्थिक दबाव न्यूनतम हो।
2. **स्फीतिकारी शक्तियों पर रोक–** एक विकासशील अर्थव्यवस्था में श्रम प्रधान तकनीक आवश्यक रूप से मुद्रा प्रसारिक दबावों को कम करती है। इसका कारण यह है कि इस तकनीक को अपनाने पर उपभोक्ता वस्तुओं की पूर्ति को जल्दी और आसानी से बढ़ाया जा सकता है। इससे मुद्रा प्रसार पर नियंत्रण लगता है।
3. **बेरोजगारी की समस्या का समाधान करने में सहायक–** अल्प विकसित देशों में श्रम की प्रचुरता तथा पूंजी की कमी पाई जाती है। फलतः पूंजी श्रम–अनुपात नीचा होता है। जनसंख्या की वृद्धि दर ऊंची होने के कारण बेरोजगारी की समस्या व्यापक रूप से पाई जाती है। अदृश्य बेरोजगारी ऐसे देशों की प्रमुख समस्या है। ऐसी दशा में वहां वह तकनीक ही अपनाई जानी चाहिए जो श्रम का अधिकाधिक प्रयोग करे और ज्यादा से ज्यादा लोगों को रोजगार प्रदान कर सके।

टिप्पणी

4. **उपभोग–प्रवृत्ति को ऊंचा उठाने में सहायक**– श्रम–प्रधान तकनीक को अपनाकर उपभोग के स्तर को ऊंचा उठाया जा सकता है। यह तकनीक मजदूरी के स्तर पर ऊंचा उठाने की प्रवृत्ति रखती है जिससे उपभोग व्यय में वृद्धि होती है।
5. **सीमित साधनों का सर्वोत्तम प्रयोग**– अल्पविकसित देशों में पूंजी तथा उद्यमीय क्षमता का सर्वथा अभाव होता है अतः इन देशों में ऐसी तकनीक को अपनाया जाना चाहिए जिससे दुर्लभ साधनों का अधिक अच्छा उपयोग किया जा सके। इन देशों में पूंजी प्रधान तकनीक को अपनाने से पूंजी का अपव्यय होता है और लाभदायक विनियोग की संभावना कम होने लगती है।
6. **कम लागत**– श्रम–प्रधान तकनीक को अपनाने पर सामाजिक व आर्थिक लागत कम हो जाती है। छोटे पैमाने पर उत्पादन करने से अवसंरचना, श्रम कल्याण एवं सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों पर अधिक व्यय करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस प्रकार सामाजिक परिपूंजी पर किये जाने वाले व्यय में कटौती की जा सकती है।
7. **विकेंद्रीयकरण के लाभ**– श्रम प्रधान तकनीक को अपनाने पर विकेंद्रीयकरण के लाभ प्राप्त होते हैं। छोटे उद्योगों की अधिकाधिक स्थापना के कारण समाज के सभी वर्गों को विकास के समान अवसर प्राप्त होते हैं और शोषण व उत्पीड़न की संभावना नहीं होती।
8. **आर्थिक विषमताओं में कमी**– श्रम प्रधान तकनीक अपनाने पर देश में आय तथा धन के वितरण की विषमताएं कम होती हैं। श्रम प्रधान तकनीक लोगों की आय में वृद्धि करती है, रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध कराकर आय को अधिक लोगों में वितरित करती है। इस प्रकार श्रम प्रधान तकनीक सामाजिक दृष्टि से भी न्यायसंगत है।
9. **औद्योगीकरण के दोषों से मुक्ति**– श्रम प्रधान तकनीक लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास को प्रोतसाहित करती है और औद्योगीकरण के दोषों से अर्थव्यवस्था को मुक्त रखती है।
10. **विदेशी मुद्रा की बचत**– श्रम प्रधान तकनीक में देश में ही उत्पादित साधारण किस्म के औजार एवं मशीनों का प्रयोग किया जाता है। अतः भारी मशीनों को विदेशों से आयात करने की आवश्यकता नहीं होती। फलस्वरूप विदेशी विनिमय की बचत होती है। इसके अतिरिक्त इसका भुगतान संतुलन पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

श्रम प्रधान तकनीक की सीमाएं

श्रम प्रधान तकनीक की मुख्य सीमाएं निम्नलिखित हैं–

1. अल्प विकसित देशों में श्रम प्रधान तकनीक तीव्र आर्थिक विकास के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है।
2. इस तकनीक को अपनाने से आर्थिक विकास में अनिश्चितता बनी रहती है।
3. आर्थिक विकास की गति धीमी होने पर समाज पिछड़ा रह जाता है और लोगों में नैराश्य की भावना बलवती हो जाती है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

3. पूंजी–प्रधान तकनीक को और किस नाम से जाना जाता है?
   (क) श्रम बचतकारी तकनीक (ख) श्रम तकनीक
   (ग) दोहन तकनीक (घ) इनमें से कोई नहीं
4. श्रम–प्रधान तकनीक में–
   (क) पूंजी की कम मात्रा का प्रयोग होता है
   (ख) श्रम ज्यादा मात्रा में प्रयोग होता है
   (ग) दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं

4.4 मानव विकास सूचकांक

यद्यपि प्रतिव्यक्ति GNP और GNP को ही आर्थिक विकास के माप के रूप में विश्लेषित किया गया लेकिन इस अवधारणा में सामाजिक कल्याण की उपेक्षा की गई। केवल आय वृद्धि को ही हम विकास का मार्ग नहीं मान सकते, इसलिए अर्थशास्त्रियों जैसे प्रो. एवेरेट, ई डेगन, प्रो. हरबिन्सन, मौरिस डी. मौरिस ने जीवन की भौतिक गुणवत्ता सूचकांक (PQLI Physical Quality of Life Index) की अवधारणा को विकसित किया।

मूलभूत आवश्यकताएं मानवीय जीवन का एक लक्ष्य है और आर्थिक वृद्धि इन लक्ष्यों को प्राप्त करने का साधन। यह अक्षरशः सत्य है कि जो देश अपने सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का एक बड़ा भाग स्वास्थ्य, शिक्षा पर व्यय करते हैं वे तीव्रता से विकास की ओर अग्रसर होते हैं और बाद में इन मूलभूत आवश्यकताओं पर कम व्यय करके भी विकास में वृद्धि कर सकते हैं।

मानव विकास का अर्थ

महबूब उल हक के अनुसार, "आर्थिक संवृद्धि तथा मानव विकास स्कूलों की परिभाषा में एक ही अंतर है पहली आय के विस्तार पर बल देती है जबकि दूसरा सभी मानवीय आवश्यकताओं के विकल्पों में परिवर्धन करता है चाहे वे आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक या राजनीतिक हों।"

उपयुर्क्त विवेचन यह दर्शाता है कि आय में वृद्धि के साथ स्वतः ही बहुत सारे विकल्पों में वृद्धि हो जाती है।

मानव विकास को दो प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है–

GNP = Gross National Product

1. मौरिस डी मौरिस के अनुसार, जीवन का भौतिक गुणवत्ता सूचकांक
2. UNDP द्वारा मानव विकास सूचकांक : Physical Quality of Life Index

आर्थिक विकास और जीवन की गुणवत्ता

आर्थिक विकास जीवन की गुणवत्ता से ही संबंधित है। अब एक प्रश्न यह है कि क्या जीवन की गुणवत्ता और उच्च जीवन स्तर एक दूसरे के पर्यायवाची हैं? नहीं। इनमें एक विशेष अंतर है! जीवन की गुणवत्ता जीवन की पूर्णता को दर्शाती है और उच्च जीवन स्तर धनाढ्यता को बताता है। जीवन की गुणवत्ता के विकास को दो रूपों में देखा जाता है–

1. जीवन की भौतिक गुणवत्ता सूचकांक (PQLI)
2. मानव विकास संचकाक (HDI)

1. **जीवन की भौतिक गुणवत्ता सूचकांक** (PQLI) : यह अवधारणा मौरिस डी मौरिस द्वारा 1979 में प्रकाशित की गई जिसमें उन्होंने विकसित और अर्धविकसित देशों के जीवन की भौतिक गुणवत्ता का तुलनात्मक अध्ययन किया जिसमें निम्न सूचकों– शिशु मृत्यु दर, एक वर्ष की आयु से जीवन संभाव्यता, शिक्षा की दर, तीनों को लोगों की आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के कार्य के लिए संयुक्त किया।

1. **जीवन की प्रत्याशा** : एक व्यक्ति की औसत जीवन अवधि अर्थात औसत रूप से एक व्यक्ति कितने वर्ष तक जीवित रहता है। निम्न जीवन अवधि जागरुकता के अभाव, सुविधाओं का अभाव स्वास्थ्य के लिए साधनों के अभाव को व्यक्त करती है।
2. **शिशु मृत्यु दर** : प्रति 1000 शिशुओं में मरने वाले शिशुओं की संख्या को व्यक्त करती है। शिशु मृत्यु दर का उच्च होना पिछड़ेपन और निर्धनता का द्योतक है।
3. **साक्षरता दर** : यह प्रति 100 व्यक्तियों में पढ़े लिखे लोगों की संख्या को व्यक्त करती है। इसके अंतर्गत वे लोग आते हैं जो लोग पढ़ लिख सकते हैं। इसकी कमी भी आर्थिक व सामाजिक पिछड़ेपन की निशानी है। साक्षरता दर लिंग भेद का सूचक है।

   किसी देश के PQLI की गणना करने के लिए उपयुक्त तीनों घटकों की औसत दर को समान भार देकर आकलन किया जाता है।

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि PQLI एक सीमा तक ही आधारभूत आवश्यकताओं को माप सकता है। यह GNP का पूरक हैं। यह विकास को तो नहीं मापता है न ही कुल कल्याण को मापता है किंतु यह जीवन की गुणवत्ताओं को मापता है जो देशों के निर्धन वर्ग के लिए बहुत आवश्यक है। PQLI अल्पविकसित देशों के विशेष क्षेत्रों के पिछड़ेपन को ज्ञात करने के लिए समाज के विभिन्न उपेक्षित वर्ग, नीतियों की असफलता आदि के विवरण में काम आती है। जिसके द्वारा सरकार ऐसी नीतियां बना सकती है जिससे PQLI में वृद्धि हो। देश की प्रगति हो।

2. मानव विकास सूचकांक (Human Development Index HDI)– UNDP ने 1990 में मानव विकास रिपोर्ट में मानव विकास के माप को प्रस्तुत किया जिसमें निश्चित रूप से एकमत होकर यह स्वीकार किया गया कि मानव विकास की अवधारणा अधिक विस्तृत और परिपूर्ण है। किसी देश के HDI को मापने के तीन सूचक हैं अर्थात यह एक संयुक्त सूचकांक है जो 0 से 1 के पैमाने पर मापा जाता है।

टिप्पणी

1. **दीर्घायु :** एक व्यक्ति के जीवन जीने की अवधि नवजात शिशु के जन्म के समय जीवन की संभाव्यता को मापा जाता है। सामाजिक कल्याण में कमी जीवन अवधि को कम करती है।
2. **ज्ञान का स्तर :** शिक्षा के स्तर को प्राप्त करना। साक्षरता दर में ठोस वृद्धि के बावजूद अल्पविकसित व अर्द्धविकसित देशों में निरक्षरता एक धब्बा बनी है। इसलिए संवृद्धि के लिए यह लोगों के शैक्षिक स्तर को मापता है। इस घटक में निम्न को सम्मिलित किया जाता है– (क) प्रौढ़ शिक्षा दर (ख) सकल नामांकन अनुपात।

   (क) प्रौढ़ शिक्षा दर के अंतर्गत 15 वर्ष की आयु से ऊपर ऐसे लोगों का प्रतिशत जो पढ़ और लिख सकते हैं को शामिल किया जाता है। उदाहरण के लिए 01 से 100 (दो तिहाई भार के रूप में)।

   (ख) सकल नामांकन अनुपात : इसके अंतर्गत प्राथमिक, माध्यमिक, क्षेत्रीय स्तर पर नामांकित विद्यार्थियों की संख्या की गणना की जाती है। यह नामांकित विद्यार्थियों की संख्या और एक देश की कुल जनसंख्या के अनुपात को व्यक्त करता है। (एक तिहाई भाग)।

$$\text{सकल नामांकन अनुपात} = \frac{\text{शिक्षा के लिए नामांकित विद्यार्थियों की संख्या}}{\text{कुल जनसंख्या}}$$

3. **आय का स्तर** (प्रति व्यक्ति वास्तविक घरेलू उत्पाद)

   (1) यह लोगों की क्रयशक्ति द्वारा मापा जाता है।

   (2) यह कहा जा सकता है कि आय का स्तर लोगों द्वारा खरीदी गयी वस्तुओं और सेवाओं की क्षमता पर आधारित होता है।

   (3) इसकी गणना प्रति व्यक्ति वास्तविक जीडीपी द्वारा की जाती है।

$$\text{प्रतिव्यक्ति वास्तविक जीडीपी} = \frac{\text{स्थिर कीमतों पर जीडीपी}}{\text{कुल जनसंख्या}}$$

अपनी प्रगति जांचिए

5. जीवन की भौतिक गुणवत्ता सूचकांक की अवधारणा कब प्रकाशित हुई?

   (क) 1976 (ख) 1977

   (ग) 1978 (घ) 1979

6. किसी देश के मानव विकास सूचकांक (HDI) को मापने हेतु UNDP ने कितने सूचक निर्धारित किए हैं?

   (क) दो (ख) तीन

   (ग) चार (घ) पाँच

4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (ख)
3. (क)
4. (ग)
5. (घ)
6. (ख)

4.6 सारांश

सशक्तीकरण सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक क्षेत्रों में और व्यक्ति, समूह, समुदाय जैसे विभिन्न स्तरों पर पाया जाता है और व्यक्तिगत व सामाजिक अधिकारों में निर्णय लेने, संसाधनों का उपयोग करने और सामाजिक गतिशीलता के सम्बन्ध में हमारी मान्याताओं को चुनौती देता है। महिलाओं को सशक्त बनाने और सतत विकास के लिए शिक्षा और रोजगार पर ध्यान केंद्रित करना अत्यंत आवश्यक है।

महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण, महिलाओं की सामाजिक स्थिति के उत्थान के लिए सबसे महत्वपूर्ण शर्तों में से एक है। महिलाएं आर्थिक रूप से स्वतंत्र अपने परिवार के लिए लगभग बराबर आर्थिक योगदान करती हैं। लिंग आधारित भेदभाव या महिलाओं की अधीनता काफी हद तक पुरुषों पर आर्थिक निर्भर रहने में निहित है।

अनेकानेक मानव विज्ञानियों और इतिहासज्ञों ने कहा है कि महिलाएँ, समस्त मानव इतिहास में, भोजन, वस्त्र और हस्तशिल्पों की मुख्य उत्पादक रही हैं। जहाँ उत्पादन अभी भी लघु जीविका–निर्वाह क्षेत्र में है, वहाँ श्रम निवेश में आज भी महिलाओं का महत्वपूर्ण योगदान है। महिलाओं के कार्य के स्वरूप, सीमा और पैमाने का निर्धारण करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है क्योंकि जो कार्य महिलाएँ करती हैं उसका अधिकांश या तो सामने नहीं होता या फिर कार्य की भागीदारी के आँकड़ों में दर्ज नहीं होता। जो कार्य महिलाएँ करती हैं वह समाज में महिला की स्थिति और सामाजिक तारतम्य में परिवार की अवस्थिति पर निर्भर करता है।

खेती के विकास हेतु शुरू की गई रणनीतियों का लक्ष्य मशीनीकरण के जरिए उत्पादन में वृद्धि करना है किंतु, कृषि श्रम शक्ति में महिला–पुरुष अनुपात की उपेक्षा की जाती है। बढ़ते समय के साथ–साथ पुरुषों ने तकनीकी विकास का लाभ उठाया जबकि महिलाएँ हाशिए पर ही रह गईं।

तकनीक के चुनाव की समस्या मुख्य रूप से उत्पादन के श्रम प्रधान और पूंजी प्रधान तकनीकों के बीच चुनाव करने की है। प्रो. ए.के. सैन ने तकनीक के चुनाव की समस्या के विषय में अपने विचार रखते हुए।

पूंजी प्रधान तकनीक वह तकनीक है जिसमें पूंजी का अधिक मात्रा में और श्रम का कम मात्रा में प्रयोग किया जाता है। इसमें अधिक पूंजी को कम श्रम के साथ

मिलाया जाता है। इस प्रकार यह तकनीक श्रम की अपेक्षा पूंजी पर अधिक जोर देती है।

टिप्पणी

श्रम–प्रधान तकनीक उत्पादन की वह तकनीक है जिसमें तुलनात्मक रूप से श्रम की अधिक मात्रा और पूंजी की कम मात्रा का प्रयोग किया जाता है अर्थात यह उत्पादन की वह तकनीक है जिसमें श्रम की अधिक मात्रा को पूंजी की कम मात्रा के साथ मिलाया जाता है।

मूलभूत आवश्यकताएं मानवीय जीवन का एक लक्ष्य है और आर्थिक वृद्धि इन लक्ष्यों को प्राप्त करने का साधन। यह अक्षरशः सत्य है कि जो देश अपने सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का एक बड़ा भाग स्वास्थ्य, शिक्षा पर व्यय करते हैं वे तीव्रता से विकास की ओर अग्रसर होते हैं और बाद में इन मूलभूत आवश्यकताओं पर कम व्यय करके भी विकास में वृद्धि कर सकते हैं।

4.7 मुख्य शब्दावली

- **सशक्तीकरण** : शक्ति सम्पन्न बनाने की क्रिया।
- **स्फीति** : वृद्धि।
- **धनोपार्जन** : धन का अर्जन।
- **विनिमय** : आदान–प्रदान, व्यापार।

4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में किस वर्ष को महिला सशक्तीकरण वर्ष के रूप में मनाया गया?
2. वर्ष 1995 के बीजिंग सम्मेलन में महिला सशक्तीकरण के किन मात्रात्मक सूचकों की पहचान की गई?
3. विकास की पूंजी प्रधान तकनीक के क्या गुणधर्म हैं?
4. विकास की श्रम प्रधान तकनीक के किन्हीं चार लाभों का उल्लेख करें।
5. शिशु मृत्यु दर से आप क्या समझते हैं?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. सशक्तीकरण की परिभाषा स्पष्ट करते हुए महिला आर्थिक सशक्तीकरण का विश्लेषण करें।
2. लैंगिक समानता की अवधारणा की विवेचना कीजिए।
3. आर्थिक विकास की पूंजी प्रधान तकनीक के प्रयोग व सीमाओं पर प्रकाश डालिए।
4. आर्थिक विकास की श्रम–प्रधान तकनीक के गुण व दोषों की समीक्षा कीजिए।
5. मानव विकास सूचकांक में PQLI व HDI के अनुप्रयोग को स्पष्ट कीजिए।

4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

M L Jhingan. *Economics of Growth and Development.*

Hayami Y. *Development Economics*, Oxfor University Press.

Karpagam M. *Environmental Economics.*

योगेश शर्मा, 'पर्यावरण एवं मानव संसाधन विकास', पॉइन्ट पब्लिशर, जयपुर।

वी.सी. सिन्हा, 'विकास एवं पर्यावरणीय अर्थशास्त्र', एस.बी.पी.डी. पब्लिशर हाउस, आगरा।

पी.सी.त्रिवेदी / गरिमा गुप्ता, 'पर्यावरण अध्ययन', आविष्कार पब्लिकेशन, जयपुर।

दीप्ति शर्मा / महेन्द्र कुमार, 'पर्यावरण एवं संविकास', अर्जुन पब्लिशिंग, दिल्ली।

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी के नवीनतम प्रकाशन

इकाई 5 पर्यावरण–अर्थव्यवस्था अंतर्संबंध

टिप्पणी

संरचना

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 पर्यावरण–अर्थव्यवस्था अंतर्संबंध
5.3 आवश्यकता और विलासिता के रूप में पर्यावरण
5.4 जनसंख्या–पर्यावरण अंतर्संबंध
5.5 बाजार विफलता के रूप में पर्यावरणीय वस्तु
5.6 सामान्य समस्याएं
5.7 धारणीय विकास की अवधारणा
5.8 पर्यावरणीय क्षति का आकलन : भूमि, जल, वायु और वन
5.9 प्रदूषण में कमी, नियंत्रण और रोकथाम
5.10 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.11 सारांश
5.12 मुख्य शब्दावली
5.13 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.14 सहायक पाठ्य सामग्री

5.0 परिचय

हम उस काल में जी रहे हैं जहां मानव ने अपने पर्यावरण पर नियंत्रण करने की क्षमता प्राप्त कर ली है। उसने स्थानीय और ग्रहों के पैमानों पर अपना स्वयं का वातावरण बनाया गया है, और इसे 'मानव पर्यावरण' का नाम दिया है। मानव पर्यावरण एक ऐसा पर्यावरण है जिसे मानव की जरूरतें उसकी शर्तों पर पूरी हो सकें। मानव पर्यावरण के निर्माण के लिए विभिन्न सामाजिक–आर्थिक कारक जिम्मेदार हैं। मानव वातावरण के निर्माण के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रगति निश्चित रूप से एक महत्वपूर्ण कारक है।

प्राकृतिक वातावरण संसाधनों से भरा है और प्रत्येक संसाधन का किसी न किसी तरह का सकारात्मक और नकारात्मक मूल्य है। यह मानव ही है, जो केवल पर्यावरणीय प्राकृतिक संसाधन के सकारात्मक मूल्यों को हथियाने में लगा हुआ है और इन्हें इन रूपों में परिवर्तित कर रहा है कि यह उनके लिए पूंजी का एक स्रोत बन जाए। इस लगातार हथियाने से पूरे प्राकृतिक वातावरण में मौजूद अधिकतर प्राकृतिक संसाधनों में कमी हुई है।

पर्यावरण प्राकृतिक संसाधनों से भरा है जिसमें प्रत्येक का अपना गुण है चाहे अच्छा हो या बुरा। प्रकृति में मानवजाति के द्वारा विज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्रगति के साथ, सभी पर्यावरणीय संसाधनों की गुणवत्ता में गिरावट आ रही है, जिसके परिणामस्वरूप समस्याएं जैसे प्रदूषण, ग्लोबल वार्मिंग, अपशिष्ट पदार्थों का निपटान, ओजोन परत में कमी आदि उत्पन्न हो रही है। लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि यह मानवता की

उन्नति, व्यवस्था और प्रौद्योगिकी है जिसने इसी पर्यावरण को अपना बहुत सा योगदान दिया है। दोनों ने कई पर्यावरण संबंधी समस्याओं का समाधन प्रदान किया है। पिछले दो दशकों में, ओजोन की कमी, जलवायु की गर्मी, अम्लीय वर्षा, तटीय क्षेत्र के प्रदूषण, परमाणु और खतरनाक कचरे के निपटान तथा जैव मण्डल में प्रदूषण और बढ़ती कठिनाइयों का पता लगाने के व संचय के प्रभाव के बारे में अनुमान तेज हो गए हैं।

इस इकाई में पर्यावरण एवं अर्थव्यवस्था के अंतर्संबंधों को समझाते हुए जनसंख्या से प्रभावित होने वाले पर्यावरण तथा पर्यावरण के ह्रास के कारण होने वाली समस्याओं का विवेचन किया जा रहा है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- पर्यावरण एवं अर्थव्यवस्था के अंतर्संबन्धों को समझ पाएंगे;
- पर्यावरण की उपयोगिता व संरक्षण की आवश्यकता से अवगत हो पाएंगे;
- जनसंख्या के कारण पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों व जनसंख्या–पर्यावरण के अंतर्संबन्धों को जान पाएंगे;
- पर्यावरण ह्रास के कारण बाजार विफलताओं व अन्य समस्याओं की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- धारणीय विकास की अवधारणा की समीक्षा कर पाएंगे;
- पर्यावरणीय क्षति के प्रकारों व प्रदूषण नियंत्रण एवं रोकथाम की विधियों से अवगत हो पाएंगे।

5.2 पर्यावरण–अर्थव्यवस्था अंतर्संबंध

पर्यावरण और अर्थव्यवस्था के बीच संबंध को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

पर्यावरण का स्वरूप

मानव पर्यावरण ने मानव जाति के लिए व्यावसायिक और व्यक्तिगत प्रगति की पेशकश की है। आज मनुष्य उन स्थानों पर पहुंच गया है, जो उसकी पहुंच से परे थीं। वातावरण में मौजूद ऊर्जा की विशाल मात्रा, जो हवा और पानी, भूमि, संयंत्र और चट्टानों और खनिजों में मौजूद रसायनों के रूप में है, मनुष्य वातावरण में नए यौगिकों का उत्पादन कर रहा है। मनुष्य ने इन संसाधनों की सहायता से एक कृत्रिम परिवेश बनाया है। मानव पर्यावरण का एक उदाहरण शहरीकरण है। इन संसाधनों की खपत के साथ, मनुष्य ने भवन, कचरे के निष्कासन और अपनी सीमाओं के भीतर उत्पादक उद्यम की सुविधा बनाई है। यात्रा के संदर्भ में, उसने ऑटोमोबाइल, जहाज और विमान के आविष्कार के साथ महान व्यक्तिगत गतिशीलता हासिल की है।

ऐसी उपलब्धियों के एक परिणाम के रूप में, दुनिया के कई हिस्सों में पर्यावरण के मूल्यों में लगातार गिरावट आई है। मानव पर्यावरण ने मनुष्य की प्राकृतिक वातावरण

की दीर्घकालिक स्तर पर शोषण तकनीक को सफलतापूर्वक सीखने में मदद की है। फिर भी मनुष्य ने अज्ञानता, अदूरदर्शिता, लालच या हताशा के कारण हवा और पानी को प्रदूषित किया, और बढ़ते रेगिस्तान, त्वरित मिट्टी कटाव, अधिक बाढ़ तथा गंभीर रूप से मिट्टी की उर्वरता में कमी से भूमि के उत्पादन को कमजोर किया। वह इस तरह, अपनी ही आजीविका का आधार नष्ट कर रहा है और स्वाभाविक दीर्घकालिक प्रणाली की सीमाओं का उल्लंघन कर रहा है।

मानव गतिविधियां, जैसे औद्योगिकीकरण, तेल रिसाव, रासायनिक और जहरीले उत्पादन और निपटान, खनन, शहरीकरण, जल–थल यात्रा और कृषि, तेजी से न केवल प्राकृतिक वातावरण की गुणवत्ता के लिए अपितु उनके सामाजिक, आर्थिक जीवन और स्वास्थ्य के लिए खतरा बनती जा रही हैं।

पर्यावरण के विभिन्न घटकों की चर्चा निम्नलिखित है–

औद्योगीकरण

औद्योगीकरण आर्थिक परिवर्तन और विकास की विधि है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे पारंपरिक अर्थव्यवस्था, जैसे कि कृषि, आधुनिक अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो जाती है। यह आधुनिकीकरण की प्रक्रिया है जिसमें ज्यादातर लोग प्रौद्योगिकी नवाचारों पर निर्भर रहते हैं। 18वीं और 19वीं सदी में विश्व में औद्योगिक क्रांति हुई और इसने दुनिया भर में मानव जनसंख्या के पूरे सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक हालात बदल दिए, मुख्यतः ब्रिटेन में।

औद्योगीकरण की प्रक्रिया उत्पादन, खनन, परिवहन और प्रौद्योगिकी के सिद्धांत लेकर आई, जिसने पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव डाला। नगरीकरण, शोषण, जनसंख्या, प्रदूषण औद्योगीकरण के परिणाम हैं। कारखानों की बहुतायत से रोजगार बढ़े जिसके परिणामस्वरूप बड़े शहर और शहरों का विकास हुआ है और कार्य करने वाले लोगों की संख्या बढ़ी। इसने कई विकट समस्याओं को भी जन्म दिया है जैसे कि जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, भूमि प्रदूषण, ओजोन परत में छेद इत्यादि।

शहरीकरण

शहरीकरण शहरी बनने की एक प्रक्रिया है। दूसरे शब्दों में, यह एक जनसांख्यिकी प्रक्रिया है जिससे किसी क्षेत्र या एक देश की जनसंख्या का एक बढ़ता हुआ अनुपात शहरी क्षेत्रों में रहता है। शहरीकरण आर्थिक रूप से उन्नत देशों की एक विशेषता है। यह ज्यादातर पैसा, सेवा और धन के कारण होता है। शहर रोजगार के और अधिक अवसर तथा लोगों के लिए अधिक आय प्रदान करते हैं जिसके परिणामस्वरूप लोगों का ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन होता है।

लेकिन लोगों को अहसास नहीं है कि शहरीकरण का मानव पर्यावरण पर साथ ही प्राकृतिक पर्यावरण पर प्रतिकूल असर पड़ता है। शहरीकरण सीधे औद्योगीकरण के साथ जुड़ा हुआ है जिसके परिणामस्वरूप औद्योगीकरण जो कुछ प्रकृति पर प्रभाव डालता है उसमें शहरीकरण का असर भी शामिल है। शहरीकरण के कारण जनसंख्या और प्रदूषण बढ़े तथा संपूर्ण पर्यावरण का क्षरण हुआ।

टिप्पणी

परिवहन

परिवहन के द्वारा लोगों और माल का एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाना होता है। परिवहन के विभिन्न प्रणालियों में हवाई, रेल, सड़क, पानी और अंतरिक्ष शामिल हैं। यात्रा के लिए, मनुष्य ने विभिन्न वाहनों और उनके संचालनों को उत्पन्न किया है जिनमें अत्यधिक ऊर्जा की बहुत आवश्यकता होती है। ऊर्जा पेट्रोलियम को जला कर प्राप्त होती है, जोकि वायु में जहरीली गैसें जैसे कि नाइट्रस ऑक्साइड, कार्बन डाइ–ऑक्साइड और अन्य जहरीली गैसों के उत्सर्जन से वायुमण्डल प्रदूषित कर रही हैं। परिवहन भी ग्लोबल वार्मिंग का एक प्रमुख कारण है।

कृषि

कृषि मानव की महत्वपूर्ण गतिविधियों में से एक है। यह मानवजाति की बढ़ती हुई जरूरतों को पूरा करती है। कृषि ने भूदृश्य को परिवर्तित किया है और इसमें जैव प्रौद्योगिकी के प्रयोग ने वातावरण में अत्यधिक परिवर्तन किए हैं। इनमें से कई बदलाव जीव–रसायनिक चक्र और ऊर्जा प्रवाह के कुशल प्रयोग का सीधा परिणाम हैं, मुख्यतः रसायनिक उर्वरक और फसलों को संरक्षित रखने वाले रसायन का प्रयोग। भूदृश्य में परिवर्तन अधिक तेज और दिखाई देने वाला होता है; कृषि पद्धतियों और रसायनों के इस्तेमाल की वजह से बहुत से परिवर्तन हुए हैं और लगातार हो रहे हैं। मिट्टी के कटाव, क्षारीयकरण और मरुस्थलीयकरण आदि समस्याएं कृषि के कारण हुई हैं। पिछले दो दशकों में कृषि के तरीके अत्यधिक गहन पैदावार वाले हुए हैं जो अभूतपूर्व दर से प्रकृति के विनाश का कारण बना है। इसके अलावा, फसल संरक्षण रसायन के प्रयोग से व्यापक पारिस्थितिकी प्रभाव पड़ा है, तथा यह पर्यावरण क्षरण का कारण बना है।

अर्थव्यवस्था और पर्यावरण

अर्थव्यवस्था और पर्यावरण एक साथ चलते हैं। पर्यावरण में प्राकृतिक संसाधन मौजूद हैं जो मानव को विशाल आर्थिक क्रियाओं को करने और राष्ट्रीय आय को बढ़ाने में सहायक हैं। जो देश प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण (धनी) हैं वहां प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय अधिक है। अपेक्षाकृत धनी प्राकृतिक संसाधनों वाले देश का एक कर्मचारी संभवतः अधिक पैसे कमाता है एक ऐसे कर्मचारी की अपेक्षा, जो ऐसे देश में रहता है जहां प्राकृतिक संसाधन कम हैं अथवा निम्न गुणवत्ता के हैं।

वातावरण में मौजूद संसाधनों के आधार पर मनुष्य ने चार प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं का विकास किया है, जैसे कि पारंपरिक अर्थव्यवस्था, नियोजित अर्थव्यवस्था, बाजार अर्थव्यवस्था और मिश्रित अर्थव्यवस्था। पारंपरिक अर्थव्यवस्था उस अर्थव्यवस्था का प्रकार है जहां लोग उन परंपराओं तथा विचारों के आधार पर व्यावसायिक निर्णय लेते हैं जोकि एक पीढ़ी से दूसरे की दी जाती रही हैं। नियोजित अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जहां सरकार अधिकांशतः व्यवसायों की मालिक है। यह सरकार का निर्णय होगा कि क्या और कितना उत्पाद किया जाएगा। बाजार अर्थव्यवस्था उपभोक्ता को शामिल करती है, इसमें उपभोक्ता निश्चित करता है कि किस वस्तु या सेवा का वह उपयोग करना चाहता है। बाजार अर्थव्यवस्था में ज्यादातर व्यवसाय निजी स्वामित्व में है। तीनों अर्थव्यवस्थाओं के मिश्रण को मिश्रित अर्थव्यवस्था कहा जाता है। ऊपर

टिप्पणी

निर्दिष्ट सभी अर्थव्यवस्थाओं के प्रकार पर्यावरण में उपस्थित प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता पर पूर्णतः आधारित हैं।

विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में विभिन्न गतिविधियां सम्मिलित हैं जैसे, प्राथमिक गतिविधि, द्वितीयक गतिविधि, तृतीयक गतिविधि, चतुर्थक गतिविधि और पंचक गतिविधि। प्राथमिक आर्थिक गतिविधियों में कृषि सामानों को एकत्र करना और आसवन उद्योग शामिल हैं। कृषि और एकत्रीकरण मानव की उत्पत्ति के समय से प्रचलित पारंपरिक आर्थिक गतिविधियां हैं। इससे पूर्व आर्थिक गतिविधि शिकार खेलना और एकत्र करना थी परंतु समय व्यतीत होने के साथ मनुष्य ने खाद्य उत्पादन की विभिन्न तकनीक सीखीं तथा इसके बाद कृषि उत्पादन और आर्थिक उत्पत्ति का प्रमुख स्रोत बन गया। आज कृषि सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि है जो अधिकतर लोगों, खासकर गरीबों को, आजीविका प्रदान करती है। कृषि में बहुत सी गतिविधियां सम्मिलित हैं, जैसे कि सिंचाई, जुताई, कुटाई आदि। इस प्रकार मानव जाति को भोजन देने के अलावा कृषि गतिविधियां कई ग्रामीणों को रोजगार प्रदान करती हैं। भारत में लगभग पचास प्रतिशत जनता भोजन और रोजगार के लिए कृषि पर निर्भर है।

वातावरण में, माध्यमिक आर्थिक गतिविधियों में उत्पादन, प्रक्रमण, भवन–निर्माण और बिजली उत्पादन शामिल हैं। यह सभी माध्यमिक गतिविधियां वातावरण में उपस्थित संसाधनों, जैसे हवा, पानी, पौधे, खनिज आदि की उपलब्धता पर निर्भर हैं। उत्पादन तथा प्रक्रमण प्रमुख आर्थिक गतिविधियां हैं, विशेष रूप से लोहा, इस्पात, मोटर वाहन, मशीन, कांच और हथियारों के रूप में माल का उत्पादन। अन्य उद्योगों में धातु का कार्य, रसायन और इलेक्ट्रॉनिक्स शामिल हैं। उत्पादन तथा प्रक्रमण क्षेत्र कई देशों में लघु औद्योगिक क्षेत्र में स्वरोजगार के लिए अवसर प्रदान करता है। प्रक्रमण उद्योग में खाद्य प्रक्रमण लघु उद्योग क्षेत्र में एक बड़ी भूमिका निभाता है, जो छोटे शहरों तक सेवा प्रदान करता है।

निर्माण और ऊर्जा उत्पादन आर्थिक गतिविधियों का एक और रूप है जोकि मानव वातावरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। निर्माण क्षेत्र के सभी घटकों में आवासीय भवनों, गैर रिहायशी इमारतों और इंजीनियरिंग और मरम्मत के कार्य शामिल हैं। शक्ति उत्पादन गतिविधियों में विद्युत ऊर्जा, पवन ऊर्जा और ऊष्मीय ऊर्जा शामिल हैं। इन सभी का निष्पादन मुख्य रूप से वातावरण में मौजूद संसाधनों हवा, पानी और खनिज के द्वारा किया जाता है।

हमारी तृतीयक गतिविधियों, चतुर्थक गतिविधियों और पंचक गतिविधियों के अंतर्गत खुदरा और थोक व्यापार, व्यक्तिगत और पेशेवर सेवा, अनुसंधान, प्रबंधन और कार्यकारी निर्णयकर्ताओं की गतिविधियां शामिल हैं। हालांकि ये सभी गतिविधियां मानव वातावरण में कार्य करती हैं, जो एक व्यापक रूप में प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर है।

प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उन्नति ने हमें पर्यावरण को बचाने और संरक्षित करने और इसके संसाधनों पर नियंत्रण और इस पर पड़े नकारात्मक प्रभावों को नियंत्रित करने का विकल्प दिया है। लोग प्राकृतिक संसाधनों के पुनः प्रयोग और हवा और पानी के शोधन उपचार की नई तकनीक सीख रहे हैं। उन्होंने भी कई ऊर्जा संरक्षण तकनीक

और सीवेज जल के उपचार और ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के लिए पर्यावरण को स्वस्थ बनाने की प्रणाली की तकनीक को सीख लिया है।

टिप्पणी

बहुत सी उन्नति की तकनीकों के साथ, वैज्ञानिक पर्यावरण को हरा भरा करने के लिए लगातार शोध कर रहे हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

1. निम्न में से कौन–सा घटक ग्लोबल वॉर्मिंग के लिए जिम्मेदार नहीं है?
   (क) औद्योगीकरण (ख) शहरीकरण
   (ग) परिवहन (घ) वन्य–क्षेत्र
2. प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर अर्थव्यवस्था को कितने भागों में वर्गीकृत किया गया है?
   (क) तीन (ख) चार
   (ग) पाँच (घ) छः

5.3 आवश्यकता और विलासिता के रूप में पर्यावरण

पर्यावरण और इसके प्राकृतिक संसाधनों का अध्ययन इंसान के लिए ना सिर्फ महत्वपूर्ण है बल्कि, दरअसल, अनिवार्य है। इंसान के रूप में, अस्तित्व और वृद्धि के लिए पर्यावरण और इसके घटकों के बारे में जानना अनिवार्य है। यह जानना ज़रूरी है कि पर्यावरण के संसाधनों के इस्तेमाल का हमारे वर्तमान और भविष्य पर कैसा प्रभाव पड़ता है।

'प्राकृतिक संसाधनों' से हमारा अभिप्राय सभी भू–संसाधनों, जोकि मिट्टी और स्वयं धरती है, जल संसाधनों, जोकि भूमिगत जल और सतह पर सागर और महासागरों के रूप में बहता है, धरती पर पैदा होने वाला सब कुछ और वह संसाधन जो धरती की सतह के नीचे मौजूद हैं, से है। दूसरी तरफ पर्यावरण वह कवच है जिसमें हम रहते हैं। यह इंसान के चारों तरफ हैं जिन में मानव निर्मित संसाधनों सहित सभी प्राकृतिक संसाधन आते हैं। हमारे आसपास का वातावरण हमें पालता और संवारता है और ना सिर्फ जीने के लिए हमारी आधारभूत जरूरतें पूरी करता है बल्कि आधुनिक जीवन से जुड़े आनंद और सुविधाएं प्रदान करता है। इसमें हमारा समुदाय, हमारा भवन, हमारा नगर, जंगल, पहाड़, पार्क, तट आदि भी आते हैं। इस प्रकार पर्यावरण हमारे जीवन या जीवन के प्रति हमारी सोच के समूचे संदर्भ का समावेश है। एक इंसान के रूप में हम पर्यावरण से ख़ुद को अलग नहीं कर सकते। इसके हिस्से के रूप में हम पर्यावरण को कुछ देते हैं और पर्यावरण से संसाधन लेते हैं।

उत्पत्ति के रूप में समस्त प्राकृतिक संसाधनों को जैव और अजैव के रूप में वर्गीकृत करते हैं। जीव, पौधे, कवक, जानवर और इंसान जैव संसाधनों में आते हैं। जबकि सभी निर्जीव चीज़ें जैसे भूमि, जल, खनिज और वायु प्राकृतिक संसाधनों के अजैव घटक हैं। इनमें से कुछ संसाधन हमारे अस्तित्व के लिए अनिवार्य हैं जबकि बाकी हमारी ज़रूरतें पूरा करने के लिए हैं।

उपलब्धता के आधार पर, सभी प्राकृतिक संसाधन अक्षय और गैर–अक्षय के रूप में वर्गीकृत किए जाते हैं। अक्षय संसाधन अमूमन जीवित संसाधन होते हैं जो समय के साथ प्राकृतिक रूप से फिर से उभर आते हैं। सभी जीवित प्राणी जैसे धरती के जानवर, समुद्री जानवर, पक्षी, हर तरह के पौधे और कवक, जिनका नवीनीकरण हो सके अक्षय उर्जा के वर्ग में आते हैं। दूसरी तरफ, गैर अक्षय उर्जा संसाधन प्राकृतिक संसाधन हैं जो तय मात्रा में वातावरण में उपलब्ध होते हैं और इनका पुनर्निर्माण, पुनरुत्पादन या पुर्नवृद्धि उतनी तीव्रता से नहीं हो सकता जितनी तेज़ी से उनका इस्तेमाल और दोहन हुआ हो। कुछ ऐसे गैर अक्षय उर्जा के संसाधन हैं जिनका नवीनीकरण हो सकता परन्तु इसमें बहुत अधिक समय लग सकता है। उदाहरण के लिए खनिज ईंधन के निर्माण में लाखों साल लग जाते हैं। इसलिए, खनिज ईंधन को स्वाभाविक रूप से 'अक्षय' माना जाता है।

हाल के सालों में संसाधनों का रिक्तिकरण चर्चा का मुख्य विषय रहा है। कई पर्यावरणविदों ने गैर अक्षय संसाधनों के इस्तेमाल पर कर लगाने का प्रस्ताव रखा था। बहरहाल, पर्यावरण में मौजूद संसाधनों के विभिन्न रूपों का संरक्षण बहुत अनिवार्य है।

जब किसी देश की प्राकृतिक पूंजी उपयोगी चीज़ों में तब्दील हो जाती है जिसे आगे ढाँचागत पूँजी प्रक्रिया में वर्गीकृत किया जाता है, इस मूल्य अधिकार को हम पर्यावरण संसाधन कहते हैं। बहरहाल, इसलिए यह कहना ग़लत नहीं होगा कि देश के प्राकृतिक संसाधन ही सही रूप से विश्व आर्थिक व्यवस्था में इसकी हैसियत और धन ज़ाहिर करते हैं।

विकसित और विकासशील देशों दोनों की ओद्योगिक निर्भरता पर्यावरण से उपलब्ध उर्जा के विभिन्न रूपों जैसे सौर उर्जा, जल उर्जा, खनिज ईंधन और पवन उर्जा पर बढ़ती जा रही है। पर्यावरण हर प्राणी की ज़रूरतें पूरा करता है परन्तु इंसान पर्यावरण से लाभ और सुविधायें हासिल करने के लिए पर्यावरण के संसाधनों को नीचा दिखा रहा है। पर्यावरण को नीचा दिखाने के मुख्य कारण तेज़ी से बढ़ती जनसंख्या, आर्थिक विकास, शहरीकरण की अनियंत्रित दर, औद्योगीकरण, कृषि की अत्यधिक गहनता और जंगलों की अंधाधुंध कटाई हैं।

शुरुआती दिनों में पर्यावरण विलासिता की तरह प्रतीत होता था परन्तु अब मायने बदल चुके हैं। अब पर्यावरण विलासितापूर्ण नहीं रहा है परन्तु कई उद्योगों और यहाँ तक कि इनसान के अस्तित्व के लिए अनिवार्य हो चुका है। इंसान को विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों से कई फायदे मिलते हैं जो इस प्रकार हैं–

- पर्यटन, जंगल, समुद्री मछुआरे, शीत खेल, नगरपालिका सेवा, परिवहन प्रारूप आदि प्रकार के उद्योग पर्यावरण की शर्तों पर निर्भर हैं।
- हर इंसान को साफ हवा, पानी और पेड़ों की ज़रूरत है।

संसार कई खतरनाक समस्याओं जैसे बेरोज़गारी, जनसंख्या विस्फोट, शेयर बाज़ार और दिवालियापन आदि में उलझा हुआ है। पहली नजर में पर्यावरण का मुद्दा तुच्छ और छोटा प्रतीत होता है लेकिन जब इसके दीर्घ प्रभावों पर ग़ौर किया जाता है तो अभास होता है कि इसे नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। शहरीकरण की होड़

टिप्पणी

में तेज़ी के साथ विभिन्न स्वास्थ्य चुनौतियाँ और सार्वजनिक जीवन पर इनके प्रभाव साफ तौर पर नज़र आते हैं।

अगर हम ग्लोबल वार्मिंग का उदाहरण देखें, अगर हम मोटे तौर पर ग्लोबल वार्मिंग का प्रभाव देखें तो यह सिर्फ तापमान में इज़ाफा है जो बाद में बर्फ पिघलाता है। प्रथम दृष्टत्या प्रतीत होता है कि यह बहुत छोटी चीज़ है परन्तु हालिया शोध रपटें देखने पर हमें इसके वास्तविक परिणामों और मानव जाति और अन्य प्राणियों पर इसके प्रभावों के बारे में पता चलेगा।

प्रकृति के संरक्षण के लिए अन्तरराष्ट्रीय संघ की हालिया शोध रपट के अनुसार मौसम परिवर्तन के प्रभाव से एक चौथाई अर्थात् लगभग 36 फ़ीसदी या इससे अधिक ज़मीन पर रहने वाले स्तनधारी और एक तिहाई समुद्री स्तनधारी जीवों पर विलुप्त होने का ख़तरा है।

पर्यावरण की अवनति से महासागर में रहने वाले कई प्राणियों का जीवन प्रभावित हुआ है। वर्ष 2008 के आरंभ में 'साइंस' में प्रकाशित संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, ब्रिटेन और कनाडा के वैज्ञानिकों के अध्ययन के अनुसार कई मछलियाँ, समुद्री जन्तु, मूंगे की चट्टान, समुद्री घास, सदाबहार, पथरीली राख और शेल्वस और समुद्र का स्तर ख़तरनाक दर से कम हो रहे हैं।

उपरोक्त चर्चित पर्यावरण के प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से एक सीमा तक माने जा सकते हैं लेकिन मौसम परिवर्तन की वजह से बाढ़, तूफान, आंधी और सूखा जैसे बदलावों ने अरबों लोगों को गंदे हालातों में रहने के लिए मजबूर किया है। हर साल विभिन्न मौसमी वजहों से हज़ारों लोगों को जीवनयापन के साधन के लिए घर छोड़ने पड़ता है। यह सब मौसमी परिवर्तन ना सिर्फ इंसान के स्वास्थ्य पर असर डालते हैं बल्कि इन हालातों से जूझने वाले देश की आर्थिक जड़ों को भी हिला कर रख देते हैं।

संकटग्रस्त देश या इससे व्यापार अथवा अन्य वजहों से संबंधित देशों की अर्थव्यवस्था पर पर्यावरण के विघटन और मौसम के दीर्घकालीन प्रभावों को कोई भी नकार या नज़रअंदाज़ नहीं कर सकता।

पर्यावरण से संबंधित कुछ मुख्य मुद्दों को संसाधनों के विभिन्न रूपों जैसे जल, चट्टान, मिट्टी, जंगल और खनिजों के भंडार खाली करना, सार्वजनिक स्वास्थ्य में गिरावट, सार्वजनिक व्यवस्था में लचीलापन तथा जैवविविधता में गिरावट के रूप में उठाया जा सकता है।

हाल के सालों में इंसान और पर्यावरण के संबंध पर शोध चल रहे हैं। कई वैज्ञानिक सावधानीपूर्वक मानव और पर्यावरण के अन्र्तसंबंध का अवलोकन कर रहे हैं। मानव और पर्यावरण की अन्तर्निभरता को समझना ज़रूरी है ताकि इंसान अपने प्राकृतिक संतुलन को हानि पहुँचाये बिना और माता प्रकृति को नीचा दिखाये बिना सभी प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम उपयोग कर सके।

मानव भूगोल में पर्यावरण से इंसान की अनुकूलता कोई नई बात नहीं है। इस विषय पर कई शिक्षाविद् और वैज्ञानिक अपने विचार प्रस्तुत कर चुके हैं। शोध बताते हैं कि इंसान किसी भी परिस्थिति में ख़ुद को ढालने में निपुण है। अनुकूलता मानव–प्रकृति का हिस्सा है और इसी के वजह से वह संसार के हर कोने में है। हम

टिप्पणी

मानव को बेहद ठंडे क्षेत्रों, बेहद गर्म क्षेत्रों, पठारों और पहाड़ी इलाकों मे पा सकते हैं। मानव एक ऐसा जीव है जो विविध पारिस्थितिकी तंत्र में रहने की योग्यता रखता है। इंसान में विविध बाहरी स्थितियों (चाहे अत्यधिक गर्मी या अत्यधिक ठंड या भारी बरसात) के अनुकूल बन जाने की क्षमता है। इंसान किसी भी परिस्थिति में रह सकता है। खुद को परिस्थितियों के अनुसार बनाने के अलावा इंसान ने कई सामाजिक–सांस्कृतिक प्रतिमान और तकनीकें तैयार कर ली हैं जो उसे किन्हीं भी परिस्थितयों के अनुकूल बनने में मदद करती हैं।

पर्यावरण के साथ मानव की अनुकूलता के साथ शुरू करने से पहले इंसान और पर्यावरण के संबंध को समझना बहुत ज़रूरी है। पर्यावरण हमारे चारों ओर का वर्णन करता है और हमारी चारों ओर मौजूद चीज़ों में भौतिक के साथ सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ भी आते हैं जिनमें मानव रहता है। इस प्रकार मानव पर्यावरण का अभिन्न अंग है। मानव को जानवर माना जाता है, एक स्तनपायी या जीवविज्ञान की भाषा में इसे रीढ़ की हड्डी वाला जानवर कहा जा सकता है। वह उसी प्रक्रिया से गुज़रता और बनता है जिससे अन्य जीव। लेकिन, मानव और अन्य जीवों में फर्क़ करने के लिए एक महीन–सी रेखा है। एक मनुष्य का अस्तित्व हर प्रकार की परिस्थितियों में होता है और वह विविध बाहरी परिस्थितियों के अनुकूल बन सकता है। मानव की इसी योग्यता के कारण वह ग्लोब के अधिकतम हिस्से में विद्यमान है। लोगों के एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना या जनसंख्या की संख्या में बदलाव, इसमें बढ़ोतरी या कमी से मानव और पर्यावरण के संबंध में परिवर्तन आता है। बहरहाल, पर्यावरण में बदलाव से मानव जनसंख्या के प्रारूप में परिवर्तन आ सकता है।

पर्यावरण के अभिन्न अंग के रूप में इंसान में योग्यता है कि वह किन्हीं भी जैविक परिस्थितियों जैसे बहुत ऊँचाई, बहुत गर्मी, बहुत ठंड, भारी बरसात, आर्द्रता आदि में भी अनुकूलता बना सकता है। इस प्रकार पर्यावरण के प्रति मानव की प्रतिक्रिया उसके शरीर को ऐसी परिस्थितियों मे काम कर सकने योग्य बनाती है। बहुत ऊँचाई पर रहने वाले व्यक्ति के खान–पान, रहन–सहन, कपड़े पहनने आदि की आदतें बहुत निचले क्षेत्र में रहने वाले इंसान से अलग होंगी।

अपनी प्रगति जांचिए

3. प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर उन्हें कितने भागों में बांटा गया है?

   (क) दो (ख) तीन

   (ग) चार (घ) पाँच

4. जब किसी देश की प्राकृतिक पूंजी उपयोगी चीजों में बदल जाती है तो उसे किस प्रक्रिया में वर्गीकृत किया जाता है?

   (क) उत्पादन प्रक्रिया (ख) ढांचागत पूंजी प्रक्रिया

   (ग) निवेश प्रक्रिया (घ) पूंजीगत प्रक्रिया

5.4 जनसंख्या–पर्यावरण अंतर्संबंध

टिप्पणी

मनुष्य का पर्यावरण के साथ संबंध का एक प्राचीन मुद्दा है। यह सदियों से चला आ रहा है, प्रथम मानवीय सभ्यता के समय से। यद्यपि मुद्दा प्राचीन है, फिर भी यह पर्यावरणीय विज्ञान के लिए प्रमुख विषय है क्योंकि इस अंतर्संबंध से अनेक समस्याएं उत्पन्न होती हैं। मानव पर्यावरण अंतर्संबंध के विषय में एक सामान्य अवधरणा है कि पर्यावरण मानवीय विकास के लिए एक आधार बनाता है। मानव–प्रकृति अंतर्संबंध के प्रति दृष्टिकोण हर समाज का एक दूसरे से भिन्न है, और इस बात पर आधारित है कि जीवन निर्वाह प्रक्रिया के दृष्टिकोण से प्राकृतिक आवास अनुकूल है अथवा प्राकृतिक परिस्थितियां कठोर हैं।

प्रकृति ने मानवजाति को जीवित रहने के लिए संसाधनों की एक विस्तृत शृंखला उपलब्ध कराई है। किसी हद तक मानव स्वयं ही प्रकृति का एक उत्पाद है। लेकिन समय बीतने के साथ मनुष्य पर्यावरणीय परिवर्तन का एक सशक्त प्रजननकर्ता आंका गया है। वास्तव में, वह दोनों ही है परिवर्तनकर्ता एवं निर्माणकर्ता। यह सत्य है कि मनुष्य ही पर्यावरण में पहले दिखाई दिया न कि मनुष्य के बाद पर्यावरण की उत्पत्ति हुई। इस पर्यावरण के अंदर ही मनुष्य ने वृद्धि एवं विकास की तकनीकी सीखी। प्राकृतिक वातावरण में उपस्थित विभिन्न घटक मनुष्य को खाना, पानी, आश्रय और कपड़े उपलब्ध कराते हैं।

प्रारंभिक इतिहास दर्शाता है कि प्राकृतिक कारक जैसे हवा, पानी, सूर्य का प्रकाश, पौधे, जलवायु, भोजन के संसाधन मानवजाति का पर्यावरण बनाते हैं। प्रागैतिहासिक काल के मानव पर्यावरण को एक नियंत्रक कारक मानते थे। वे प्राकृतिक तत्वों व प्राकृतिक क्रियाओं जो वातावरण में होती रहती हैं, जैसे तूफान, आकाशीय विद्युत का चमकना, जंगली जानवर, जंगल, समुद्र और महासागर आदि से भयभीत रहते थे। भौतिक वातावरण मनुष्य को मानव विकास की प्रारंभिक अवस्था से ही प्रभावित करता आ रहा है और अंतरिक्ष तकनीकी की इस अवस्था में भी अधिक गतिशीलता से कर रहा है।

आज परिप्रेक्ष्य एकदम भिन्न है। मनुष्य अब अपने वातावरण का उत्पाद नहीं है। वास्तविकता में वह निर्माणकर्ता व परिवर्तनकर्ता बन गया है। पहले वातावरण का मनुष्य पर प्रभुत्व था किंतु आज मनुष्य का प्रभुत्व वातावरण पर है। मनुष्य प्राकृतिक व भौतिक वातावरण के साथ अंतर्क्रिया करता आ रहा है। विज्ञान और तकनीकी की प्रगति के साथ उसके ज्ञान का क्षेत्र अंतरिक्षीय सीमाओं के पार फैल गया और पृथ्वी का पर्यावरण अविश्वसनीय रूप से परिवर्तित हो गया। लोगों की बढ़ती जनसंख्या और उनके तकनीकी और वैज्ञानिक कौशल ने प्राकृतिक वातावरण और परिदृश्य पर अपनी छाप डाली है, भौतिक परिवेश को अपनी इच्छानुसार बदल दिया है। इसके कुछ उदाहरण महानगर, उपनगरीय विस्तार और भूमि और सागर पर आधुनिक शहर हैं। कुछ मानव निशान इतने परिपूर्ण हैं कि मूल प्राकृतिक परिदृश्य का पूरी तरह से सफाया हो गया है और इसे एक मानव निर्मित सांस्कृतिक परिवेश के द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है।

इस तथ्य के बावजूद कि मनुष्य ने वातावरण को कई प्रकार से प्रभावित किया है, यह भी ध्यान रखना चाहिए कि पर्यावरण बिना मनुष्य के कायम रह सकता है परंतु मनुष्य बिना पर्यावरण के अपना अस्तित्व कायम नहीं रख सकता। पर्यावरण ने

मानवजाति को कई प्रकार से प्रभावित किया है। इसने मनुष्य जनसंख्या, अर्थव्यवस्था और प्रौद्योगिकी और मानव के संपूर्ण विकास पर एक गहरी छाप छोड़ी है।

पर्यावरण और आबादी

पृथ्वी को अपनी उत्पत्ति के बाद से जनसंख्या वृद्धि में भारी उतार–चढ़ाव का सामना करना पड़ा है। यह माना जाता है कि पृथ्वी की जनसंख्या 1990 ई. में दोगुनी यानि 3 अरब से 6 अरब हो गई। इससे पता चलता है कि इस दौरान बाल मृत्यु दर गिरी, जीवन प्रत्याशा में वृद्धि हुई और लोग औसतन बेहतर स्वास्थ्य और बेहतर पोषण वाले थे। लेकिन उसके बाद जल्द ही, पर्यावरण के नकारात्मक परिणाम पृथ्वी पर दिखने लगे जैसे कि प्रदूषण बढ़ा, संसाधनों की कमी हुई, बढ़ते समुद्र के स्तर से खतरा बढ़ने लगा, जिसके परिणामस्वरूप, जनसंख्या का आकार और विकास घटना शुरू हो गया। इसलिए यह स्पष्ट हो जाता है कि वातावरण में बदलाव पृथ्वी पर जनसंख्या के आकार को परिभाषित करता है। पर्यावरण एक विशेष क्षेत्र में एक प्राकृतिक कारक के रूप में मानव जन्म और मृत्यु की दर का फैसला करता है।

ऐसे विभिन्न पर्यावरणीय कारक हैं जो किसी दिए गए क्षेत्र में जनसंख्या के आकार का निर्धारण करते हैं। उनमें भूमि, जल, मिट्टी, जमा खनिज, मौसम और जलवायु मुख्य हैं।

भूमि : जनसंख्या का आकार भूमि के प्रकार पर काफी हद तक निर्भर करता है। ऐसा आंका गया है कि मानव पर्वतों और शुष्क प्रदेशों की तुलना में मैदानी इलाकों में अधिक बसते हैं। इसका कारण भूमि संरचना (बनावट) है। पहाड़ी क्षेत्रों में भूमि की संरचना खुरदरी और चट्टानी होती है जिसके परिणामस्वरूप रेलवे, सड़कों और संचार व्यवस्था के निर्माण में अत्यंत कठिनाई का सामना करना पड़ता है। तीव्र ढालों के कारण कृषि कार्यों में भी असीम समस्याएं उत्पन्न होती हैं और उद्योग भी स्थापित नहीं हो सकते। इस प्रकार यहां निर्धन आर्थिक क्रियाओं के साथ–साथ छोटी और पृथक बस्तियां होती हैं। ऊंची पर्वतमालाओं के क्षेत्र दक्षिणी अमेरिका में एंडीज, भारत में हिमालय, उत्तरी अमेरिका में रॉकी आदि कम जनसंख्या घनत्व वाले क्षेत्र हैं। इसी प्रकार शुष्क और रेगिस्तानी क्षेत्रों में जलवायु अधिक सहायक नहीं हैं; यहां भोजन उत्पादन का विस्तार बहुत सीमित होता है और परिवहन व्यवस्था भी बिखरी हुई होती है। जिसके परिणामस्वरूप रेगिस्तानी और शुष्क क्षेत्रों में सीमित मात्रा में जनसंख्या पाई जाती है।

लेकिन जब मैदानी क्षेत्रों की चर्चा करते हैं तो दशा बिल्कुल अलग दिखाई देती है। संसार के मैदानी क्षेत्र मानव के बसने के लिए सुगम हैं क्योंकि मिट्टी का वातावरण स्वाभाविक रूप से कृषि के लिए बहुत ही उपयोगी होता है। यहां आर्थिक क्रियाएं बहुतायत में होती हैं और जनसंख्या घनत्व भी उच्च होता है। इसे उदाहरण के रूप में भारत में गंगा के मैदानों, चीन में ह्वांग–हो, पाकिस्तान में सिंधु और यूरोपीय मैदानों को देखा जा सकता है। इन स्थानों पर उच्च जनसंख्या सघनता है।

जल आपूर्ति : जल मानवजाति के जीवित रहने के लिए एक मुख्य प्राकृतिक संसाधन की भूमिका निभाता है। जनसंख्या के आकार और वितरण को जल आपूर्ति और जल संसाधन काफी हद तक प्रभावित करते हैं। इसका उदाहरण इससे लिया जा सकता है कि प्राचीनकाल में अधिकतर सभ्यताएं नदियों के किनारे ही बसी थीं।

टिप्पणी

जल पृथ्वी पर प्राकृतिक रूप में पाया जाता है जैसे कि ताजा जल, समुद्रों और महासागरों का खारा जल, भूमिगत जल आदि। मनुष्य के जीवित रहने के लिए केवल ताजा जल ही महत्व रखता है। ताजा जल सामान्यतः नदियों, जलधाराओं, और झीलों में पाया जाता है और इसका उपयोग पीने के लिए और घरेलू आवश्यकताओं, सिंचाई इत्यादि में होता है।

जल का प्रयोग उत्पादन क्षेत्र में समान बनाने के लिए, कृषि संस्थानों में भोजन प्राप्त करने के लिए, और ऊर्जा के संस्थानों में प्रकाश, ऊष्मा और शीतलता देने के लिए होता है। अतः जल कई आर्थिक क्रियाओं के स्रोत की तरह कार्य करता है। इसलिए जहां जल आपूर्ति बहुतायत में है, वहां बड़ी मानव बस्तियां पाई जाती हैं। दूसरी तरफ, शुष्क क्षेत्रों मे जहां जल सीमित मात्रा में उपलब्ध है, छोटी मानव बस्तियां पाई जाती हैं।

मृदा (मिट्टी) : मृदा पर्यावरण में प्राकृतिक रूप में पाया जाने वाला एक प्रमुख प्राकृतिक घटक है और यह कृषि में अत्यंत लाभदायक है। वास्तव में, कृषि मिट्टी पर निर्भर करती है और विभिन्न मिट्टियां विभिन्न कृषि के प्रकारों को समर्थन देती हैं। मिट्टी भी एक क्षेत्र की जनसंख्या के घनत्व के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी क्षेत्र के लिए वहां रहने वाले मनुष्यों के लिए भारी कृषि गतिविधियों को बढ़ावा देती है। दूसरी ओर, जिस क्षेत्र में जहां मिट्टी की उपजाऊ क्षमता कम होती है वहां जनसंख्या का आकार तथा घनत्व बहुत कम होता है। इंडोनेशिया के जावा द्वीप में ज्वालामुखी सामग्री से उपजाऊ मिट्टी है। वहां की जनसंख्या का आकार बहुत अधिक है, जबकि सुमात्रा में मिट्टी अनुपजाऊ है जो कम जनसंख्या घनत्व का कारण बनी है।

जलवायु : प्रतिकूल जलवायु परिस्थिति भी एक प्रमुख प्राकृतिक घटना है जोकिसी क्षेत्र में जनसंख्या का आकार निर्धारित करती है। ठंडे जलवायु के क्षेत्रों की जनसंख्या का घनत्व कम है। उसी तरह, अत्यधिक गर्म और शुष्क क्षेत्र के क्षेत्रों में मानवजाति की बस्तियां कम हैं। उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में, जनसंख्या का आकार बहुत छोटा है और भारी बारिश और प्रतिकूल तापमान इसका एक कारण है। अनुकूल जलवायु और अनुकूल भू–भाग के साथ सघन जनसंख्या और बस्तियां बसती हैं।

खनिज भंडार : खनिज संपदा की उपस्थिति भी एक दिए गए क्षेत्र में जनसंख्या का आकार निर्धारित करती है। दुनिया के विभिन्न भागों में कोयले और लौह अयस्क की मौजूदगी ने विशाल जनसंख्या को आकर्षित किया है। कोयले की खानों और सोने की खदानों में धनी क्षेत्र सघन जनसंख्या वाले हैं। उदाहरण के लिए, भारत के झारखंड में कोयले के खानों और ऑस्ट्रेलियन रेगिस्तानों में सोने की खदानों के पास जनसंख्या का बड़ा भाग है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया है कि पर्यावरण पृथ्वी पर जनसंख्या का वितरण और आकार निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसी के साथ, दुनिया की जनसंख्या भी पर्यावरण को प्रभावित करती है। विज्ञान और तकनीकी की प्रगति के साथ उसके ज्ञान का क्षेत्र अंतरिक्षीय सीमाओं के पार फैल गया और पृथ्वी का पर्यावरण अविश्वसनीय रूप से परिवर्तित हो गया। लोगों की बढ़ती जनसंख्या और उनके तकनीकी

और वैज्ञानिक कौशल ने प्राकृतिक वातावरण और परिदृश्य पर अपनी छाप डाली है, भौतिक परिवेश को अपनी इच्छानुसार बदल दिया है। इसके कुछ उदाहरण महानगर, उपनगरीय विस्तार और भूमि और सागर पर आधनिक शहर हैं। कुछ मानव निशान इतने परिपूर्ण हैं कि मूल प्राकृतिक परिदृश्य का पूरी तरह से सफाया हो गया है और इसे एक मानव निर्मित सांस्कृतिक परिवेश के द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है।

मनुष्य के पर्यावरण पर प्रभाव की दशा और उसके परिणाम का अंदाजा इस सत्य से लगाया जा सकता है कि भूवैज्ञानिक समय–मान पर पृथ्वी पर मनुष्य की उपस्थिति के एक छोटे अंश भर में मानव वैश्विक वातावरण को बदलने का एक शक्तिशाली एजेण्ट हो गया है। नतीजतन, ग्लोबल वार्मिंग, अम्लीकरण, बंजर भूमि, पर्यावरण प्रदूषण, ओजोन रिक्तीकरण, बंजर और जैव विविधता में कमी जैसी समस्याएं पर्यावरण में हो रही हैं जिसने मानव जाति के अस्तित्व को ही खतरे में डाल दिया है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. 1990 ई. में वैश्विक जनसंख्या दुगनी बढ़ी जिसके पीछे कारण है–
   (क) बाल मृत्यु दर में ह्रास (ख) बढ़ता समुद्र जलस्तर
   (ग) वैश्विक ऊष्मीकरण (घ) इनमें से कोई नहीं
6. मैदानी क्षेत्र मानव के बसने हेतु सुगम हैं। क्योंकि–
   (क) मैदान सुगम होते हैं (ख) आर्थिक विकास आसान होता है
   (ग) भूमि प्रायः उपजाऊ होती है (घ) उपरोक्त सभी

5.5 बाजार विफलता के रूप में पर्यावरणीय वस्तु

बाज़ार में सेवाओं और माल की खरीद व बिक्री सहित विभिन्न गतिविधियाँ होती हैं। दूर तक फैले माल और सेवाओं की आवश्कता और सीमा के बारे में जानने के लिए जो यंत्र इस्तेमाल होता है वह माल और सेवाओं की दरें हैं। बाज़ार को तब ठीक से सुचारू कहा जाता है जब समूचे माल और सेवाओं के मूल्य की जानकारी विक्रेता और खरीदार को होती है। परन्तु जब कुछ खर्च और लाभ पूरी तरह से माल और सेवाओं के बाजार भाव में नहीं प्रदर्शित करते हैं तो बाज़ार की नाकामी होती है।

परन्तु पर्यावरण की पूँजी के लिए परिदृश्य अलग होता है। पर्यावरण की पूँजी विफल हो जाती है अगर यह समाज की इच्छाओं और विवशताओं को सही तरीके से पेश ना कर पाये। पर्यावरण की पूँजी का मूल्य उत्पाद द्वारा प्रस्तावित सेवाओं और फायदों से तय होती है ना कि पूँजी के बाज़ारी भाव से। बाज़ार तब विफल होता है जब मूल्य या इससे कम पर आधारित निजी निर्णय संसाधनों का क्षमतापूर्वक आवंटन नहीं कर पाते हैं। कार्यक्षमता को (पैरेटो श्रेष्ठता के सिद्धांत की तरह) किसी एक को बदतर बनाये बिना दूसरे को बेहतर बनाने के लिए संसाधनों के पुनरावंटन की असंभवता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

टिप्पणी

आइए बाज़ार की नाकामी को एक उदाहरण से समझते हैं–

मेडागास्कर – बाज़ार की विफलता का एक उदाहरण

आइए हम मेडागास्कर में आवासीय विनाश और जैवविविधता पर ख़तरे के उदाहरण से बाज़ार की विफलता की संकल्पना को समझने का प्रयास करें। मेडागास्कर एक ऐसा देश है जो पारिस्थितिकी रूप से संपन्न है लेकिन आर्थिक रूप से ग़रीब है। अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों ने मेडागास्कर को जैवविविधता (जीन की समग्रता, प्रजाति, जनसंख्या और पारिस्थितिक–तंत्र) के मुख्य संरक्षक की उपाधि दी। मेडागास्कर में पिछले कुछ दशकों में जंगलों की कटाई खतरनाक स्तर तक बढ़ गई है जो आवासीय पतन की ओर ले जा रही है। आवासीय विघटन और जैवविविधता की हानि की ओर ले जाने वाले कारक बाज़ार की विफलता के कई स्रोतों के मूल हैं। आवासीय विघटन का मुख्य कारण सार्वजनिक मालिकाना हक़, भूमि के विशाल क्षेत्र पर प्रॉपर्टी अधिकार हुकूमतों की खुली पहुँच और भूमि प्रबंधन में सरकार की सीमित क्षमता हैं। आर्थिक प्रोत्साहन और सरकारी प्राधिकरणों की गैर लिप्तता से वन्यजीवन, लकड़ी, चरागाहों और कृषि भूमि के हद से ज़्यादा शोषण के लिए निजी एजेंसियों को बढ़ावा ही मिला है। भूमि अधिकारों की अमूमन सुरक्षा नहीं हो पाती है क्योंकि दूरस्थ इलाकों में रहने वाले स्थानीय लोगों को राष्ट्रीय नियमों, नीतियों, सामाजिक बदलावों, बाज़ार, आयात और निर्यात और आर्थिक ताक़तों के बारे में या तो जानकारी नहीं है अथवा बेहद कम जानकारी है।

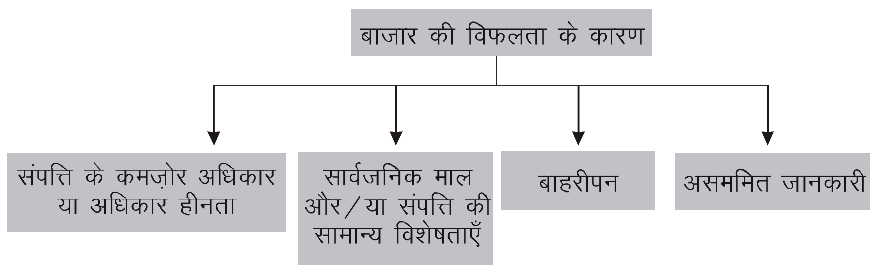

बाजार की विफलता के कारण

बाज़ार की विफलता के कारण

1. कमज़ोर संपत्ति अधिकार या इनकी कमी

माल और सेवाओं के लिए बाज़ार का मुख्य मक़सद हर संभव लेन–देन को दायरे में रखने और माल व सेवाओं के उपयोग की उच्चतम क्षमता तक होने की बात सुनिश्चित करते हुए बाज़ार की विफलता से बचना है। माल और सेवाओं के लिए सभी बाज़ारों को संपत्ति अधिकार व्यवस्था को परिभाषित करना जरूरी है जिससे मालिक को अधिकारों व सीमाओं और माल व सेवाओं के इस्तेमाल का पता चलता है। संपत्ति अधिकार व्यवस्था के अनुसार सेवा और माल इस प्रकार होने चाहिए–

- **व्यापक नियुक्त** : समस्त संपत्ति या संसाधनों का मालिकाना हक़ निजी या सामूहिक तौर पर होना चाहिए। संपत्ति और संसाधनों के लिए सारे मालिकाना हक़ की स्पष्ट तौर पर जानकारी होनी चाहिए और इसे प्रभावशाली तरीके से लागू किया जाना चाहिए।
- **अनन्य** : मालिक पर सभी लाभों और खर्चों की जिम्मेदारी होनी चाहिए जो संसाधन के उपयोग से प्रत्यक्ष रूप से हुए हों या किसी और को बेचने से।

- **हस्तांतरणीय** : यद्यपि स्वैच्छिक अदलाबदली में सभी संपत्ति अधिकार एक व्यक्ति से दूसरे तक हस्तांतरित होने चाहिए। हस्तांतरणीयता मालिक को उस समय की सीमाओं से परे संसाधनों के संरक्षण के लिए प्रोत्साहित करती है जब वह इनका इस्तेमाल करना चाहता हो।
- **सुरक्षा** : प्राकृतिक संसाधनों के संपत्ति अधिकार व्यक्तियों, फर्मों या सरकारों की घुसपैठ या स्वैच्छिक जब्ती से सुरक्षित रहने चाहिए। मालिक के पास संसाधनों को सुधारने और संरक्षण का प्रोत्साहन होता है जबकि संपत्ति के शोषण की तुलना में इस पर उसका नियंत्रण होता है।

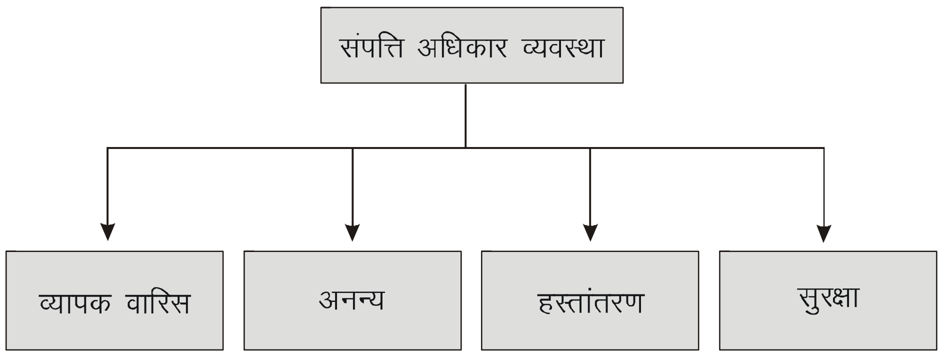

संपत्ति अधिकार व्यवस्था

परन्तु पर्यावरण बाज़ार उपरोक्त सभी विशेषताओं का अनुसरण करने में सक्षम नहीं है। यह पर्यावरणीय माल की विफलता का एक मुख्य कारण है। आइए संपत्ति अधिकार व्यवस्था के छूटे हुए पहलुओं को पर्यावरणीय माल के एक उादहरण के जरिये समझने का प्रयास करें।

एक उदाहरण– कृषि क्षेत्र

कृषि क्षेत्र में किसान भूमि के मालिक होते हैं और वे इसके साथ नुकसान होने की स्थिति में कोई भी क़दम उठाने के लिए स्वतंत्र है। परन्तु किसानों का बारिश, नदियों और हवा पर कोई नियंत्रण नहीं है। इसलिए किसान सूखे या बाढ़ से अपने खेतों को नहीं बचा सकते हैं।

2. सार्वजनिक माल – विशेषताएँ

सार्वजनिक माल वह चीज़ें हैं जो खपत के मामले में गैर प्रतिद्वंद्वी और गैर प्रतिबंधित हैं। सामानों की गैर प्रतिद्वंद्विता प्रवृति उपभोक्ता द्वारा का इस्तेमाल करने पर भी इसकी गुणवत्ता पर कोई प्रभाव नहीं डालती। उदाहरण के लिए किसी व्यक्ति द्वारा साफ हवा में साँस लेने से किसी दूसरे द्वारा ऐसा कर सकने की क्षमता पर कोई असर नहीं पड़ता। गैर प्रतिबंधित प्रकृति का सामान हर किसी के लिए बिना किसी आपत्ति के उपलब्ध होता है। उदाहरण के लिए किसी भी मनुष्य या जानवर या पौधे को हवा से साँस लेने से नहीं रोका जा सकता।

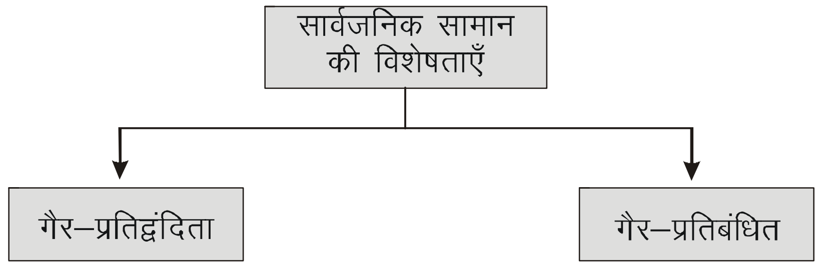

सार्वजनिक सामान की विशेषताएँ

सार्वजनिक माल की यह दो विशेषताएँ इसे बाकी चीज़ों से अलग करती हैं। इन दो विशेषताओं के आधार पर अर्थशास्त्री सार्वजनिक सामान को शुद्ध और अशुद्ध सार्वजनिक सामान के रूप में विभाजित करते हैं। शुद्ध सार्वजनिक सामान गैर प्रतिद्वंदी और गैर प्रतिबंधित दोनो ही होता है। शुद्ध प्राकृतिक सामान के उदाहरण में ओजोन परत, मौसम परिवर्तन सुरक्षा, जैवविविधता और समुद्र हैं जिनसे समूचे संसार में लाभ उठाया जा सकता है। अशुद्ध सार्वजनिक सामान या तो गैर प्रतिद्वंद्वी होगा या गैर प्रतिबंधित, पर यह दोनों विशेषताओं वाला नहीं हो सकता। अशुद्ध सार्वजनिक सामान के उदाहरणों में संयुक्त संपत्ति और नदियाँ, लोकल पार्क और झीलें होती हैं क्योंकि इनसे सिर्फ किसी विशेष समूह के सदस्य ही लाभ उठा सकते हैं जिनके यह संसाधन होते हैं।

3. बाह्यताएं

एक बाह्यता से अभिप्राय सामान और सेवाओं के उत्पादन और खपत से तृतीय पार्टी पर होने वाले प्रभावों से है जहाँ प्रभावों को सहन करने के लिए तृतीय पार्टी को कोई मुआवज़ा नहीं मिलता है। बाह्यताएँ बाज़ार को विफलता की ओर ले जा सकती हैं यदि मूल्य तंत्र सेवाओं और सामान के उत्पादन और खपत के लाभों और सामाजिक खर्च को सम्मिलित न करता हो। उदाहरण के लिए मछली पकड़ने के काम पर किसी एक का मालिकाना हक़ नहीं है इसलिए इसके फलस्वरूप मछलियों की कमी हो जाती है।

बाह्यताएँ के दो प्रकार होते हैं जो सकारात्मक बाह्यताएँ और नकारात्मक बाह्यताएँ हैं।

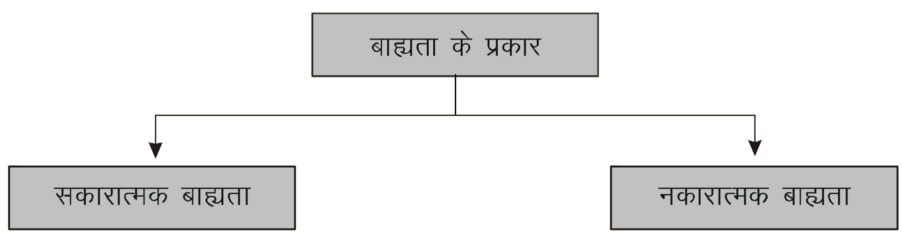

बाह्यता के प्रकार

सकारात्मक बाह्यता प्रभावित होने वालों और बाह्यता के उत्पादकों दोनों के लिए ही अच्छा है परन्तु निर्णय लेने वाला व्यक्ति या फर्म लिए गए फैसले का पूरा लाभ नहीं उठा पाता है। इस प्रकार निर्णय करने वाले को समाज से कम लाभ होता है। सकारात्मक बाह्यता के उदाहरण प्रतिरक्षा और शहद एकत्र करना हो सकते हैं। जब किसी व्यक्ति को किसी बीमारी से प्रतिरक्षा मिलती है तो इससे ना सिर्फ वह व्यक्ति

बीमारी से बच जाता है बल्कि इससे उसका समाज भी स्वस्थ और सुरक्षित रहता है। शहद एकत्र करने के उदाहरण में मधुमक्खी पालक अपनी मधुमक्खियों से शहद जमा करता है। साथ ही इससे किसान को आसपास के खेतों में सेचन करने में भी मदद मिलती है।

बाह्यता को सकारात्मक बाह्यता बनाने के लिए बाह्यता की मात्रात्मक समीक्षा की जरूरत होगी। इस समीक्षा में दोनों पार्टियाँ सटीक रूप से पहचानी जा सकती हैं और बाह्यता का मूल्यांकन मौद्रिक रूप में किया जा सकेगा। इस प्रकार बाह्यता की राशि प्रभाव के स्थान में तृतीय पार्टी को दी जा सकती है। परन्तु इस भुगतान से प्रभाव की क्षतिपूर्ति और समाज को लाभ होना चाहिए।

बहुत सी स्थितियों में बाह्यता की ऐसी समीक्षा बहुत मुश्किल होती है। इसकी वजह जानकारी का अभाव और बाह्यता की मौद्रिक क़ीमत स्पष्ट करने की अक्षमता हो सकती है।

नकारात्मक बाह्यता तब होती है जब निर्णय लेने वाले व्यक्ति या फर्म को निर्णय का पूरा खर्च नहीं चुकाना पड़ता है। अगर नाकारात्मक बाह्यता के साथ कोई लाभ जुड़ा है तो ऐसे पैकेज का खर्च उपभोक्ता द्वारा ऐसी इच्छा के लिए वहन किए गए खर्च से अधिक हो सकता है। अगर नकारात्मक बाह्यता प्रकृति में विनियम रहित बाजार में पायी जाती है तो ऐसी बाह्यताएँ खर्च उत्पादक द्वारा नहीं की जाती हैं। ऐसी स्थिति में सभी अतिरिक्त खर्च बड़े स्तर पर समाज द्वारा वहन किए जाते हैं।

बाह्यता का एक उदाहरण

नकारात्मक बाह्यता का एक आम उदाहरण प्रदूषण है। उदाहरण के लिए, इस्पात का उत्पादन करने वाली फर्म हवा में प्रदूषण फैलाती है। जहाँ फर्म बिजली, कच्चे माल, उत्पादन आदि के लिए भुगतान करती है वहीं फैक्टरी के आसपास रहने वाले लोगों को फर्म द्वारा फैलाये जा रहे प्रदूषण के लिए भुगतान करना पड़ता है। फर्म द्वारा फैलाये गए प्रदूषण के कारण फैक्टरी के आसपास रहने वाले व्यक्तियों को चिकित्सा सुविधाओं के लिए अधिक भुगतान करना पड़ता है, निम्नस्तर का जीवन जीना पड़ता है और प्रदूषित हवा में साँस लेना पड़ता है। इस प्रकार इस्पात के उत्पादन के द्वारा फर्म का नकारात्मक खर्च होता है जिसे फैक्टरी के आसपास रहने वाले लोगों को चुकाना पड़ता है जबकि फर्म को इसके लिए भुगतान नहीं करना पड़ता।

नकारात्मक बाह्यता के धूम्रपान, कूड़ा फैलाने और नशे की आदत जैसे कई उदाहरण हैं।

4. असममित सूचना

बाज़ार में असममित सूचना से अभिप्राय किसी विशेष सामान या सेवा के साथ जुड़ी पार्टियों के सामान या सेवा के बारे में अपर्याप्त जानकारी है। यह बाज़ार की विफलता के मुख्य कारणों में से एक है। सममित सूचना की अनुपलब्धता लोगों को यह जानने की अनुमति नहीं देती कि अन्य लोग क्या कर रहे हैं और इससे सामान और सेवा बाज़ार के बारे में सूचना अधूरी रह जाती है और संसाधनों का ठीक से आवंटन नहीं हो पाता।

असममित सूचना से दो प्रकार की समस्याएँ– नैतिक संकट और हानिकारक चयन उत्पन्न होती हैं। नैतिक संकट बाज़ार की कार्यप्रणाली को भ्रमित और जटिल बनाता है क्योंकि अन्य लोगों के गुप्त क्रियाकलापों के बारे में एक व्यक्ति नहीं जान पाता। नैतिक संकट की स्थिति में, इस तरह के संकटों का विनियामक प्रदूषण नियंत्रण मापकों द्वारा प्रदूषण में कमी का निरीक्षण नहीं कर सकता है। फर्म का प्रोत्साहन कम होता है यदि इसे कुछ लाभों के बदले में सभी नियंत्रण खर्च उठाने पड़ें। विपरित चयन की समस्या तब होती है जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के प्रकार या विशेषता का पता नहीं लगा पता।

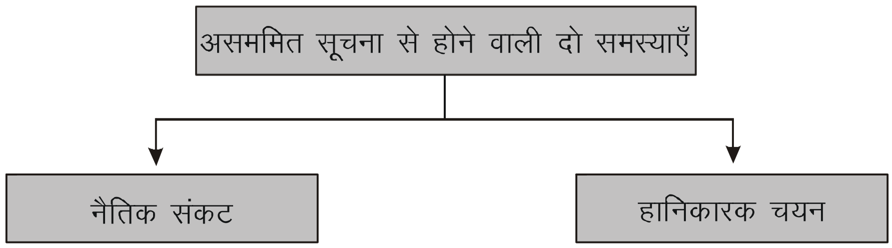

अससमित सूचना से होने वाली समस्याएं

असममित सूचना की संकल्पना उस उदाहरण की मदद से समझी जा सकती है जहाँ एक व्यक्ति कार खरीदता है। इस स्थिति में कार विक्रेता के पास कार के बारे में सारी जानकारी है जबकि खरीददार के पास कार के बारे में न्यूनतम या नगण्य जानकारी है। इसी से असममित सूचना बनती है।

बाज़ार की विफलता से बचने में अच्छे प्रशासन की भूमिका

अल्पविकसित देशों को स्थिरता और विकास के लिए मदद देने हेतु सभी सरकारें, समाज और सहायतार्थ संस्थान इन देशों की विकास प्रक्रिया में सहयोग देने पर ध्यान दे रहे हैं। शुरू में, विकास का मॉडल समाज की वर्तमान जरूरतों और आवश्यकताओं को प्रत्यक्ष रूप से पूरा करने के लिए ढाँचागत, शिक्षा और स्वास्थ्य के लिए पूँजी लगाने पर ही केन्द्रित था। परन्तु आज विकास का यह मॉडल सतत विकास की ओर अग्रसर हो चुका है। इसलिए प्राकृतिक संसाधनों के सतत और सक्रिय इस्तेमाल को प्राथमिकता मिल रही है।

इन प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक इस्तेमाल और अनदेखी से इन प्राकृतिक संसाधनों की कमी हो रही है। इनमें से कुछ संसाधनों का नवीनीकरण हो सकता है जबकि अन्य का नहीं हो सकता। इसलिए संबंधित सरकारें और मददगार संस्थान प्राकृतिक अक्षय संसाधनों के इस्तेमाल को गैर अक्षय संसाधन का विकल्प बनाने पर ध्यान दे रहे हैं। उदाहरण के लिए, बिजली बनाने के लिए जल उर्जा की बजाय सौर उर्जा का प्रयोग हो रहा है।

सार्वजनिक माल के लिए बाज़ार चलाने के लिए किसी को बाज़ार, इसकी नीतियों और संस्थागत विफलता के कारणों को समझना जरूरी है। बाजार तब विफल होता है जब पर्यावरणीय माल और सेवाओं का सटीक आवंटन नहीं हो पाता।

अच्छी जानकारी!

जब बाज़ार विफल होता है–

- कुल सामाजिक लाभ अधिकतम नहीं हो सकता।
- उत्पादन का स्तर सामाजिक वांछित उत्पादन के स्तर से अधिक ही रहता है।
- इससे प्रदूषण होता है।
- इससे संसाधनों का विघटन होता है।

पर्यावरण प्रशासन की मौजूदगी में बाज़ार की विफलता के प्रकार

बाजार की विफलता के चार प्रकार होते हैं जो अपूर्ण सूचना, अपूर्ण समापन, अपर्याप्त सरकारी हस्तक्षेप और बाह्यता हैं। सार्वजनिक माल बाजार में सरकारी हस्तक्षेप के बावजूद बाज़ार की विफलता की सम्भावनाएँ होती हैं। सार्वजनिक सामान बाज़ार में सराकरी हस्तक्षेप की मौजूदगी में बाजार की विफलता के दो कारण इस प्रकार हैं–

1. **नीतिगत विफलता** : जब बाजार की व्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप होता है जो इसे आर्थिक अक्षमता की ओर ले जाता है, तो इससे नीतिगत विफलता होती है। नीतिगत विफलता के मुख्य कारणों में सब्सिडी, टैक्स, टैरिफ और आरक्षण हैं।
2. **संस्थागत विफलता** : संस्थागत विफलता का असर अच्छे पर्यावरणीय प्रशासन की दृढ़ता पर पड़ता है। इन विफलताओं का अभिप्राय पर्यावरण के कारकों से संबंधित सामान और सेवा पर कर लगाने और संपत्ति अधिकार बनाने और लागू करने में सरकार की विफलता से है जिससे विभिन्न संसाधनों पर किराये की आय के जरिये बड़ा लाभ हो सकता है।

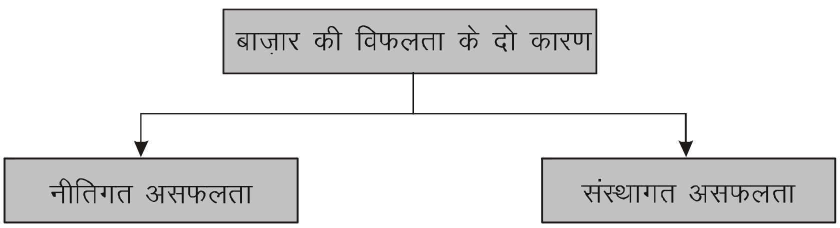

बाज़ार की विफलता के प्रकार

अपनी प्रगति जांचिए

7. बाजार विफलता के कितने आर्थिक कारक बताए गए हैं?

   (क) तीन (ख) चार

   (ग) पाँच (घ) छः

8. निम्न में से कौन–सी समस्या असममित सूचना के कारण उत्पन्न होती है?

   (क) नैतिक संकट (ख) हानिकारक चयन

   (ग) दोनों (घ) कोई नहीं

टिप्पणी

5.6 सामान्य समस्याएं

मानव वातावरण में उद्योगों, शहरी क्षेत्रों में तीव्र वृद्धि, कृषि की तीव्रता तथा विस्तार और जंगलों के विनाश ने बड़ी व्यापक समस्याएं पैदा की हैं, जैसे कि भूमि क्षरण, संसाधन रिक्तीकरण, पर्यावरण क्षरण, जैव विविधता की कमी, आजीविका सुरक्षा तथा पारिस्थितिक तंत्र में सहनशीलता की कमी। खनन, औद्योगिकीकरण और परिवहन से संबंधित मानव बीमारियां संसार के विभिन्न भागों में उत्पन्न हो रही हैं। वायु प्रदूषण, ग्रीनहाउस गैसों का उत्पादन, जल प्रदूषण, भूमि प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण और अवशिष्ट पदार्थों के निपटान जैसी समस्याएं मानव पर्यावरण द्वारा प्रकृति को दिया गया एक उपहार है।

वायु प्रदूषणः वायु विभिन्न गैसों का मिश्रण है परंतु जब ये गैसें धूल, धुआं तथा गंध से हानिकारक मात्रा में मिल जाती हैं, इससे वायु प्रदूषण बनता है। वायु प्रदूषण मुख्य रूप से मानव पर्यावरण, या कहें तो शहरी क्षेत्रों में पाया जाता है। वायु प्रदूषण के लिए जिम्मेदार कारक यातायात, मुख्य रूप से विशेषकर गाड़ियां और स्थिर स्रोतों में ईंधन दहन, वाणिज्यिक, आवासीय तथा औद्योगिक शीतलन तथा तापन एवं कोयला जलाने वाले बिजली संयंत्र इत्यादि हैं। गाड़ियां बड़ी मात्रा में कार्बन मोनोऑक्साइड उत्पन्न करती हैं तथा वायु में हाइड्रोकार्बन एवं नाइट्रोजन ऑक्साइड का मुख्य कारण हैं। ईंधन के जलने से वायुमण्डल में सल्फर डाई ऑक्साइड बनती है, इस तरह यह भी संपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र को प्रदूषित करती है।

वायु प्रदूषण के प्रभाव विभिन्न तथा अनेक हैं। इसके जानवरों और मनुष्यों के साथ पारिस्थितिकी तंत्र पर बहुत ही गंभीर परिणाम हो सकते हैं। इनमें से कुछ प्रभाव अग्रलिखित हैं–

- **ग्रीनहाउस गैसों के उत्पादन में वृद्धि** : गैसें जो वातावरण में गर्मी सोखती हैं उन्हें ग्रीनहाउस गैस कहते हैं। निस्संदेह, कार्बन डाईऑक्साइड सबसे प्रचुर मात्रा में वातावरण में मौजूद ग्रीनहाउस गैस है तथापि यहां कुछ अन्य गैसें जैसे नाइट्रस ऑक्साइड, ओजोन और क्लोरोफ्लोरोकार्बन भी हैं। ग्रीनहाउस गैसों के उत्पादन का प्रमुख कारण बायोमास का निरंतर जलना है। औद्योगिक क्रांति के साथ जीवाश्म ईंधन का व्यापक उपयोग शुरू हुआ। जीवाश्म ईंधन का प्रयोग कार्बन डाइआक्साइड की सांद्रता बढ़ा रहा है जिससे जलवायु परिवर्तन हो रहा है। इसके अतिरिक्त, वायुमण्डल में सल्फर और नाइट्रस गैसों के उत्सर्जन और उनके जमाव आज जलीय और स्थलीय वातावरण में अम्लीकरण के मुख्य कारणों के रूप में स्वीकार किए जा रहे हैं। मनुष्य और उनकी उन्नति के कारण भी ग्रीनहाउस गैसों के उत्पादन में वृद्धि हो रही है। अतिरिक्त ऊर्जा खपत, मोटर वाहन और आंतरिक दहन की बढ़ती जरूरत के उपयोग से वायु प्रदूषण और बढ़ा है जिसके कारण वातावरण में और अधिक विभिन्न ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन हुआ है।
- **जल प्रदूषण** : जल निकायों के प्रदूषण को जल प्रदूषण कहा जाता है। मानव पर्यावरण के विस्तार ने वातावरण में इस घटना को जन्म दिया है। प्राकृतिक कारणों के अतिरिक्त, मानव गतिविधियों को भी जल प्रदूषण के लिए जिम्मेदार

माना गया है। उदाहरण के लिए, जब एक किसान अपनी फसलों के लिए रासायनिक उर्वरकों का उपयोग करता है तथा उर्वरक रसायन से धीरे–धीरे बारिश से धुल जाता है और भूजल या सतह के पास पानी के साथ मिश्रित होकर जल प्रदूषण पैदा करता है। इसके अतिरिक्त चिमनी के द्वारा रसायन वातावरण में जाकर जब इनमें बारिश के रूप में पृथ्वी की सतह के पर वापस आते हैं, नदियों, झीलों और समुद्र में वह जल जब मिलता तो जल प्रदूषण होता है। इसके अलावा, रसायन को धोना, कारखानों की खराब जल निकासी व्यवस्था, परमाणु बिजली संयंत्र और तेल प्रदूषण का रेडियोधर्मी कचरा वातावरण में जल प्रदूषण का प्रमुख कारण है।

- **भूमि प्रदूषण** : मानव गतिविधियों ने धरती के संसाधनों का दुरूपयोग करने के लिए वातावरण में भूमि प्रदूषण को जन्म दिया है। भूमि प्रदूषण के प्रमुख कारण हैं शहरीकरण, निर्माण, जंगलों का विनाश और शोषण, अपशिष्ट पदार्थों का निपटान, किसानों द्वारा प्रयोग की जाने वाली फसल की उपज बढ़ाने के लिए कीटनाशकों और उर्वरकों औद्योगिक अपशिष्ट, खनन, ठोस ईंधन को जलाना और सीवेज निकासी की अनुचित व्यवस्था। इन सभी कारकों से इस हद तक भूमि प्रदूषित हो गई है कि कई स्वास्थ्य संबंधी खतरे और अन्य समस्याएं मानव और पशुओं दोनों के लिए उत्पन्न हो गई हैं।

- **अम्लीकरण** : यह वर्तमान मानव पर्यावरण के लिए एक बड़ी समस्या है। इस समस्या को अब औद्योगिक देशों और एशिया, प्रशांत क्षेत्रों, पूर्वोत्तर भारत, थाईलैण्ड, जापान, चीन और दक्षिण कोरिया में तीव्र माना जाता है। इसके तत्काल निवारण के उपाय अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शुरू हो चुके हैं।

  अम्लीकरण की प्रक्रिया में बादलों और उसके कुछ पानी में पी. एच. मान कम हो जाता है और इसके कुछ भाग को एकत्रित कर अध्ययन करें तो इसका पी. एच. मान 2.6 तक दिखता है। अम्लीय वर्षा का जल अपने प्रदूषण के स्रोत से सैकड़ों किलोमीटर दूर तक जमा हो सकता है और इसके परिणामस्वरूप जलीय जानवरों और जंगलों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

- **ध्वनि प्रदूषण** : भूमि और जल प्रदूषण के अलावा, मानव वातावरण ने ध्वनि प्रदूषण को जन्म दिया है। औद्योगीकरण, प्रौद्योगीकरण, तकनीक, निर्माण आदि मानवजाति की प्रमुख गतिविधियां है जिनसे मानव वातावरण में ध्वनि प्रदूषण की समस्या पैदा हो गयी है। विमान, मोटर वाहन का सतत् उपयोग, सड़क और राजमार्ग निर्माण, इमारतों, शहरों और विनिर्माण संयंत्र से मशीनों के शोर ध्वनि प्रदूषण को बढ़ावा देते हैं। ध्वनि प्रदूषण का प्रभाव व्यापक और पारस्परिक है, जो इंसानों को चिड़चिड़ा बना देता है। इससे मनुष्य की एकाग्रता तथा कार्यक्षमता कम हो जाती है, और कई स्वास्थ्य संबंधी खतरे तथा संबंधित परेशानियां, जैसे थकान, गर्भपात, उच्च या कम रक्तचाप तथा बधिरता भी पैदा करता है। यह उनके तंत्रिका तंत्र को नुकसान पहुंचा कर पशुओं के जीवन को भी प्रभावित करता है। शोर प्रदूषण से फसलों की गुणवत्ता का क्षय होता है।

- **ओजोन रिक्तीकरण** : ग्रीनहाउस गैसों और अम्लीकरण की सांद्रता अधिक होने के साथ, जिससे पर्यावरण परिवर्तन की प्रक्रिया शुरू होती है, मानव पर्यावरण और पर्यावरण में उसके द्वारा की जा रही गतिविधियों ने वातावरण में ओजोन रिक्तीकरण की समस्या को बढ़ाया है। मानव गतिविधियों के कारण समतापमण्डल में ओजोन परत में परिवर्तन हुआ है तथा वायुमण्डलीय सीसे की सांद्रता भी बढ़ी है। अम्ल वर्षा 1960 के दशक में उत्तरी यूरोप, अमेरिका और कनाडा में जंगल क्षति और मृतप्राय झीलों के अध्ययन के साथ एक आशंका के रूप में उभरी थी। इन दोनों का मानव स्वास्थ्य और पृथ्वी के पारिस्थितिकी तंत्र पर महत्वपूर्ण प्रभाव है।

  ओजोन रिक्तीकरण की समस्या पहली बार 1970 में अभिज्ञान में आई जब सुपरसोनिक विमान का आगमन हुआ जो निचले समतापमण्डल में उड़ान भरते हैं और नाइट्रोजन ऑक्साइड उत्सर्जन करते हैं।

- **अपशिष्ट पदार्थ के निपटानः** औद्योगीकरण और शहरीकरण ने घरेलू, औद्योगिक और परमाणु कचरे की विशाल मात्रा में वृद्धि उत्पन्न की है। शहरी समाज की उच्च ऊर्जा की खपत और उच्च जनसंख्या घनत्व अधिकाधिक खराब जल, मल अपशिष्ट तथा घर के कूड़े की एक बड़ी मात्रा उत्पन्न करते हैं। दूषित पानी की आपूर्ति टाइफाइड, हैजा और मलेरिया जैसी महामारियों का कारण बनती है। जहां तक मल का संबंध है, यह नाइट्रेट और फॉस्फेट से समृद्ध है जो जीवाणु वृद्धि को बढ़ावा देकर पानी को प्रदूषित कर सकते हैं।

  औद्योगिक अपशिष्ट में रासायनिक, डिटर्जेंट, धातुओं और ठोस अपशिष्ट और कचरे के अलावा सिंथेटिक यौगिक शामिल हैं। भारी धातु जैसे सीसा, पारा, जस्ता, कैडिमम और आर्सेनिक जल तंत्र को प्रदूषित करते हैं, जो जलीय जीवन और मानव स्वास्थ्य के लिए खतरा हो सकती है।

  परमाणु ईंधन का इस्तेमाल बढ़ा है क्योंकि यह गैर पारंपरिक ऊर्जा का एक प्रमुख स्रोत बन गया है लेकिन मनुष्य को अहसास नहीं है कि इस परमाणु ईंधन के कचरे में रेडियोटोप्स होते हैं जो गर्मी की बड़ी मात्रा उत्पन्न करते हैं। परमाणु कचरे के निपटान करने से जैवमण्डल के लिए गंभीर खतरे पैदा हो रहे हैं। यह पारिस्थितिकी समस्याओं को पैदा कर रहा है, और यह अनुमान लगाया गया है कि जनसंख्या में बचपन में रक्त कैंसर की घटनाएं परमाणु प्रतिक्रिया के कारण हो रही हैं।

उपरोक्त चर्चा से पता चलता है कि मानव पर्यावरण के विकास ने ग्रीनहाउस प्रभाव में वृद्धि कर, अम्लीकरण, जल प्रदूषण, भूमि प्रदूषण और ओजोन रिक्तीकरण द्वारा वायुमण्डलीय और पृथ्वी प्रदूषण की समस्या को बढ़ाया है। इसके अलावा, इसने मानव जाति के लिए कई स्वास्थ्य समस्याएं भी पैदा की हैं। इसलिए इन समस्याओं को सुलझाने के लिए मनुष्य द्वारा विशेष उपायों की आवश्यकता है; अन्यथा, पूरा वातावरण जल्द ही पूरी तरह से विकृत हो जाएगा।

अपनी प्रगति जांचिए

9. निम्न में से कौन—सी गैस ग्रीनहाउस गैस नहीं है?

   (क) कार्बनडाई ऑक्साइड (ख) नाइट्रस ऑक्साइड

   (ग) क्लोरोफ्लोरोकार्बन (घ) हाइड्रोजन

10. ओजोन रिक्तीकरण की समस्या सबसे पहले कब प्रकाश में आई?

   (क) 1950 (ख) 1960

   (ग) 1970 (घ) 1980

5.7 धारणीय विकास की अवधारणा

सतत विकास के स्वरूप का विस्तृत मूल्यांकन निम्न प्रकार से है—

सतत विकास

आजकल इस्तेमाल होने वाला आम शब्द 'सतत विकास' भविष्यवादी है। यह आज की जरूरतों की बजाय भविष्य पर होने वाले प्रभावों पर ज्यादा ध्यान देता है। दुनिया तरक्की तो करे लेकिन संसाधनों का इतना दोहन न हो जाए कि अगली पीढ़ियों के लिए कुछ बचे ही नहीं। ग्लोबल वार्मिंग दुनिया भर के बुद्धिजीवियों के लिए चिंता का विषय बना हुआ है और इस पर सजगता बढ़ाने के लिए सम्मेलन हो रहे हैं। आर्थिक विकास सही मायनों में तभी विकास है जब धरती के संसाधनों को भविष्य के लिए बचाने की भी कोशिश की जाए ताकि हमारी आने वाली पीढ़ियां आराम से रह सकें।

विकसित अर्थव्यवस्था के सूचक

विकसित अर्थव्यवस्था के कुछ सूचक निम्नलिखित हैं—

1. विकसित उद्योग
2. 9000 डॉलर से अधिक की प्रति व्यक्ति आय
3. अमीर और गरीब के बीच कम अंतर
4. कृषि पर कम निर्भरता
5. औसत या अच्छे रोजगार स्तर
6. उच्च जीवन स्तर
7. तैयार माल के लिए अनुकूल विदेश व्यापार
8. आधुनिक तकनीक का इस्तेमाल
9. अच्छी जीएनपी और जीडीपी।

टिप्पणी

सतत विकास : अर्थ एवं महत्व

सतत विकास का मतलब संसाधनों का इस तरह इस्तेमाल करना है कि यह सिर्फ वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताएं ही न पूरी करें बल्कि अगली पीढ़ी के लिए भी संरक्षित हों। सतत विकास की बहुत सारी परिभाषाएं दी गयीं लेकिन सभी परिभाषाएं एक ही संदर्भ में थीं जैसे, ब्रून्ड्टलैंड रिपोर्ट द्वारा रेखांकित की गयी तथा 1987 में ब्रून्ड्टलैंड आयोग द्वारा जमा की गयी।

ब्रून्ड्टलैंड आयोग सतत विकास को परिभाषित करने, परिचित कराने और उसके बारे में जागरूकता फैलाने के उद्देश्य से गठित हुआ था। ब्रून्ड्टलैंड रिपोर्ट के अनुसार 'सतत विकास वह विकास है जो भविष्य की पीढ़ी की आवश्यकता से समझौता किये बिना वर्तमान आवश्यकताओं को पूरा करे।' इसमें ये दो महत्वपूर्ण धारणाएं निहित हैं–

1. आवश्यकता की धारणा, विशेष रूप से विश्व के गरीबों की प्रारंभिक आवश्यकताएं, जिसे बाकी आवश्यकताओं के ऊपर प्राथमिकता दिया जाना चाहिए, और
2. वर्तमान और भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तकनीकी अवस्था और सामाजिक संगठन द्वारा सीमित करने के सुझाव को लागू किया गया।

इन धारणाओं के अंतर्गत सतत विकास तीन तरह की निरंतरता को संतुलित कर रहा है–

1. आर्थिक विकास और स्थायित्व
2. पर्यावरणीय विकास और स्थायित्व
3. सामुदायिक विकास और स्थायित्व।

1. आर्थिक विकास और स्थायित्व

आर्थिक विकास को किसी भी देश की विकास दर का या प्रगतिशील देशों की विकास दर के मध्य अंतर बताने का मानक माना जाता है।

आर्थिक विकास निम्न दो तथ्यों के आधार पर बताया जाता है–

(i) समृद्धि या मानवोपयोगी संसाधन

(ii) लोगों की प्रयोग के लिए उपलब्ध आमदनी।

इसलिए आर्थिक विकास के लिए सरकार को निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए–

- सामानों एवं सेवाओं का प्रभावी उत्पादन और प्रयोग
- बेरोजगारों की संख्या में कमी
- सामानों और सेवाओं की दर में स्थिरता।

आर्थिक विकास की दर को बेहतर करने के लिए वर्तमान में लोगों के रहन–सहन पे न केंद्रित होकर भविष्य की पीढ़ी का ध्यान रखने का कानून अपनाया गया। यह तभी संभव है जब आर्थिक स्थायित्व बना रहे। स्टॉक, शेयर और दूसरे सामानों जैसे सोना में निवेश करके यह स्थायित्व पाया जा सकता है। प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, भूकंप और आर्थिक मंदी के समय किसी देश की आर्थिक मजबूती को देखकर उस देश की आर्थिक स्थिरता का अनुमान लगाया जा सकता है।

टिप्पणी

2. पर्यावरणीय विकास और स्थायित्व

आर्थिक विकास पारिस्थितिक संतुलन को बनाये रखते हुए प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन उसके प्रदूषण और उपयोग को सीमित करके करता है। आर्थिक विकास के साथ मानव के रहन–सहन का स्तर बढ़ रहा है। परिणामस्वरूप, भोजन और शरण स्थलों की जगह की आवश्यकता भी बहुत तेज गति से बढ़ रही है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए वनोन्मूलन और प्राकृतिक संसाधनों का क्षय बढ़ रहा है, जो दूसरे जीवित प्राणियों को नुकसान पहुंचा रहा है और पारिस्थिक संतुलन को खराब कर रहा है। इन सब वजहों से बहुत सी वनस्पतियां और जानवर तेजी से विलुप्त हो रहे हैं जबकि बहुत से विलुप्त होने की कगार पर पहुंच चुके हैं। इसलिए, पर्यावरणीय स्थायित्व के बारे में सोचना बहुत आवश्यक है अन्यथा भावी पीढ़ी अस्तित्व नहीं बचा सकेगी। पर्यावरणीय स्थायित्व को पाने के लिए, हमें हमारा ध्यान ग्रामीण और कस्बाई क्षेत्रों, प्राकृतिक और कृत्रिम तंत्रों के जीवों के स्वास्थ्य और जी सकने की क्षमता की तरफ घुमाना होगा। प्राकृतिक संसाधनों के क्षय, सभी तरह के प्रदूषण, वनस्पतियों और जीव जंतुओं की विलुप्ति और जैव विविधता को होने वाले नुकसान को रोकने और उसका उपचार करने के हर संभव प्रयास किये जाने चाहिए।

3. सामुदायिक विकास और स्थायित्व

सामुदायिक विकास व्यक्ति और समुदाय दोनों के अच्छी तरह से होने की तरफ इशारा करता है। सामाजिक, आर्थिक या पर्यावरणीय जैसे किसी भी लक्ष्य को पाने के लिए लोगों को समूह में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करके इसे पाया जा सकता है। इसे मुख्य सामाजिक पूंजी कहते हैं। यह सामाजिक पूंजी संबंध बनाकर, पारस्परिकता और आदान–प्रदान करके पायी जा सकती है।

सामाजिक पूंजी के निम्न घटक होते हैंः

- **संस्थागत घटक** : संस्थागत घटक उन औपचारिक और परंपरागत या अनौपचारिक नियमों को निरूपित करता है जो व्यक्ति या समुदाय के व्यवहार को नियंत्रित करते हैं।
- **संगठन संबंधी घटक** : संगठन संबंधी घटक व्यक्ति और समूह दोनों तरह के जीवों को निरूपित करता है जो इस संस्थागत व्यवस्था में रहते हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

इन दो घटकों के अलावा सामाजिक पूंजी के दो और घटक हैं जो निम्न हैंः

- **मानव पूंजीः** मानव पूंजी शिक्षा, गुण इत्यादि को निरूपित करती है।
- **सांस्कृतिक पूंजीः** सांस्कृतिक पूंजी सामाजिक संबंधों, परंपराओं को निरूपित करती है।

आर्थिक और पर्यावरणीय संसाधनों से अलग, सामाजिक संसाधन तब बढ़ते हैं जब उनका प्रयोग होता है और प्रयोग न करने पर उसका क्षय होता है। सामाजिक और आर्थिक नियमों के संदर्भ में गरीबी, जनसंख्या और असमानता वो मुख्य कारण हैं जिनसे सामाजिक वातावरण प्रभावित है। अतः हमारा समाज भविष्य की पीढ़ियों की सहायता वही रिश्ते और स्नेह बनाने में करे जो आज के समाज में हैं। इसके लिए सामाजिक स्थिरता को प्राप्त करना बहुत आवश्यक है।

टिप्पणी

सतत विकास – भारत

सतत विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के क्रम में भारत ने भी समकालीन देशों से हाथ मिला लिया है। निम्नलिखित क्षेत्रों की विभिन्न योजनाओं में यह सतत विकास को अंगीकार कर चुका है–

- सामाज
- तकनीक
- कृषि
- ऊर्जा
- मानव संसाधन

सार्वजनिक, निजी, सरकारी या गैर सरकारी सारे सेक्टर सतत विकास का महत्व समझ चुके हैं। यूएन पर्यावरण कार्यक्रम के अनुसार, 2008 में सतत ऊर्जा में निवेश 4.1 अरब अमेरिकी डॉलर तक पहुंच चुका है जो 2007 में किये गए निवेश से 12 प्रतिशत अधिक है। वायु ऊर्जा सेक्टर में किया गया 2.6 अरब अमेरिकी डॉलर का निवेश इस निवेश का सबसे बड़ा हिस्सा था। दूसरी तरफ सौर ऊर्जा में किया गया निवेश 2007 में 180 लाख अमेरिकी डॉलर के निवेश से बढ़कर 2008 में 3470 लाख अमेरिकी डॉलर हो गया। उसी वर्ष भारत ने 5430 लाख अमेरिकी डॉलर का निवेश हाइड्रो उद्योग में किया।

सतत विकास में भारत की उब्लब्धियां

- भारत जिस गति से GHG को कम कर रहा है, यह अनुमान है कि 2031 तक, भारत का प्रति व्यक्ति GHG उत्सर्जन 4 टन CO_2 उत्सर्जन से नीचे रह जाएगा, जो 2005 में CO_2 के 4.22 टन प्रति व्यक्ति के वैश्विक उत्सर्जन से कम है।
- नवम्बर 2006 में शुरू किये गये संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम द्वारा अरबों पौधे लगाने का जो अभियान शुरू किया गया था उसके तहत 2009 में पेड़ लगाने के सम्मान में भारत नौवें स्थान पर रहा।
- विप्रो और एचसीएल नाम की दो भारतीय कंपनियों ने, ई–कचरा प्रबंधन और पर्यावरण नियंत्रण पर ध्यान देने के कारण ग्रीनपीस द्वारा अक्टूबर 2009 में जारी की गयी निर्देशिका 'गाइड टु ग्रीनर इलेक्ट्रॉनिक्स' के अनुसार, शीर्ष पांच हरित इलेक्ट्रॉनिक ब्रांडों में अपना स्थान बनाया।
- CRISIL शोध अध्ययन के अनुसार भारत में उत्सर्जन न्यूनीकरण परियोजना के लिए जारी की गयी कार्बन क्रेडिट की संख्या अगले तीन वर्षों में नवम्बर 2009 के 720 लाख से दिसम्बर 2009 में 2460 लाख तक बढ़ कर तीन गुनी होने वाली है।
- CRISIL शोध भारत की पुनरूत्पादित की जा सकने वाली ऊर्जा के वर्तमान उत्पादन 15,542 मेगा वाट से दिसम्बर 2012 में 20,000 मेगा वाट तक बढ़ जाने की उम्मीद करता है।

- भारत की कुछ कंपनियां उन उच्च कंपनियों के साथ सूचीबद्ध है जहां उच्च सतत विकास मानक हैं।

टिप्पणी

भारतीय कॉर्पोरेट अभियान और निवेश

शीर्ष स्विस बैंकों में से सैर्सिन नाम के एक ऋणदाता बैंक द्वारा कराये गए अध्ययन के अनुसार भारत की कुछ कंपनियां बहुत समय से उच्च सतत विकास मानकों से जुड़े रहने के कारण उच्च वैश्विक व्यवसाय संघों की सूची में हैं। ये कंपनियां निम्न हैं:

- टाटा परामर्श सेवा (TCS), सूचना तकनीक का अगुवा
- भारती एयरटेल, टेलिकॉम का अगुवा
- सुजलोन, भारत का पवनचक्की बनाने वाला
- इनफोसिस, भारत के शीर्ष आईटी व्यवसाय संघों के अगुवा में से एक

सतत विकास के संदर्भ में भारतीय कॉर्पोरेट जगत की उपलब्धियां

सतत विकास के संदर्भ में भारतीय कॉर्पोरेट जगत की उपलब्धियां निम्नलिखित हैं–

- भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) के आर्थिक संबल, एंट्रिक्स कॉर्पोरेशन को 2010 में 'ग्लोब सस्टेनिबिलिटी रिसर्च अवॉर्ड' दिया गया। यह पुरस्कार स्टॉकहोम स्थित सतत विकास को बढ़ावा देने वाले एक वैश्विक मंच द्वारा दिया गया।
- टाटा स्टील ग्रामीण विकास संस्था एक ऐसा संगठन है जो स्टील के बड़े समुदायों के निर्माण के अभियान, 'सूचना के अधिकार अधिनियमन' के प्रति जागरूकता फैलाने वाले अभियान से अक्टूबर 2009 में जुड़ा था।
- विप्रो इन्फोटेक, जो आईटी और व्यवसाय रूपांतरण सेवा प्रदाता कंपनी है, ने अपने नये घातक रसायनों जैसे पोली वाईनिल क्लोराईड और ब्रोमिनिकृत लौ रेटारडेंट से पूरी तरह मुक्त पर्यावरण अनुकूल और विष मुक्त डेस्कटॉप कम्प्यूटरों से पर्दा उठा चुकी है।
- रामकी एन्विरो इंजिनियर्स लिमिटेड और जी ई पावर एंड वाटर ने एक करार किया है जिसके अनुसार वो साथ काम करेंगे और व्यर्थ जल के प्रशोधन और पुनर्चक्रण के साथ पर्यावरण प्रबंधन के उपाय भी देंगे।

बहुत सी कॉर्पोरेट संस्थाओं ने भारत में सतत विकास में निवेश करने में अपनी रुचि दिखाई है। कुछ कंपनियां निम्न हैं–

- Gamesa Corporation Tecnologica: स्पेन की यह कंपनी वायु संयंत्र और पवन चक्कियां बनाने में माहिर हैं। 547 लाख अमेरिकी डॉलर के निवेश पर इस कंपनी ने चेन्नई में 500 मेगा वाट क्षमता वाली सुविधा लगा दी है।
- CLP **भारत:** इस भारतीय कंपनी का उद्देश्य प्रति वर्ष कम से कम 200 मेगा वाट वायु ऊर्जा के उत्पादन को अपनी उपलब्धियों में शामिल करना है। वायु ऊर्जा तकनीक में 2.2 अरब अमेरिकी डॉलर का निवेश करने के लिए यह प्रतिबद्ध है।

सतत विकास में भारत सरकार के अभियान

2010–11 के संयुक्त बजट में भारत सरकार ने स्वच्छ तकनीक के अनुसंधान और नयी तरह की परियोजना को धन उपलब्ध कराने के लिए राष्ट्रीय स्वच्छ ऊर्जा निधि (NCEF) की स्थापना की घोषणा की। NCEF का कोष बनाने के लिए भारत में होने वाले कोयले के उत्पादन पर 1.08 अमेरिकी डॉलर प्रति टन का नाम मात्र स्वच्छ ऊर्जा उपकरण लगाया गया। आयातित कोयले पर भी यह उपकर लगाया गया।

नव और पुनः उत्पादित ऊर्जा योजना के लिए मंत्रालय का खर्च 61 प्रतिशत तक बढ़ चुका है। 2009–10 में यह 1347 लाख अमेरिकी डॉलर था और 2010–11 में 61 प्रतिशत की वृद्धि के साथ बढ़कर यह 2172 लाख अमेरिकी डॉलर हो चुका है।

शहरी विकास मंत्रालय ने स्थायी शहरी परिवहन परियोजना शुरू की है जो 3000 लाख अमेरिकी डॉलर का हरित शहरी परिवहन परियोजना है। इस परियोजना का मुख्य उद्देश्य भारत के कुछ चुने हुए शहरों को वर्तमान शहरी परिवहन तंत्र से पैदा होने वाले प्रदूषण और घातक पदार्थों से मुक्त करना और पैदल चलने वालों को परेशानी से मुक्त करना है। इस परियोजना को वास्तविक रूप देने के लिए शहरी विकास मंत्रालय चुने हुए शहरों में हरित शहरी परिवहन की स्थापना करेगा।

केंद्रीय विद्युत नियामक कमीशन ने देश में स्वच्छ स्रोतों से विद्युत उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए एक प्रयास में ही पुनः उत्पादन योग्य ऊर्जा के प्रमाणपत्र के लिए मानक घोषित कर दिए हैं।

सतत विकास के लिए विदेशी सहायता

सभी देश धनी या गरीब, विकसित या विकासशील, इस बात के परिणामों से परिचित हैं कि यदि दुनिया द्वारा सतत विकास सभी संभव क्षेत्रों में नहीं प्राप्त किया गया तो क्या होगा। इस लक्ष्य को पाने के लिए सभी देशों ने हाथ मिलाया है, लेकिन विकसित देश लक्ष्य को पाने की दिशा में ज्यादा काम कर रहे हैं। इस बात को समझते हुए बहुत से विकसित देश अपनी आमदनी का निवेश पूरी दुनिया में सतत विकास पाने के लिए करने का निर्णय ले चुके हैं।

1970 में, विश्व के धनी देश अपनी कुल राष्ट्रीय आमदनी का 0.7 प्रतिशत हिस्सा अंतरराष्ट्रीय शासकीय विकास सहायता के तौर पर प्रतिवर्ष देने के लिए सहमत हुए। 1970 से अब तक ये देश निश्चित तौर पर अपनी आमदनी में से अरबों रूपये प्रतिवर्ष निवेश कर रहे हैं। लेकिन ये देश अपना निश्चित किया हुआ लक्ष्य अब तक नहीं पा सके हैं। उदाहरण के लिए, डॉलर के संदर्भ में अमेरिका सबसे बड़ा दाता है, लेकिन आमदनी से .07 प्रतिशत देने के मामले में वह सबसे नीचे हैं।

सतत विकास सूचक

यह साफ है कि सतत विकास का मतलब, आज के समाज की आर्थिक और पर्यावरण संबंधी आवश्यकता को पूरा करते हुए भविष्य की पीढ़ी के लिए सुरक्षित रखना है। किसी देश की क्षमता को मापने के लिए, कि वह देश सतत विकास प्राप्त कर सकता है या नहीं, एक सूचक की आवश्यकता होती है और यह सूचक सतत विकास सूचक के नाम से जाना जाता है।

सतत विकास सूचक एक सांख्यिकीय आकलन है जो विभिन्न राष्ट्रीय नीतियों और सामान्य जनता से इकट्ठा किया जाता है जोकिसी देश की आज और भविष्य की जरूरतों को पूरी कर सकने की क्षमता को मापता है।

शुरुआत में, सूचकों का एक छोटा समूह कई एजेंसियों के बीच सतत विकास सूचकों पर काम करने वाले समूह द्वारा 1997 में हुए सतत विकास सूचक सम्मेलन में चुना गया। 1997 में प्रस्तावित सूचकों में से चुना गया एक सूचक सतत विकास सूचक इन्वेंटरी था। यह बहुत से राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संगठनों द्वारा स्वीकार और विकसित किया गया, जैसे संयुक्त राष्ट्र और सतत विकास पर राष्ट्रपति की समिति।

सतत विकास सूचकों का ढांचा 1997 में प्रस्तावित सतत विकास सूचकों को चुनने के आधार की तरह काम करता है। सतत विकास सूचकों का ढांचा, दान, परिणाम और इन दोनों पर लागू हो सकने वाली प्रतिक्रियाओं के आधार पर है। यह ढांचा समाज, अर्थव्यवस्था और पर्यावरण के आधार तत्वों को सुव्यवस्थित रखता है।

सतत विकास सूचक समूह के, राष्ट्रीय सतत विकास सूचक के चयन में सहायता के लिए चार मुख्य कार्य हैं–

1. **एक ढांचे का विकास** : एक देश के राष्ट्रीय विकास सूचकों को इन सभी तीन तथ्यों– समाज, अर्थव्यवस्था और पर्यावरण के संदर्भ में पहचानने, व्यवस्थित करने और जोड़ने के लिए एक ढांचे का विकास किया गया। क्षेत्रीय और स्थानीय सूचकों के विकास के प्रयास में यह ढांचा सहायता करेगा।
2. **एक सूचना तंत्र का विकास** : सतत विकास सूचकों के संघीय आंकड़े और सूचना तक आसान और सस्ती इलेक्ट्रॉनिक पहुंच का विकास किया गया है।
3. **प्रगति रिपोर्ट जारी करना** : राष्ट्रीय सतत विकास सूचकों की प्रगति की बारे में जानने के लिए प्रगति की रिपोर्टें रोज बनायी और जारी की जाती हैं।
4. **संगठन संबंधी योजना की सिफारिश** : एक संगठन संबंधी योजना बनायी जाती है जिसमें सरकारी, गैर सरकारी संगठन, औद्योगिक संस्थान के हर स्तर के सतत विकास सूचक के दीर्घकालिक विकास एक दूसरे से जुड़ सकते हैं।

   सतत विकास सूचक समूह के चार कार्य– 1. एक ढांचे का विकास, 2. एक सूचना तंत्र का विकास, 3. प्रगति रिपोर्ट जारी करना, 4. संगठन संबंधी योजना की सिफारिश।

बहुत सारी संघीय एजेंसियां और विभाग हैं जिनकी सतत विकास सूचकों का निर्धारण करने में सतत विकास सूचक समूहों में सक्रीय भूमिका रही। वो एजेंसियां और विभाग अग्रलिखित हैं–

- कृषि विभाग
- वाणिज्य विभाग
- ऊर्जा विभाग
- आवासीय और शहरी विकास विभाग
- न्याय विभाग

टिप्पणी

- श्रम विभाग
- प्रदेश विभाग
- अंतरंग विभाग
- परिवहन विभाग
- वित्त विभाग
- पर्यावरण सुरक्षा एजेंसी
- राष्ट्रीय वैमानिकी एवं अंतरिक्ष प्रबंधन

सतत विकास वर्तमान में सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरण संबंधी जरूरतों के पूरा होने और आने वाली पीढ़ी के लिए संसाधनों के संरक्षित रहने को सुनिश्चित करता है। सरकार ने सतत विकास को बढ़ावा देने के लिए बहुत सारे कदम उठाये और बहुत से कार्यक्रमों का विकास किया। लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में दिया गया समाधान कार्य कर रहा है अथवा नहीं, इस बात का पता लगाने के लिए तीन तरह के सूचकों का प्रयोग किया जाता है जो निम्न हैं:

1. सतत आर्थिक विकास सूचक
2. सतत सामाजिक विकास सूचक
3. सतत पर्यावरण विकास सूचक

सतत आर्थिक विकास सूचक

औद्योगिक क्रांति ने आर्थिक विकास की गति और संसार भर के देशों में समृद्धि बढ़ा दी है। जैसे हर चीज के फायदे और नुकसान होते हैं उसी तरह लोगों के रहन सहन के उच्च स्तर ने प्राकृतिक संसाधनों में क्षय किया, प्रदूषण बढ़ाया और पूरे विश्व में धनी और गरीब देशों के बीच के अंतर को बढ़ाया। इस क्रांति से पश्चिमी देश ज्यादा लाभान्वित हुए जबकि एशिया और अफ्रीका के बड़े भाग उनसे पीछे रह गए। आर्थिक अंतर इतना ज्यादा था कि 'पहली दुनिया के देश' और 'तीसरी दुनिया के देश' जैसे शब्द अस्तित्व में आये। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है दुनिया में आमदनी का बराबर बंटवारा नहीं हुआ। इस आर्थिक विकास के कारण धनी और गरीब के बीच का अंतर बढ़ गया।

गरीब वैसे ही रहे जैसे थे इसलिए सतत आर्थिक विकास अमीर और गरीब देशों के बीच के अंतर को कम करने का आखिरी रास्ता था।

सतत आर्थिक विकास के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं–

- गरीबी में कमी,
- संसाधनों का बराबर उपयोग,
- आर्थिक संसाधनों के क्षय में कमी करना।

विभिन्न आर्थिक विकास सूचकों में से कुछ निम्न हैं–

- कुल आयात और निर्यात,
- जीडीपी वृद्धि दर,

- आरक्षित प्राकृतिक संसाधन,
- प्रति व्यक्ति वार्षिक ऊर्जा खपत,
- आर्थिक संस्थागत सूचक।

प्राकृतिक वातावरण और शहरी तथा सतत विकास से संबंधित परियोजनाओं के लिए सरकार द्वारा उठाये गए कदमों का कुल निष्कर्ष आर्थिक संस्थागत सूचक कहलाता है।

सतत सामाजिक विकास सूचक

विश्व भर के देशों की सरकारों के लिए दूसरी सबसे बड़ी चुनौती समाज के सभी क्षेत्रों, चाहे वो स्वास्थ्य, आर्थिक, सामाजिक, आर्थिक हों या सांस्कृतिक हों, में सद्भावना कायम रखते हुए विकास के सभी कार्यों को संपन्न करना है। सभी देशों का समाज दो भागों में बंटा है–

1. ग्रामीण क्षेत्र
2. शहरी क्षेत्र।

ग्रामीण क्षेत्र

सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास का अधिकांश हिस्से का लाभ देश के शहरी क्षेत्र ने उठाया है। शहरी क्षेत्र की बराबरी करने के लिए सरकार को ग्रामीण क्षेत्र में और आर्थिक विकास करने की आवश्यकता है। इसलिए, सरकार को सभी तरह के विकास के लाभ को व्यवस्थित करने के लिए सतत ग्रामीण विकास पर ध्यान देना है।

सरकार ने सतत ग्रामीण विकास को बनाये रखने के लिए बहुत सारे कदम उठाये जो निम्न हैं:

- वन मालिकों और किसानों को सलाहकारी सुविधा देना
- वन के आर्थिक मूल्यों के प्रति जागरूकता पैदा करना
- कृषि संबंधी उपकरणों का आधुनिकीकरण करने की शुरुआत करना
- कृषि में नये तरीके, उत्पाद और तकनीकों का प्रयोग करना
- ढांचागत विकास पर जोर देना।

बहुत सारी एजेंसियां, जैसे क्षेत्रीय विकास एजेंसी, राष्ट्रीय सरकार, अंतरराष्ट्रीय विकास संगठन, और गैर सरकारी संगठन, ग्रामीण क्षेत्रों में सतत विकास करने के लिए बेहतरीन प्रयास कर रही हैं।

शहरी क्षेत्र

एक देश के सतत सामुदायिक विकास पर चर्चा करते हुए शहरी क्षेत्र को अंदेखा नहीं किया जा सकता है। यद्यपि, शहरीकरण और औद्योगीकरण का सबसे ज्यादा लाभ शहरी क्षेत्र ने ही लिया है लेकिन उन सारे लाभों के साथ–साथ वहां प्रदूषण, बेरोजगारी, अपराध, और वनोन्मूलन भी तो बढ़ा है।

इसलिए सतत सामाजिक विकास के लक्ष्य को पाने के लिए एक सरकार को निम्नलिखित कार्य करने चाहिए:

टिप्पणी

- ग्रामीण और शहरी समुदायों दोनों के पर्यावरणीय, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक भलाई के लिए सामाजिक और आर्थिक प्रगति को ध्यान में रखना।
- सामाजिक उद्योग, सरकारी एजेंसी, देशीय एवं पारदेशीय कॉर्पोरेशन और गैरसरकारी संगठनों की स्थापना सतत सामाजिक विकास के प्रति जागरूकता फैलाने के लिए करना।
- सतत विकास को पाने के लिए संसाधनों का बुद्धिमतापूर्ण उपयोग करने के लिए लोगों को जागरूक करना।
- ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में जनसंख्या पर नियंत्रण करने के लिए कदम उठाना।
- समाज के विभिन्न भागों में धन का समान वितरण करना।
- सभी आधारभूत आवश्यकताएं और सुख सुविधाएं हर एक व्यक्ति को उपलब्ध कराना।
- सामाजिक न्याय, आर्थिक सुरक्षा, पर्यावरणीय सुरक्षा और भविष्य की पीढ़ी के लिए धन–धान्य उपलब्ध कराने की तरफ ध्यान देना।

स्थायी सामाजिक सूचक में निम्न बातें निहित हैंः

- रोजगार दर
- साक्षरता दर
- जनसंख्या वृद्धि दर
- सुरक्षित पेय जल
- जनसंख्या घनत्व
- शिशु मृत्यु दर
- जन्म दर
- शिक्षा पर खर्च किया गया सकल घरेलू उत्पाद (GDP)
- जीवन प्रत्याशा दर या एक साल में हुए जन्म
- पर्यावरण संबंधी बीमारियां
- शहरी जनसंख्या वृद्धि दर
- प्रयोग में आने वाले वाहन
- प्रति व्यक्ति के तौर पर मापित कैलोरी खपत।

सतत पर्यावरण विकास सूचक

सामाजिक और आर्थिक समस्याओं के अतिरिक्त औद्योगीकरण और शहरीकरण के कारण पर्यावरण भी प्रभावित हुआ है। पर्यावरणीय समस्याओं में तरह–तरह के प्रदूषण, तेल, खनिज, ऊर्जा स्रोत या खाद्यान्न और जीव जंतुओं का क्षय, पारिस्थितिक असंतुलन और मिट्टी की गुणवत्ता में क्षय, सबसे ज्यादा खतरनाक हैं।

यदि प्राकृतिक संसाधनों के क्षय और प्रदूषण की दर इसी दर से बढती रही तो हमारी भावी पीढ़ी अपना अस्तित्व नहीं बचा पायेगी क्योंकि तब न जल होगा, न भोजन होगा, न शुद्ध हवा होगी। इसलिए, सभी प्राकृतिक एवं कृत्रिम पर्यावरणीय संसाधनों का

नियंत्रित उपयोग करना आवश्यक हो गया ताकि हम आज की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए भी इन्हें भविष्य की पीढ़ी के लिए संरक्षित कर सकें। इस लक्ष्य को पाने के लिए सतत पर्यावरण विकास के उपाय ढूंढ़ने की आवश्यकता है।

कृषि

कृषि मानव अर्थव्यवस्था का एक अभिन्न अंग और मानव सभ्यता का एक अनिवार्य तंत्र है। हालांकि शहरीकरण और औद्योगीकरण के कारण कृषि योग्य भूमि की गुणवत्ता में कमी हो रही है। इसलिए, सतत कृषि विकास का अनुकरण करना आवश्यक हो गया है जो हमारी भावी पीढ़ी को जीवित रहने के लिए पर्याप्त भोजन और कृषि सामानों की उपलब्धता का भरोसा दिलाता है।

कृषि से प्राप्त कुल सामाजिक लाभ को बढ़ाते हुए द्रव्य और अद्रव्य दोनों तरह के प्रतिफल को अधिकतम करते हुए, प्राकृतिक संसाधनों के आधार के खतरे को कम करते हुए, रासायनिक पदार्थों का कम उपयोग करते हुए और प्राकृतिक अपशिष्टों पर ज्यादा भरोसा करते हुए लंबे समय के लिए कृषि के उत्पादों को बढ़ाने में स्थाई कृषि सहायता करती है।

स्थाई कृषि अभी भी एक विकसित होती हुई संकल्पना है जो सामाजिक समता, पर्यावरणीय स्वास्थ्य और आर्थिक लाभप्रदता जैसे तीन अति महत्वपूर्ण तथ्यों से जुड़ने का प्रयास कर रही है। इस संकल्पना का सबसे अच्छा पक्ष सरकार, किसान और उपभोक्ताओं द्वारा दिया गया योगदान है। उत्पादन को बढ़ाने और सतत कृषि विकास को बढ़ाने के लिए सरकार ने कई महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं।

जल संसाधन

सब लोग इस तथ्य से परिचित हैं कि धरती का 70 प्रतिशत हिस्सा जल से बना है। हालांकि, पेय जल के संसाधन सीमित हैं। जल के अंधाधुंध प्रयोग से जल संसाधनों में क्षय होना चिंता का विषय है। जल सबसे कीमती प्राकृतिक संसाधन है जो बहुद्देश्यीय है और हर जीवित वस्तु के जीवन के लिए आवश्यक है।

पेय जल स्तर के नीचे जाने के प्रमुख कारण निम्न हैं:

- औद्योगिक विकास
- विद्युत क्षेत्र का उद्भव
- सींचने लायक भूमि का बढ़ना
- विश्व भर में हजारों बांधों का बनना

इन तथ्यों ने जल चक्र को बुरी तरह प्रभावित किया है जिसकी वजह से झीलों, नदियों के जल चक्र बदल गए हैं, जल की गुणवत्ता बदल गयी है और बड़ी नदियों के बहाव में कमी आई है। इसलिए, जल स्थायित्व विधि का प्रयोग करके जल का संरक्षण करना अति आवश्यक हो गया है। खास कर उन क्षेत्रों में जहां जल आपूर्ति व्यवस्था सामानों और सेवाओं की जल तीव्रता कम कर रही है और जल संसाधन उत्पादकता को बढ़ा रही है।

हालांकि, विश्व भर में जल स्थायित्व की तरफ सरकारों द्वारा कदम उठाये गए हैं। यहां तक कि संयुक्त राष्ट्रों ने भी इस संबंध में कुछ निर्देश तैयार किये हैं और बहुत सी नीतियों और सुझावों की रूपरेखा बनायी है।

टिप्पणी

ऊर्जा

यह सतत विकास कार्यक्रम जो चल रहा है दोहरे लक्ष्य पाने में देशों की सहयता करता है। पर्यावरण संतुलन पहला और लोगों को उनकी सामाजिक और पर्यावरणीय जिम्मेदारियों से परिचित करना दूसरा लक्ष्य है। सभी सरकारें, विद्वान, सामुदायिक श्रमिक, विशेषज्ञ और गैर सरकारी संगठन, आर्थिक, समाजिक–राजनैतिक और पर्यावरण संबंधी क्षेत्रों में सतत विकास बनाये रखने के लिए नये–नये तरीके इजाद करने के लिए साथ आ गए हैं।

प्राकृतिक संसाधनों के सतत विकास के तरीके इजाद करने की सूची में भूमि और जल के साथ–साथ ऊर्जा भी प्राथमिकता में बहुत ऊपर आती है। जैसे–जैसे औद्योगीकरण और शहरीकरण बढ़ रहा है वैसे–वैसे प्राकृतिक संसाधनों जैसे तेल, कोयला, खनिज अदि का क्षय तेजी से बढ़ रहा है। आवश्यकताओं की पूर्ति और ऊर्जा के प्राकृतिक स्रोतों को बचाने के लिए वैकल्पिक ऊर्जा संसाधनों जैसे जैव–ईंधन, तरंग शक्ति, पवन शक्ति, ज्वारीय शक्ति, परमाणु शक्ति, सौर ऊर्जा, भू उष्णता आदि का विकास किया जा रहा है।

ये वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत ऊर्जा स्थिरता को संबल देने के साथ–साथ बहुत कम कीमत वाले और प्राकृतिक संसाधनों से ज्यादा प्रभावी होते हैं। बहुत से देशों ने पुनः उत्पादित ऊर्जा का बड़े पैमाने पर उपयोग करना शुरू कर दिया है। कुछ देश निम्न हैं:

- ब्राजील अधिकतर गन्ने से बनायी गयी जैव ऊर्जा का उपयोग करता है।
- हॉलैंड अपनी ऊर्जा आवश्यकता को वायु और ज्वारीय शक्ति से पूरा करता है।

विद्युत ऊर्जा का कम इस्तेमाल करके बहुत सी कॉर्पोरेट संस्थाएं सतत ऊर्जा विकास में सहयोग दे रही हैं। बहुत से विकसित देशों के लिए सौर शक्ति ही ऊर्जा का प्रमुख स्रोत बनती जा रही है।

सतत पर्यावरण विकास सूचक निम्न हैं:

- भू–जल संसाधनों की खोज और उनका उपयोग
- व्यर्थ जल का उत्पादन
- खादों और कीटनाशक का उपयोग
- भू–जल क्षमता की माप
- वनोन्मूलन की वह दर जिसको सहमति मिली है
- ठोस कचरा प्रबंधन की नगरपालिका
- समुद्री मछली को पकड़ना
- भूमि प्रयोग स्वरूप का स्वरूप
- कुल वन

- प्रति व्यक्ति कार्बन डाई ऑक्साइड का उत्सर्जन
- लाइवस्टॉक के संदर्भ में लाइव स्टॉक की मापी गयी जनसंख्या
- काष्ठ ऊर्जा के स्वरूप में ऊर्जा संसाधन
- सुरक्षित की गयी प्रजातियां जिस गति से विलुप्त हो रही हैं उसकी दर
- वह दर जिसे ओजोन को नुकसान पहुंचाने वाले पदार्थों का प्रयोग और उत्सर्जन हो रहा है।

टिप्पणी

सतत विकास को बढ़ावा देने के लिए जो कार्यक्रम और योजनाएं बनायी गयी हैं उनका इतिहास रखने के लिए सतत विकास सूचकों का निर्माण और उनको लागू करना आवश्यक हो गया है। सतत विकास के अपने निर्धारित किये लक्ष्य की तरह अपनी प्रगति को मापने में ये सूचक किसी भी देश की सहायता करते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

11. 1987 में आई बून्ड्टलैंड रिपोर्ट ने सतत विकास हेतु कितनी अवधारणाओं की स्थापना की?

    (क) एक (ख) दो

    (ग) तीन (घ) चार

12. भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन को सतत विकास के लिए 'ग्लोब सस्टेनिबिलिटी रिसर्च अवार्ड' किस वर्ष दिया गया?

    (क) 1987 (ख) 1994

    (ग) 2010 (घ) 2019

5.8 पर्यावरणीय क्षति का आकलन : भूमि, जल, वायु और वन

पर्यावरणीय हानि को विस्तारपूर्वक निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

पर्यावरणीय हानि का स्वरूप

जल–प्रदूषण, भू–संदूषण एवं जैववैविध्य–हानि के अति गंभीर प्रकरणों को पर्यावरणीय क्षति कहा जाता है तथा इनका नियंत्रण पर्यावरणीय देयता विनियमों के माध्यम से किया जाता है।

प्रदूषण एवं क्षति के प्रकरणों में हानिप्रद कृत्यों को विभिन्न विधान–निर्माण द्वारा अवैध घोषित किया जाता है। उदाहरण हेतु यदि आपके कारण जलप्रदूषण की कोई कम गंभीर घटना हुई हो तो आपको प्रदूषण के निवारण के लिए नोटिस भेजा जा सकता है अथवा आप पर अभियोजन चलाया जा सकता है।

पर्यावरणीय देयता विनियमों के माध्यम से व्यापारों में पर्यावरणीय क्षति रोकने की एवं इनके द्वारा की गयी हानि की क्षतिपूर्ति के लिए कार्यवाही हेतु व्यापारिक प्रतिष्ठानों को बाध्य किया जाता है।

यदि आप विनियमों में निषिद्ध कोई देयता गतिविधि करते हैं एवं पर्यावरण को क्षति पहुंचाते हैं तो आपको क्षति बढ़ने से रोकनी होगी अथवा/एवं हानि की क्षतिपूर्ति करनी होगी फिर भले ही आपने साभिप्राय(जानबूझकर) ऐसा न किया हो। निषिद्ध देयता गतिविधियों के अंतर्गत निम्नांकित सम्मिलित हैं–

- अपशिष्ट प्रबंधन क्रियाकलापों में अनुमति एवं पंजीकरण की आवश्यकता रहती हैः एकत्रण, परिवहन, रिकवरिंग एवं अपशिष्ट व खतरनाक अपशिष्ट का निपटान।
- भू–भरण स्थलों का संचालन।
- निष्कर्षण खनन–अपशिष्ट का प्रबंधन।

प्रदूषणकर्ता द्वारा पर्यावरण को पहुंचायी गयी क्षति के लिए प्रदूषणकर्ता क्षतिपूर्ति करने के लिए बाध्य होता है। प्रश्न यह उठता है कि यह कैसे जांचा जाये कि उसके द्वारा पर्यावरण को किस मात्रा में क्षति पहुंचायी गयी है। ऐसे प्राकृतिक संसाधनों अथवा अन्य पर्यावरणीय सेवाओं के मूल्य के संदर्भ में मात्रा–मापन का यह मुद्दा और अधिक विवादास्पद हो जाता है जिन्हें प्रदूषण की घटना के बाद पूर्णतया पुनर्स्थापित नहीं किया जा सकता अथवा वापस नहीं लौटाया जा सकता।

आवश्यक क्षति–पूर्ति के परिमाण की गणना के लिए साधारणतया दो प्रयास किये जाते हैं–

1) क्षति के मौद्रिक मूल्य का निर्धारण
2) हानि के लिए क्षतिपूर्ति हेतु आवश्यक पर्यावरणीय उपचार के पैमाने (वास्तविक, न कि मौद्रिक) का आकलन, तदुपरांत संबंधित लागतों का निर्धारण।

पर्यावरणीय क्षति का आर्थिक मूल्यांकन

पर्यावरणीय क्षति के आर्थिक मूल्यांकन को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

- **बाजार में कीमत का निर्धारण**– इस विधि का प्रयोग ऐसी पर्यावरणीय सेवाओं के आर्थिक मूल्यों के आकलन के लिए किया जाता है जो बाजार की कीमतों को प्रत्यक्षतः प्रभावित करती हैं। अधिकांशतया इसमें आवासीय कीमतों में भिन्नों (वैरियेशन्स) को देखा जाता है जोकि स्थानीय पर्यावरणीय स्थितियों के मान को दर्शाती हैं। उदाहरण हेतु यदि अन्य सभी कारक समान हों तो संदूषित स्थान अथवा प्रदूषित परिवेश अथवा इससे निकटवर्ती क्षेत्र में आवास क्रय करना दूर स्थित किसी आवास को क्रय करने की तुलना में सस्ता होगा। इस प्रकार आवासीय कीमतों में अंतर से मूल्य के उस घाटे का आकलन मिल जाता है जो संदूषण (कण्टेमिनेशन) के कारण हुआ।
- **यात्रा लागत विधि**– किसी स्थान का पर्यटन–मान अथवा उसकी दर्शनीयता कितनी है, इससे भी उस स्थान के महत्व को समझा जा सकता है, उदाहरणार्थ उस स्थान पर कितने लोग यात्रा करने, जाने, व्यय करने को तैयार हैं? आर्थिक मूल्य का भुगतान कर उस स्थान पर पहुंचने की इच्छा को उस स्थान पर यात्रियों/पर्यटकों के जाने की आवृत्ति/संख्या से मापा जा सकता है। इस

प्रकार उस स्थान की यात्रा लागत ज्ञात की जा सकती है, प्रदूषण जितना अधिक– यह लागत उतनी कम।

- **मौखिक वरीयता युक्तियां**– आकस्मिक मूल्यनिर्धारण एवं पसंद प्रतिरूपण युक्तियां सर्वेक्षण–आधारित विधियां हैं जिनके प्रयोग से गैर–बाजार संसाधनों का मूल्य निर्धारित किया जाता है जहां उत्तरदाताओं का यह दृष्टिकोण जानने के लिए प्रश्नावली तैयार की जाती है कि वे किसी पर्यावरणीय परिसंपत्ति के संरक्षण/सुरक्षा के लिए प्रत्यक्षतया भुगतान की कितनी इच्छा रखते हैं अथवा पर्यावरणीय परिसंपत्ति के घाटे के लिए क्षतिपूर्ति स्वीकार करने की उनकी कितनी इच्छा है।

इन विधियों के अनुरूप मानवों द्वारा संसाधनों के मूल्यमापन को व्यवहार में बहुत अधिक नहीं लाया जाता है। इनमें से कुछ प्रस्तावित मौद्रिक मूल्यांकन कसौटियां (जैसे कि आकस्मिक मूल्यांकन विधि एवं यात्रा लागत विधि) अत्यधिक व्यक्तिपरक (सब्जेक्टिव) हो सकती हैं तथा ऐसा होने से अनुमान–अयोग्य व अप्रत्याशित परिणाम ही प्राप्त होंगे। इन विधियों में एक और समानता यह है कि ये ऐसे मूल्यों का मापन करने के लिए उपयुक्त नहीं हैं जिनका उपयोग मनुष्यों द्वारा प्रत्यक्षतः न किया जाता हो, जैसे कि जैव–वैविध्य का मूल्य। उपरोक्त मूल्यांकन प्रयासों से असंतुष्टि के कारण 1990 के दशक में संसाधन–समतुल्यत्व विधियों का विकास किया गया।

उपचार–आवश्यकताओं एवं लागतों का आकलन

अनेक देशों में पर्यावरणीय क्षति के आकलन के लिए प्रभावित संसाधनों (पर्यावासों का क्षेत्रफल, प्रजातियों की संख्या इत्यादि) के पुनरुद्धार की आवश्यकताओं का आकलन किया जाता है अथवा उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं (जैसेः जल आपूर्ति) की पुनर्स्थापना का आकलन किया जाता है।

उपचार के प्रकार

क्षति के परिमाण का आकलन तत्संबंधी पारितंत्र अथवा पर्यावरणीय माध्यमों की मूलभूत अवस्था के संदर्भ में किया जाता है। मूलभूत अवस्था का आशय ऐसी अवस्था से है जो तब होती यदि पर्यावरणीय क्षति न पहुंची होती, इसका आकलन उपलब्ध सटीक सूचनाओं के आधार पर किया जाता है।

पर्यावरणीय क्षति का आकलन प्राथमिक, संपूरक एवं क्षतिपूरक उपचार के परिदृश्य में किया जा सकता हैः–

- **प्राथमिक उपचार** : इसमें ऐसी कार्यवाहियां की जाती हैं जिनके द्वारा स्थान–विशिष्ट क्षति को कम किया अथवा उपचारित किया जा सके; इसमें प्रायः प्रदूषक पदार्थों को वहां से हटाया अथवा निपटाया जाता है अथवा उनके बहाव/रिसाव को आगे और होने से रोका जाता है। प्राथमिक उपचार का उद्देश्य क्षतिग्रस्त नैसर्गिक संसाधनों अथवा सेवाओं को उनके पूर्वरूप में अर्थात आधारभूत अवस्था में ले जाना होता है परंतु सदा ऐसा संभव नहीं होता।
- **संपूरक उपचार** : इसमें या तो क्षति से ग्रसित स्थिति को सुधारा जाता है अथवा क्षतिग्रस्त नैसर्गिक सेवाओं अथवा संसाधन के विकल्प का निर्माण किया

जाता है अथवा अन्यत्र समान अथवा समकक्ष प्रकार की नैसर्गिक सेवाओं/संसाधनों का सृजन किया जाता है यदि प्रभावित स्थान का भीतरी पूर्ण जीर्णोद्धार असंभव हो गया हो।

टिप्पणी

- **क्षतिपूरक उपचार** : चूंकि प्रभावित नैसर्गिक सेवा/संसाधन को उसकी आधारभूत अवस्था अर्थात पूर्व–अवस्था तक ले जाने में समय लगता है, इसलिए क्षतिपूरक उपचार आवश्यक होता है ताकि उस समय तक घाटे की क्षतिपूर्ति होती रहे जब तक कि आधारभूत अवस्था लौट नहीं आती। वैसे क्षतिपूरक उपचार का व्यावहारिक क्रियान्वयन अब भी दुर्लभता से ही दिखायी देता है। बहुधा ऐसे प्रकरणों में सटीक आकलन के लिए विशेषज्ञों से परामर्श लिए जाते हैं।

  प्रदूषणकर्त्ता संस्थान/व्यक्ति को पर्यावरणीय क्षति के आकलन की लागतों के लिए भी उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, साथ ही यह निम्नांकित लागतों के लिए उत्तरदायी होता ही है–

  - o कार्यान्वयन एवं पर्यवेक्षण की प्रशासनिक लागतें,
  - o आंकड़ों के एकत्रण व निरीक्षण (निगरानी) की लागतें,
  - o वसूली जाने वाली लागतों (यदि इनका वहन शासन द्वारा किया जाना हो) का ब्याज,
  - o वैधानिक लागतें।

संसाधन–समतुल्यत्व विश्लेषण

घटना से संबंधित घाटे से प्रभावित जनता के अतीत, वर्तमान व भविष्य की क्षतिपूर्ति को आवश्यक उपचार के प्रकार एवं परिमाण को निर्धारित करने के लिए संसाधन–समतुल्यत्व विश्लेषण किया जाता है। इसमें पर्यावरणीय क्षति/घाटे के समतुल्य आकार अथवा मूल्य के पर्यावरणीय लाभों को उपचार परियोजनाओं के माध्यम से उत्पन्न करने का प्रयास किया जाता है।

उपचार आवश्यकताओं के आकलन की संसाधन–समतुल्यत्व विधियां

- **संसाधन विधि** : इस विधि से उपचार के अंतर्गत हानिग्रस्त संसाधन के बदले वास्तविक नये संसाधन को लाने का प्रयास किया जाता है। इस विधि में यह विचार करना होता है कि अमुक कृत्य से किन–किन जीवों को क्या–क्या हानियां हुई हैं जिन्हें उपचार द्वारा ठीक किया जाना है। हानियों व लाभों की तुलना हानि से ग्रसित पर्यावास के परिमाण (यथा एकड़) को आधार बनाकर भी की जा सकती है जिसे प्रकरण में 'पर्यावास–समतुल्यत्व विश्लेषण' कहा जाएगा।
- **सेवा विधि** : यह विधि 'नैसर्गिक संसाधन–सेवाओं' पर केंद्रित है जिनका तात्पर्य पारितंत्र के लाभ के लिए नैसर्गिक संसाधन द्वारा की जाने वाली क्रियाएं हैं; ऐसी क्रियाओं में जल–शोधन अथवा जैववैविध्य–अनुरक्षण सम्मिलित है अथवा नैसर्गिक संसाधन सेवाओं का तात्पर्य जनता के लाभ के लिए नैसर्गिक

संसाधन द्वारा की जा रही क्रियाएं हैं, ऐसी क्रियाओं में बाढ़–नियंत्रण, पक्षी–विहार अथवा स्वस्थ नैसर्गिक परिवेश का आनंद सम्मिलित है। चूंकि संसाधन की प्रति इकाई सेवा का परिमाण पूरे उपचार–स्थल में एकसमान होना आवश्यक नहीं होता, अतः उपचार का भौतिक आकार क्षति के भौतिक आकार से अल्प अथवा अधिक हो सकता है।

- **मूल्य व मूल्य–लागत विधियां** : ये प्रयास ऐसी परिस्थितियों में किये जाते हैं जहां उपरोक्त दोनों बिंदुओं में प्रदर्शित विधियां उपयुक्त न हों। उदाहरण हेतु यदि प्रस्तावित उपचार परियोजनाएं भिन्न–भिन्न नैसर्गिक परिवेशों अथवा संसाधनों अथवा सेवाओं में प्रदान की जानी हों अथवा उस उपचार प्रकरण में संसाधनों अथवा सेवाओं का मापन सटीकता से न किया जा सके। मूल्य–लागत विधि में पर्यावरणीय क्षति के 'मूल्य' का आकलन करते हुए ऐसे उपचार–विकल्प का चयन किया जाता है जिसका मौद्रिक मूल्य इस मूल्य के समतुल्य हो।

समतुल्यत्व विश्लेषण में निम्नलिखित तीन चरण होते हैं–

1. पर्यावरणीय क्षति के प्रभावों का मात्रा–मापन क्षतिग्रस्त संसाधनों अथवा सेवाओं के विस्तार व स्तर के संदर्भों में करना;
2. जिस सेवा/संसाधन का प्रतिस्थापन किया जाना है उसकी मात्रा व गुणवत्ता के संदर्भों में उपचार विकल्पों की पहचान एवं मूल्यांकन;
3. समय के सापेक्ष क्षतिग्रस्त संसाधनों/सेवाओं की क्षतिपूर्ति के लिए उपचार के स्तर एवं समयसीमा में समायोजन।

संसाधन–समतुल्यत्व विधियों में एक बड़ी समस्या यह आती है कि पर्यावरणीय हानि से जुड़ी क्षति के स्तर का आकलन कैसे करें? इसी के साथ उपचार से होने वाले लाभ का आकलन भी जटिल कार्य है। समतुल्यत्व विधि में क्षति के मापन की इकाई का निर्णय करना महत्वपूर्ण है जिससे समय के सापेक्ष क्षतियों का आकलन किया जा सके व समय के सापेक्ष उपचार के लाभों की तुलना की जा सके। क्षति (अथवा लाभ) के मात्रा–मापन को मौद्रिक इकाइयों, आवश्यक उपचार के क्षेत्रफल एवं जीवों की संख्या (जैसे कि पक्षियों की संख्या) में व्यक्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए वृक्षावरण के घाटे की मात्रा मापकर इतनी ही मात्रा में वृक्षारोपण कराया जाता है, इसी प्रकार विभिन्न प्रजातियों के जीवों की संख्या के घाटे व क्षतिपूर्ति के लिए प्रत्येक प्रजाति के जीवों की संख्या की गणना करायी जाती है। क्षतिपूर्ति के समीकरण के दोनों ओर समान मापक इकाई में घाटे व क्षतिपूर्ति का परिमाण एकसमान होना चाहिए।

उपचार का विस्तार क्षेत्र

हो सकता है कि उपचार के विस्तारक्षेत्र का निर्णय विधि (कानून) में उल्लिखित किया गया हो अथवा सक्षम शासकीय विभाग के विवेक पर छोड़ दिया गया हो। कुछ देशों में संदूषित स्थल का उपचार उस सीमा तक करना होता है जब तक कि वह मानव–स्वास्थ्य के लिए निरापद (हानिरहित) नहीं हो जाता। वन्यजीव प्रजातियों, इनके पर्यावासों व जलसंसाधनों को हुई क्षति के प्रकरण में प्रदूषणकर्त्ता द्वारा अपनाये जाने वाले उपचारात्मक उपायों के परिमाण का निर्णय सक्षम विभाग द्वारा किया जाता है।

नवीन एवं ऐतिहासिक क्षति के लिए भिन्न–भिन्न उपचार–मानक संभव हैं। उदाहरणार्थ, लेण्डर्स (बेल्जियम) में नव संदूषित क्षेत्रों को सभी प्रकरणों में स्वच्छ किया जाना है जहां संदूषण की सांविधिक सीमाओं को बढ़ा दिया गया था। ऐतिहासिक प्रदूषण के प्रकरण में स्वच्छता–कार्यवाहियों का निर्णय उस क्षति के परिणामस्वरूप मानव–स्वास्थ्य व पर्यावरणीय जोखिमों के आकलन के आधार पर किया जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए

13. पर्यावरणीय क्षतिपूर्ति के परिमाण मापन के लिए कौन–सा मार्ग अपनाया जाता है?
    (क) क्षति का मौद्रिक मूल्य निर्धारण
    (ख) क्षतिपूर्ति के उपचार के पैमानों के आकलन के पश्चात उनकी लागतों का निर्धारण
    (ग) दोनों
    (घ) कोई नहीं
14. संसाधन–समतुल्यत्व विधियों का विकास कब किया गया?
    (क) 1980 के दशक में (ख) 1990 के दशक में
    (ग) 2000 के दशक में (घ) 2010 में

5.9 प्रदूषण में कमी, नियंत्रण और रोकथाम

पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण

पर्यावरण न सिर्फ मनुष्य की बल्कि धरती के हर जीव की सभी जरूरतें पूरी करता है। बदले में हमें भी सभी प्रकार के संसाधनों जैसे हवा, पानी, भूमि, जंगल आदि की सुरक्षा करनी चाहिए जो हमारे लिए पर्यावरण की देन हैं। पर्यावरण के संसाधनों के विघटन का मुख्य कारण विभिन्न प्रकार के प्रदूषण हैं जिसमें हवा, पानी और मिट्टी शामिल हैं। चूंकि सभी प्रकार के संसाधनों के विघटन का कारण प्रदूषण है इसलिए हमें प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण के लिए कदम उठाने चाहिए।

वायु प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण के लिए कुछ कदम निम्नलिखित हैं–

1. जीवाश्म ईंधन जैसे कोयला और उद्योगों और वाहनों में पैट्रोलियम उत्पादों के जलने से होने वाले प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण;
2. विद्युत के आवंटन और परिचालन के लिए आधुनिक तकनीक और सुनियोजित रणनीति लागू करना;
3. अक्षय संसाधनों के इस्तेमाल को बढ़ावा देना;
4. कड़े नियम बनाकर वाहनों से होने वाले वायु प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण के लिए मानक निर्धारित करना;

5. प्रदूषण नियंत्रक मानकों की अवहेलना करने वाले उद्योगों और वाहनों पर प्रतिबंध लगाना;
6. ईंधन के दुरूपयोग से बचने के लिए ईंधन की व्यवस्थित आपूर्ति सुनिश्चित करना;
7. सड़कों से पुराने प्रदूषित वाहनों को हटाने के लिए मानक बनाना;
8. यात्रा के लिए सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था के इस्तेमाल को प्रोत्साहन देना;
9. उद्योगों को इस बात के लिए प्रोत्साहित करना कि वे खतरनाक गैसों को हटाने के बाद ही पर्यावरण में चिमनी खोलें।

जल प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण के लिए कुछ कदम निम्नलिखित हैं–

1. लोगों को बारिश के पानी को जमा करने के लिए जलाशय बनाने के लिए प्रोत्साहित करना।
2. नदियों में प्रदूषित पानी को शुद्ध किए बिना छोड़ने वाली कंपनियों के खिलाफ कड़ी कार्रवाई करना।
3. पानी की खपत की मात्रा को मापने के लिए मीटर लगाना।
4. लोगों में संरक्षण और पानी के सही उपयोग और जल प्रदूषण की रोकथाम के संबंध में जागरूकता फैलाना।
5. लोगों को अधिक से अधिक पेड़ लगाने के लिए प्रोत्साहित करना।
6. जल उपचार संयत्र लगाना और उपचारित जल का सिंचाई और अन्य कृषि क्षेत्र के कार्यों के लिए इस्तेमाल करना क्योंकि इससे हानि नहीं होती।
7. जल आपूर्ति के लिए उचित वितरण व्यवस्था कायम करना ताकि पानी बर्बाद ना हो।

ध्वनि प्रदूषण की रोकथाम के लिए कुछ कदम निम्नलिखित हैं:

1. सड़कों पर बेवजह हॉर्न ना बजायें।
2. तेज आवाज में संगीत ना बजायें।
3. अस्पतालों और स्कूलों आदि के पास उचित चिह्न लगायें।
4. वाहनों के इस्तेमाल के लिए हॉर्न और अधिकतम ध्वनि के लिए विशिष्टताएं तय करें।

भूमि प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण के लिए कुछ कदम निम्नलिखित हैं:

1. मिट्टी के प्रदूषण और इसके हानिकारक प्रभावों के बारे में सार्वजनिक जागरूकता बढ़ाना।
2. विषैले पदार्थों का उत्पादन और इस्तेमाल घटाना। प्रकृति में विषैले पदार्थ नहीं फैलाना। विषैले कूड़े के निपटारे के उचित तरीकों को प्रोत्साहित करना।
3. जहां तक संभव हो, कूड़े का पुनःचक्रीकरण करें।

4. जैविक रूप से विघटक जैविक उत्पादों जैसे उर्वरकों, कीटनाशकों और क्लीनरों के इस्तेमाल को बढ़ावा देना।
5. कूड़ा विरोधी नियम बनाना और लागू करना।
6. वन को फिर से लगाने को बढ़ावा देना।
7. कूड़े का निपटारा सिर्फ जमीनी कूड़ेदानों में ही करना।
8. सभी प्रकार के कूड़े को निपटाने से पहले अलग करना।

अच्छे पर्यावरण प्रशासन के लिए सात सिद्धांत

अच्छे पर्यावरण प्रशासन के लिए सरकार को सात सिद्धांतों का पालन करना चाहिए। यह सिद्धांत बाजार, नीतियों और संस्थानों में आपसी व्यवस्थापक संबंधों को समझने के बाद तैयार किए गए हैं। सातों नीतियों में से प्रत्येक बाजार, नीतियों और संस्थागत विफलताओं की रोकथाम के लिए उचित व्यवस्था और संकेत प्राप्त करने पर केंद्रित है।

अच्छे पर्यावरण प्रशासन के लिए परिभाषित सात सिद्धांत इस प्रकार हैं–

1. **खुलापन** : सिद्धांत के अनुसार सभी पर्यावरणीय माल प्रशासन संस्थानों को खुलेपन के साथ काम करना चाहिए और अपने कार्यों और निर्णयों को प्रशासन में शुमार अन्य पार्टियों और संस्थानों के साथ सक्रिय रूप से बांटना चाहिए।
2. **भागीदारी** : यह सिद्धांत नीतियों, विधायिका, निकायों आदि की गुणवत्ता, संदर्भ और प्रभावशीलता को परिभाषित करता है, जो नीतिगत श्रृंखला अर्थात संकल्पना से लागू करने तक संपूर्ण भागीदारी सुनिश्चित करता है।
3. **जवाबदेही** : जवाबदेही का सिद्धांत विधायिका, कार्यपालिका और संस्थागत प्रक्रिया की भूमिका स्पष्ट तौर पर तय करने पर जोर देता है। नीतियों के विकास और क्रियान्वयन में शामिल सभी की भूमिका और जिम्मेदारी हर स्तर पर स्पष्ट रूप से परिभाषित होनी चाहिए। इस सिद्धांत से संस्थागत विफलता हो सकती है।
4. **प्रभावकारिता** : प्रभावशील नीतियां आवश्यक माल को पहुंचाने के कार्य को स्पष्ट उद्देश्य, भविष्य के प्रभावों के मूल्यांकन, उपलब्धता और फराने अनुभव के आधार पर करने की वकालत करती हैं।
5. **अनुकूलता** : अनुकूलता का सिद्धांत बताता है कि नीतियां और कार्रवाई अनुरूप और समझने में सरल होने चाहिए। अनुरूपता के लिए एक जटिल व्यवस्था के भीतर समग्र पहुंच सुनिश्चित करते हुए संस्थानों के लिए सशक्त जिम्मेदारी और राजनीतिक नेतृत्व की आवश्यकता होती है। इससे संस्थागत विफलता हो सकती है।
6. **लोकतंत्र** : लोकतंत्र के सिद्धांत के अनुसार सत्ता, प्रतिनिधित्व और भागीदारी के बंटवारे से जुड़े निर्णय संबंधित लोकतांत्रिक मूल्यों के अनुसार होने चाहिए। इस सिद्धांत से संस्थागत और बाजारी विफलता हो सकती है।

7. **ईमानदारी :** ईमानदारी का सिद्धांत बताता है कि नेतृत्व को ईमानदार, वफादार और निष्पक्ष होना चाहिए। एक नेता को वह निर्णय लेने चाहिए जो मानवाधिकारों और स्वतंत्रता की रक्षा करें। इस सिद्धांत से संस्थागत विफलता हो सकती है।

टिप्पणी

हर बाजार व्यवस्था में निम्नलिखित चार तत्व होते हैं–

1. सरकार
2. बाजार
3. प्रशासन
4. मूल्य

सार्वजनिक सामान बाजार के साथ सरकार के तीन वर्ग जुड़े होते हैं– राष्ट्रीय, प्रांतीय और स्थानीय। दूसरी तरफ, बाजार का प्रारूप खरीदारों और विक्रेताओं की इच्छा पर निर्भर होता है जोकिसी लेनदेन में शामिल होते हैं। यह विक्रेता और खरीदार सरकारी संस्थाएं कहे जा सकते हैं जो सरकार की नीतियों के तहत संचालित होते हैं। यह दोनों व्यवस्थाएं प्रक्रिया को चलाने और सुचारू रखने के लिए नागरिक समाज या मानव भागीदारी पर निर्भर होती हैं। सरकार के प्रारूप के लिए मूल्य बाजार के मूल्य या लिए गए सामाजिक मूल्य पर निर्भर करता है।

एक प्रक्रिया मुक्त व्यापार का सहयोग करने वाले बाजार तथा सरकार के लिए सरकारी नियमों और संयत्रों को बनाती है। इस उदाहरण में परीक्षण, निरीक्षण, लेखा परीक्षण, प्रतिपुष्टि और परामर्श आदि विभिन्न प्रक्रियाओं के जरिये सरकारी संयत्रों और नियमों के निर्माण में प्रशासन सहयोग करता है। यहां मूल्य का स्रोत अवसर लागत के चयन पर निर्भर है।

सरकार के लिए तैयार किए गए उत्पाद सरकारी संयत्रों और नियमों के प्रयोग और न्यायिक फैसले हैं। बाजार के उत्पाद व्यापार की व्यवस्था हैं जो इसकी वैधता जांचने के लिए कम लेनदेन खर्च, संपूर्ण समापन, सार्वजनिक सामान की पहचान, प्रतिबंधित बाह्यता और उचित सरकारी हस्तक्षेप पर निर्भर है। इन उत्पादों को सरकारी संदर्भ की वैध मंजूरी होगी जहां खरीद, जबावदेही, विश्वास, पारदर्शिता, आम सहमति, अनुकूलता और भागीदारी होती है।

चयन का अवसर खर्च, बाजार के उत्पादों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष उपयोग और परिणाम के मूल्यों के खपत या गैर खपत उपयोग मूल्य के रूपों के अंर्तगत आते हैं।

आर्थिक मूल्यांकन और सरकारी नियामक

हम बहु–अनुशासनात्मक दृष्टिकोण से पर्यावरणीय सामानों और सेवाओं को व्यवस्थित नहीं कर सकते क्योंकि हर व्यवस्था का चीजों को देखने का अपना नजरिया होता है। हर व्यवस्था–विशेषज्ञ अपनी मान्यताओं और पूर्वाग्रहों के अनुसार चलते हैं।

पर्यावरणीय सामान और सेवाओं के प्रबंधन के लिए मौजूदा दृष्टिकोण में से किसी एक का चयन पर्याप्त और सक्षम नहीं है। इसके बजाय, पर्यावरणीय सामान का प्रबंधन करते समय हर दृष्टिकोण और संदर्भ पर एक साथ विचार करना चाहिए। सैम्पफोर्ड ने भी कहा है कि वैश्विकता के युग में प्रभावशाली प्रशासन को किसी एक नियम,

टिप्पणी

संस्थान या आर्थिक नीति से हासिल नहीं किया जा सकता, बल्कि इसके लिए बहु–पहलू और बहु– रूपीय दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है।

ऐतिहासिक रूप से, विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों की मदद से पर्यावरणीय सामान और सेवाओं के प्रबंधन में सरकार ने मुख्य निर्धारक और मध्यस्थ की भूमिका निभाई है। हर प्रबंधन प्रक्रिया सरकार के निर्णय और विशेषज्ञों द्वारा ज्ञान के हस्तातंरण पर आधारित है। कोई भी फैसला करने से पहले सरकार सामाजिक लाभ के पक्ष में निर्णय करने के लिए विशेषज्ञों से वैज्ञानिक दृष्टिकोण लेती है जिन पर सामाजिक और पर्यावरण के मूल्य लागू हो चुके होते हैं। इसके बाद सरकार आर्थिक प्रोत्साहन और मानक नियमों सहित आवश्यक नीतियां लागू करने के लिए सशक्त होती है।

पर्यावरणीय सामान और सेवाओं के लिए निर्णय लेते समय तीन संस्थान, सरकार, विज्ञान और समाज महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और अंतिम निर्णय उनकी परस्पर समझ के अनुसार लिया जाता है।

सरकार को नियम बनाने के सरकारी संयंत्र, नियम आवेदन और नियम न्यायिकरण के द्वारा परिभाषित किया जा सकता है। विज्ञान की व्याख्या पूंजी के पांच रूपों सामाजिक, प्राकृतिक, वित्तीय, मानवीय और भौतिक पूंजी के संबंध में किया जाता है। समाज कुटुंबों और फर्मों तथा पर्यावरण का स्रोत के रूप में उनके विश्वास और प्रदूषण, कचरा और पारिस्थितिक विघटन के नाले से व्याखायित किया जा सकता है।

पूंजी के इन सभी रूपों का मिश्रण समाज के संभावित विकास और आर्थिक तरक्की में योगदान देता है और इस प्रकार उचित प्रबंधन का उपयोग समाज के कल्याण में किया जा सकता है। इस प्रकार सरकार, विज्ञान और समाज एक त्रिभुज बनाते हैं जो समूचे पर्यावरणीय समान और सेवाओं का प्रबंधन करता है। वर्तमान त्रिभुज प्रशासन की प्रभावशाली व्यवस्था का वर्णन करता है जिसमें निम्नलिखित तत्व शामिल हैं–

- **विज्ञान** : विज्ञान को शुमार करने से सरकार को नियम बनाने, आवेदन और न्यायिकरण के लिए वैज्ञानिक और स्वाभाविक सलाह का प्रावधान मिल जाता है।
- **समाज** : समाज की संकल्पना सरकार के साथ गठजोड़ में इस्तेमाल होती है जो आर्थिक प्रोत्साहन की प्रकृति को अच्छी तरह से समझाती है। इसलिए कर या सब्सिडी जैसी सरकारी नीतियों का अस्तित्व है जिन्हें निश्चित सकारात्मक व्यवहार को प्रोत्साहित करने और पूंजी के पांच रूपों अर्थात सामाजिक पूंजी, प्राकृतिक पूंजी, वित्तीय पूंजी, मनुष्य पूंजी और भौतिक पूंजी के इस्तेमाल पर नकारात्मक प्रभाव डालने वाले व्यवहार को हतोत्साहित करना है।

नए त्रिभुज की समाज–विज्ञान परस्परता इस बात को मान्यता देती है कि पर्यावरण और समाजिक व्यवस्था इस तरह से अंतर्संबंधित हैं कि एक क्षेत्र पर पड़ने वाला दबाव दूसरे को 'दबाता' है। यह समझाता है कि अर्थव्यवस्था की कार्यप्रणाली भी इससे अंतर्संबंधित है और

अपनी प्रगति जांचिए

15. निम्नलिखित में से कौन–सा कारक पर्यावरण संसाधनों के विघटन का मुख्य कारण है?

(क) प्रदूषण (ख) बढ़ती जनसंख्या

(ग) बढ़ता मशीनीकरण (घ) उपरोक्त सभी

16. बाजार व्यवस्था के तत्व होते हैं–

(क) बाजार (ख) प्रशासन

(ग) मूल्य (घ) सभी

5.10 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (घ)
2. (ख)
3. (क)
4. (ख)
5. (क)
6. (घ)
7. (ख)
8. (ग)
9. (घ)
10. (ग)
11. (ख)
12. (ग)
13. (ग)
14. (ख)
15. (क)
16. (घ)

5.11 सारांश

मानव गतिविधियां, जैसे औद्योगिकीकरण, तेल रिसाव, रासायनिक और जहरीले उत्पादन और निपटान, खनन, शहरीकरण, जल–थल यात्रा और कृषि, तेजी से न केवल

टिप्पणी

प्राकृतिक वातावरण की गुणवत्ता के लिए अपितु उनके सामाजिक, आर्थिक जीवन और स्वास्थ्य के लिए खतरा बनती जा रही हैं।

औद्योगीकरण की प्रक्रिया उत्पादन, खनन, परिवहन और प्रौद्योगिकी के सिद्धांत लेकर आई, जिसने पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव डाला। नगरीकरण, शोषण, जनसंख्या, प्रदूषण औद्योगीकरण के परिणाम हैं। कारखानों की बहुतायत से रोजगार बढ़े जिसके परिणामस्वरूप बड़े शहर और शहरों का विकास हुआ है और कार्य करने वाले लोगों की संख्या बढ़ी। इसने कई विकट समस्याओं को भी जन्म दिया है जैसे कि जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, भूमि प्रदूषण, ओजोन परत में छेद इत्यादि।

इस तथ्य के बावजूद कि मनुष्य ने वातावरण को कई प्रकार से प्रभावित किया है, यह भी ध्यान रखना चाहिए कि पर्यावरण बिना मनुष्य के कायम रह सकता है परंतु मनुष्य बिना पर्यावरण के अपना अस्तित्व कायम नहीं रख सकता। पर्यावरण ने मानवजाति को कई प्रकार से प्रभावित किया है। इसने मनुष्य जनसंख्या, अर्थव्यवस्था और प्रौद्योगिकी और मानव के संपूर्ण विकास पर एक गहरी छाप छोड़ी है।

पर्यावरण की पूँजी के लिए परिदृश्य अलग होता है। पर्यावरण की पूँजी विफल हो जाती है अगर यह समाज की इच्छाओं और विवशताओं को सही तरीके से पेश ना कर पाये। पर्यावरण की पूँजी का मूल्य उत्पाद द्वारा प्रस्तावित सेवाओं और फायदों से तय होती है ना कि पूँजी के बाज़ारी भाव से। बाज़ार तब विफल होता है जब मूल्य या इससे कम पर आधारित निजी निर्णय संसाधनों का क्षमतापूर्वक आवंटन नहीं कर पाते हैं।

मानव वातावरण में उद्योगों, शहरी क्षेत्रों में तीव्र वृद्धि, कृषि की तीव्रता तथा विस्तार और जंगलों के विनाश ने बड़ी व्यापक समस्याएं पैदा की हैं, जैसे कि भूमि क्षरण, संसाधन रिक्तीकरण, पर्यावरण क्षरण, जैव विविधता की कमी, आजीविका सुरक्षा तथा पारिस्थितिक तंत्र में सहनशीलता की कमी। खनन, औद्योगिकीकरण और परिवहन से संबंधित मानव बीमारियां संसार के विभिन्न भागों में उत्पन्न हो रही हैं।

सतत विकास का मतलब संसाधनों का इस तरह इस्तेमाल करना है कि यह सिर्फ वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताएं ही न पूरी करें बल्कि अगली पीढ़ी के लिए भी संरक्षित हों।

पर्यावरणीय देयता विनियमों के माध्यम से व्यापारों में पर्यावरणीय क्षति रोकने की एवं इनके द्वारा की गयी हानि की क्षतिपूर्ति के लिए कार्यवाही हेतु व्यापारिक प्रतिष्ठानों को बाध्य किया जाता है।

नवीन एवं ऐतिहासिक क्षति के लिए भिन्न–भिन्न उपचार–मानक संभव हैं। उदाहरणार्थ. लेण्डर्स (बेल्जियम) में नव संदूषित क्षेत्रों को सभी प्रकरणों में स्वच्छ किया जाना है जहां संदूषण की सांविधिक सीमाओं को बढ़ा दिया गया था। ऐतिहासिक प्रदूषण के प्रकरण में स्वच्छता–कार्यवाहियों का निर्णय उस क्षति के परिणामस्वरूप मानव–स्वास्थ्य व पर्यावरणीय जोखिमों के आकलन के आधार पर किया जाता है।

पर्यावरण न सिर्फ मनुष्य की बल्कि धरती के हर जीव की सभी जरूरतें पूरी करता है। बदले में हमें भी सभी प्रकार के संसाधनों जैसे हवा, पानी, भूमि, जंगल आदि की सुरक्षा करनी चाहिए जो हमारे लिए पर्यावरण की देन हैं। पर्यावरण के संसाधनों के विघटन का मुख्य कारण विभिन्न प्रकार के प्रदूषण हैं जिसमें हवा, पानी और मिट्टी शामिल हैं। चूंकि सभी प्रकार के संसाधनों के विघटन का कारण प्रदूषण है इसलिए हमें प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण के लिए कदम उठाने चाहिए।

5.12 मुख्य शब्दावली

- **शहरीकरण** : किसी भू–भाग को शहर के मानदण्ड पर विकसित करने की प्रक्रिया।
- **एस्किमो** : अत्यंत ठण्डे क्षेत्रों में रहने वाली एक जनजाति।
- **ओजोन रिक्तीकरण** : पर्यावरण के ऊपर मौजूद ओजोन परत की मोटाई में निरंतर आता पतलापन।
- **अपशिष्ट** : छूटा हुआ या अनुपयोगी

5.13 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. पर्यावरण का क्या अर्थ है?
2. मौसमी स्थितियों के आधार पर भू–क्षेत्रों को कितने भागों में बाँटा जा सकता है?
3. बाजार विफलता के कारणों का नामोल्लेख करें।
4. अम्लीकरण से आप क्या समझते हैं?
5. सतत विकास की अवधारणा क्या है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. अर्थव्यवस्था व पर्यावरण परस्पर कैसे सम्बद्ध है? सविस्तार विश्लेषण कीजिए।
2. पर्यावरण का विघटन बाजार व्यवस्था को किस प्रकार प्रभावित करता है?
3. सतत विकास की अवधारणा पर प्रकाश डालते हुए भारत में हो रहे सतत विकास के प्रयासों की समीक्षा करें।
4. मानव द्वारा पर्यावरण को पहुँचाई जाने वाली क्षति व उसकी पूर्ति का आकलन करने वाली विधियों की आलोचना करें।
5. पर्यावरण में उद्योगों व अन्य कारकों द्वारा हो रहे प्रदूषण व उनके नियंत्रण एवं रोकथाम के प्रयासों का आकलन करें।

5.14 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

M L Jhingan. *Economics of Growth and Development.*

Hayami Y. *Development Economics,* Oxfor University Press.

Karpagam M. *Environmental Economics.*

योगेश शर्मा, 'पर्यावरण एवं मानव संसाधन विकास', पॉइन्ट पब्लिशर, जयपुर।

वी.सी. सिन्हा, 'विकास एवं पर्यावरणीय अर्थशास्त्र', एस.बी.पी.डी. पब्लिशर हाउस, आगरा।

पी.सी.त्रिवेदी / गरिमा गुप्ता, 'पर्यावरण अध्ययन', आविष्कार पब्लिकेशन, जयपुर।

दीप्ति शर्मा / महेन्द्र कुमार, 'पर्यावरण एवं संविकास', अर्जुन पब्लिशिंग, दिल्ली।

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी के नवीनतम प्रकाशन